साप्ताहिक
श्रीमद्भागवत-कथा

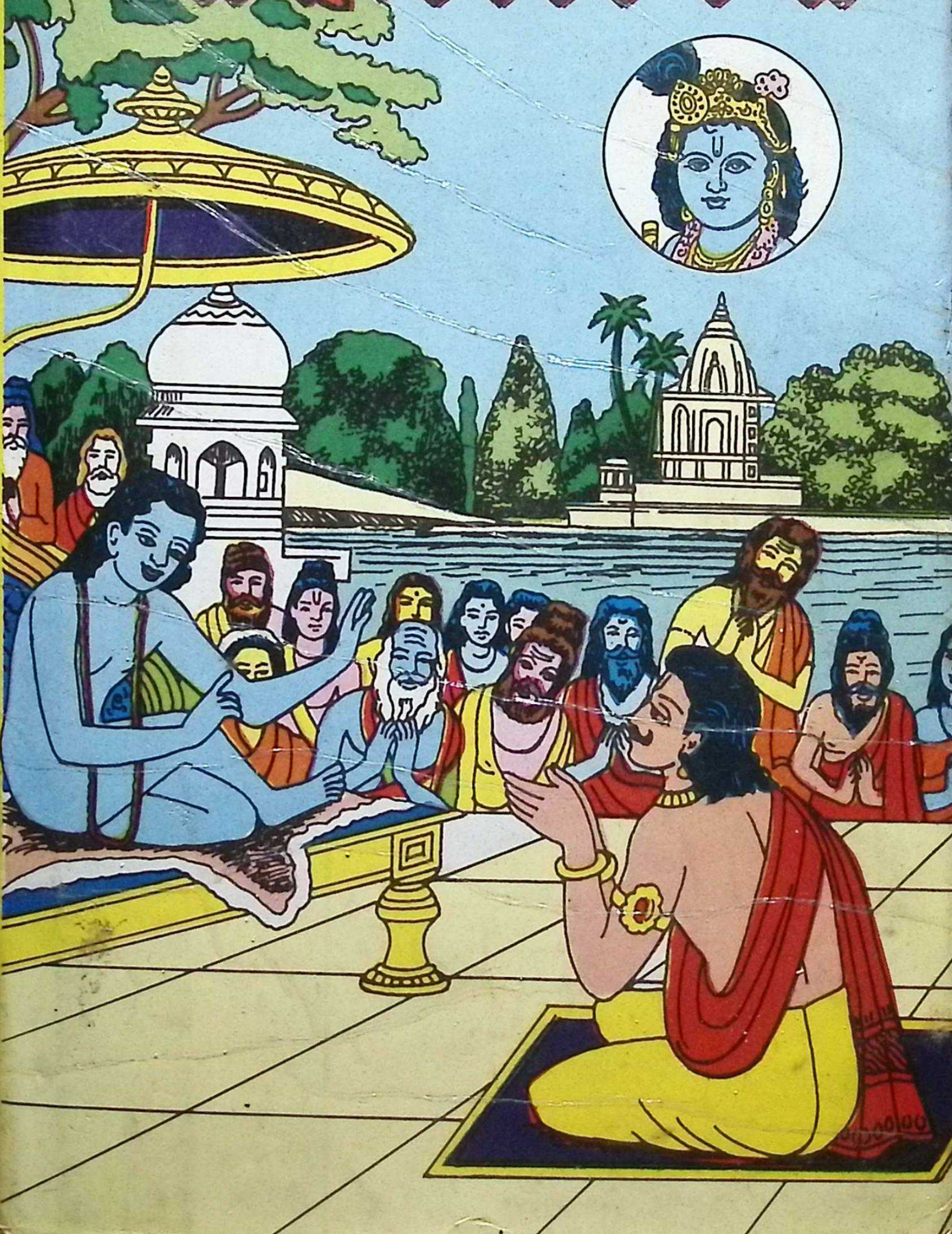

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
३२२

साप्ताहिक
श्रीमद्भागवत-कथा

द्वितीय भाग

लेखक
डॉ० शिवप्रसाद द्विवेदी
'श्रीधराचार्य'
प्राचार्य : श्रीहनुमत् संस्कृत महाविद्यालय
हनुमान गढ़ी, अयोध्या

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

पुर्नमुद्रित संस्करण 2007
१-२ भाग सम्पूर्ण
मूल्य ३००-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 32996391
ई-मेल : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2420404

दूसरे खण्ड का विषयानुक्रम

अध्याय	विषय	पेज नं.
४.	कंस के हाथ से छूटी हुई योगमाया का भविष्यवाणी करना	५२१
५.	गोकुल में श्रीभगवान् का जन्म-महोत्सव	५२३
६.	पूतना का उद्धार	५२५
७.	शकटासुर तथा तृणावर्त का उद्धार	५२७
८.	नामकरण संस्कार और बाललीला	५२९
९.	ऊखल बँधन लीला	५३१
१०.	यमलार्जुन का उद्धार	५३३
११.	गोकुल से वृन्दावन गमन, वत्सासुर और बकासुर का उद्धार	५३५
१२.	अघासुर का उद्धार	५३८
१३.	ब्रह्माजी का मोह	५४०
१४.	ब्रह्माजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति	५४४
१५.	धेनुकासुर का उद्धार	५४६
१६.	कालिय नाग पर भगवान् की कृपा	५४९
१७.	कालिय के कलियहद में आने की कथा	५५२
१८.	प्रलम्बासुर का उद्धार	५५४
१९.	दावानल से गोपों एवं गौओं की रक्षा	५५५
२०.	वर्षा तथा शरद् ऋतु का वर्णन	५५७
२१.	वेणुगीत	५५८
२२.	चीरहरण लीला	५६०
२३.	यज्ञपत्नियों पर कृपा	५६२
२४.	इन्द्र यज्ञ का निवारण	५६५
२५.	गोवर्धनधारण लीला	५६७
२६.	भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव के विषय में गोपों की बातचीत	५६९
२७.	इन्द्र द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति तथा श्रीभगवान् का अभिषेक	५७०
२८.	श्रीभगवान् द्वारा नन्दजी को वरुणलोक से छुड़ा लाना	५७२
२९.	रास लीला का आरम्भ	५७३

३०.	श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दशा	५७७
३१.	गोपिकागीत	५८०
३२.	श्रीभगवान् का प्रकट होकर गोपियों को सान्त्वना देना	५८२
३३.	महारास	५८४
३४.	सुदर्शन तथा शंखचूड़ का उद्धार	५८७
३५.	युगलगीत	५८९
३६.	अरिष्टासुर का उद्धार तथा कंस द्वारा अक्रूरजी को व्रज भेजना	५९१
३७.	केशी तथा व्योमासुर का उद्धार	५९४
३८.	अक्रूरजी की व्रजयात्रा	५९६
३९.	श्रीकृष्ण बलराम का मथुरा गमन	५९८
४०.	अक्रूरजी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति	६०१
४१.	भगवान् श्रीकृष्ण का मथुरा में प्रवेश	६०३
४२.	कुब्जा पर कृपा तथा धनुर्भङ्ग	६०६
४३.	कुबलयापीड का उद्धार और अखाड़े में प्रवेश	६०९
४४.	चाणूर मुष्टिक आदि पहलवानों तथा कंस का उद्धार	६११
४५.	बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् का यज्ञोपवीत संस्कार तथा गुरुकुल में प्रवेश	६१४
४६.	उद्धवजी की व्रज-यात्रो	६१७
४७.	भ्रमरगीत	६२०
४८.	श्रीभगवान् का कुब्ज तथा अक्रूरजी के घर जानो	६२५
४९.	अक्रूरजी का हस्तिनापुर गमन	६२७

दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध

५०.	जरासन्ध से युद्ध और द्वारका पुरी का निर्माण	६२९
५१.	कालयवन का विनाश तथा मुचुकुन्द की कथा	६३२
५२.	श्रीभगवान् का द्वारका गमन, बलरामजी का विवाह तथा रुक्मिणीजी का सन्देश लेकर ब्राह्मण का श्रीभगवान् के पास आना	६३५
५३.	रुक्मिणी हरण	६३८
५४.	राजाओं का पराजय तथा श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह	६४१
५५.	प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर का वध	६४७
५६.	स्यमन्तक मणि की कथा तथा भगवान् श्रीकृष्ण का जाम्बवती तथा सत्यभामा के साथ विवाह	६४९

५७. भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा शतधन्वा का उद्धार और अक्रूरजी को द्वारका बुलाना ६५२
५८. भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न विवाहों की कथा ६५४
५९. भौमासुर का वध तथा सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का विवाह ६५७
६०. श्रीकृष्ण रुक्मिणी संवाद ६६०
६१. श्रीभगवान् की सन्तति का वर्णन तथा अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का मारा जाना ६६३
६२. उषा और अनिरुद्ध का मिलन ६६५
६३. उषा और अनिरुद्ध का मिलन ६६८
६४. राजा नृग की कथा ६७१
६५. श्रीबलरामजी का व्रजगमन ६७४
६६. पौण्ड्रक तथा काशिराज का उद्धार ६७६
६७. द्विविद का उद्धार ६७९
६८. कौरवों पर बलरामजी का कोप तथा साम्ब का विवाह ६८१
६९. नारदजी का श्रीभगवान् के गार्हस्थ्य का दर्शन ६८३
७०. श्रीभगवान् की दिनचर्या एवं जरासंध के बंदी राजाओं का श्रीभगवान् के पास दूत भेजना ६८७
७१. श्रीभगवान् का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान ६९०
७२. पाण्डवों के राजसूय यज्ञ का आयोजन तथा जरासन्ध का उद्धार ६९३
७३. जरासन्ध के कारागार में बन्द राजाओं को विदा करके भगवान् का इन्द्रप्रस्थ आगमन ६९६
७४. श्रीभगवान् की अग्रपूजा और शिशुपाल का उद्धार ६९८
७५. राजसूय यज्ञ की सम्पूर्णता और दुर्योधन का आगमन ७०१
७६. शाल्व के साथ यादवों का युद्ध ७०४
७७. शाल्व का उद्धार ७०६
७८. दन्तवक्त्र तथा विदूरथ का उद्धार और तीर्थ यात्रा में बलरामजी के हाथों सूतजी का मारा जाना ७०८
७९. वल्वल का उद्धार तथा बलरामजी की तीर्थ यात्रा ७११
८०. भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सुदामाजी का स्वागत ७१२

८१.	सुदामजी को ऐश्वर्य की प्राप्ति	७१५
८२.	भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी से गोप-गोपियों की भेंट	७१८
८३.	श्रीभगवान् की पटरानियों के साथ द्रौपदी की बातचीत	७२२
८४.	वसुदेवजी के यज्ञ में उनके बन्धु-बान्धवो का आगमन	७२५
८५.	श्रीभगवान् द्वारा वसुदेवजी को ब्रह्मज्ञानोपदेश तथा देवकीजी के छह पुत्रों को लौटा लाना	७२९
८६.	सुभद्रा हरण की कथा	७३२
८७.	वेद स्तुति	७३५
८८.	शिवजी के संकट का विनाश	७३७
८९.	महर्षि भृगु द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा और श्रीभगवान् द्वारा ब्राह्मणपुत्रों का आनयन	७४०
९०.	भगवान् श्रीकृष्ण के लीलाविहार का वर्णन	७४३

ग्यारहवाँ स्कन्ध

१.	ऋषियों द्वारा यदुकुल के संहार का शाप	७४६
२.	कवि नामक योगीश्वर द्वारा भागवत धर्म का तथा हरि नामक योगीश्वर द्वारा भक्त के स्वरूप का निरूपण	७४९
३.	माया, माया की निवृत्ति के उपाय, ब्रह्म तथा कर्म इन चारों का निरूपण	७५४
४.	भगवान् के कुछ प्रमुख अवतारों का वर्णन	७५९
५.	भक्तिहीन मनुष्यों की गति तथा भगवदाराधन विधि का वर्णन	७६२
६.	भगवान् श्रीकृष्ण तथा उद्धवजी के संवाद का प्रारम्भ	७६६
७.	अवधूतोपाख्यान (१) पृथिवी से लेकर कबूतर तक आठ गुरुओं की कथा	७७०
८.	अवधूतोपाख्यान (२) आजगर से लेकर पिङ्गला तक नव गुरुओं की शिक्षा	७७५
९.	अवधूतोपख्यान (३) कुरर से लेकर भृङ्गी तक सात गुरुओं की कथा	७७८
१०.	सांसारिक एवं स्वर्गीय भोगों की नि:सारता का प्रतिपादन	७८१
११.	बद्ध, मुक्त एवं भक्तजनों के स्वरूप का निरूपण	७८३
१२.	सत्संग की महिमा का वर्णन	७८६

१३. हंसोपदेश ७८८
१४. उद्धवजी को भक्तियोग की महिमा का उपदेश ७९३
१५. भिन्न-भिन्न सिद्धियों के नाम तथा उनके लक्षण ७९६
१६. श्रीभवान् की विभूतियों का वर्णन ७९९
१७. ब्रह्मचर्य एवं गार्हस्थ्य धर्म का निरूपण ८०१
१८. वानप्रस्थ एवं संन्यास धर्म का वर्णन ८०४
१९. भक्तिज्ञान आदि साधनों का वर्णन ८०७
२०. उद्धवजी को ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग का उपदेश ८०९
२१. गुणदोष व्यवस्था का रहस्य ८१२
२२. प्रकृतिपुरुष विवेक ८१५
२३. तितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास ८१८
२४. सांख्ययोग का वर्णन ८२१
२५. सत्त्वादि तीनों गुणों की वृत्तियों का वर्णन ८२३
२६. पुरुरवा का वैराग्य ८२५
२७. क्रियायोग का वर्णन ८२७
२८. परमार्थ का निरूपण ८३०
२९. भागवत धर्म का निरूपण और उद्धवजी का वदरिकाश्रम गमन ८३२
३०. यदुकुल का संहार ८३५
३१. श्रीभगवान् का स्वधाम गमन ८३८

बारहवाँ स्कन्ध

१. कलियुग के राजाओं के वंश का वर्णन ८४१
२. कलियुग के धर्म का वर्णन ८४३
३. भगवन्नाम संकीर्तन ही समस्त दोषों से बचने का उपाय है ८४५
४. चार प्रकार के प्रलय का वर्णन ८४७
५. श्रीशुकदेवजी का अन्तिम उपदेश ८५०
६. परीक्षित् को परमपद प्राप्ति तथा जनमेजय का सर्पसत्र ८५१
७. अथर्व वेद की शाखाएँ तथा पुराण का लक्षण ८५६
८. मार्कण्डेयजी की तपस्या एवं वर प्राप्ति ८५८
९. महर्षि मार्कण्डेय द्वारा माया का दर्शन ८६०
१०. मार्कण्डेय महर्षि को भगवान् शंकर का वरदान ८६२

११.	श्री भगवान् के अङ्ग, उपाङ्ग एवं आयुधों का वर्णन	८६४
१२.	श्रीमद् भागवत का संक्षिप्त विषयानुक्रम	८६७
१३.	श्रीमद्भागवत की महिमा	८७१

परिशिष्ट

१.	साप्ताहिक श्रीमद्भागवत के कथा विराम स्थल	८७३
२.	श्रीमद्भागवत महापुराण के मासिक परायण का विश्राम स्थल	८७५
३.	तत्त्वनिरूपण	८७५-९०२

❀❀❀

साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा

के

पाँचवें दिन की कथा

पृष्ठ ५१९ से ६४४ तक

(रुक्मिण्युद्वाह पर्यन्तं पञ्चमेऽहनिवदेत्सुधीः)

(दसवें स्कन्ध के चौथे अध्याय से लेकर
चौवनवें अध्याय तक)

चौथा अध्याय

कंस के हाथ से छूटी हुई योगमाया का भविष्यवाणी करना

श्रीशुकदेवजी ने कहा– वसुदेवजी के लौट आने पर नगर के समस्त दरवाजे बन्द हो गए । नवजात शिशु के रोने की ध्वनि सुनकर द्वारपालों की नींद खुल गयीं । उन सबों ने जाकर देवकी के सन्तानोन्पत्ति की बात कंस को बतलायी । कंस तो प्रतीक्षा ही कर रहा था । वह शीघ्रता से सूतिकागृह में आया तो देवकी ने कहा–

स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ।

(भा० १०/४/४)

मेरे हितैषी भाई ! यह कन्या तो तुम्हारी पुत्रवधू के समान है । स्त्री है । इसकी हत्या तुम्हें नहीं करनी चाहिए । मेरी यह अन्तिम सन्तान है । इसे मुझे दे दो । किन्तु स्वार्थी कंस ने देवकीजी की कोई बात नहीं सुना और उस नवजात शिशु को उनके हाथ से छीनकर शिला पर पटक दिया । वह बालिका कंस के हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी ।

अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ।
दिव्यस्त्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।
धनुः शूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ।
सिद्धचारण गन्धर्वैरप्सरः किन्नरोरगैः ।
उपाहृतोरु बलिभिः स्तूयमानेदमाब्रावीत् ।।

(भा० १०/४/९-११)

दिखायी दिया कि वह अपनी बड़ी-बड़ी भुजाओं में आयुध धारण किए थी । वह दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और मणिमय आभूषणों से अलंकृत थी । उसके हाथों में धनुष्, त्रिशूल, वाण, ढाल, तलवार, शंख, चक्र और गदा ये आठ आयुध थे । सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर एवं नाग उसे उपहार समर्पित करके उसकी

स्तुति कर रहे थे । उस देवी ने कहा मूर्ख मुझे मारने से क्या लाभ है? तुमको मारने वाला जन्म ले चुका है । अतएव निर्दोष बालकों की हत्या न करो । यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गयी तथा अनेक स्थानों में अनेक नामों से प्रसिद्ध हो गयी ।

यह देखकर कंस आश्चर्य चकित था । उसने देवकी और वसुदेव को कैद से मुक्त कर दिया । वह कहने लगा मुझे खेद है, मैंने तुम्हारे अनेक बच्चों को मार डाला । केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते देवता भी झूठ बोलते हैं । तुम दोनों महात्मा हो ! पुत्रों का शोक मत करो। वसुदेव एवं देवकी को अनेक प्रकार से आश्वासन देकर कंस ने उन दोनों के पैर पकड़ लिए । वसुदेव जी ने हँसकर कंस से कहा– कंस! मुनष्य अपने अज्ञान के कारण ही अहंकार और ममकार में पड़कर अपने स्वरूप को भूल जाता है तथा उसे अपने और पराये का भेद प्रतीत होने लगता है ।

देवकी और वसुदेव की बातों से आश्वस्त कंस अपने भवन में चला गया । प्रातःकाल उसने अपने मन्त्रियों को बुलाया और जो कुछ योगमाया ने कहा था उसे कह सुनाया । मन्त्रियों ने कहा– आज ही हमलोग दस दिन के भीतर के अथवा उससे पहले के उत्पन्न शिशुओं को मार डालेंगे । समर भीरु देवता गण हम लोगों का कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं । विष्णु एकान्तवासी हैं, शंकर वनवासी हैं, इन्द्र अल्पवीर्य हैं, तथा ब्रह्मा तपस्वी हैं । इन देवताओं से हमलोगों का कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है ।

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ।
ततस्तन्मूलखनने नियुंक्ष्वास्माननुव्रतान् ।।
(भा० १०/४/३७)

फिर भी देवताओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । वे हमारे शत्रु हैं । अतएव उनको निर्मूल करने के लिए आप अपने विश्वास पात्र हम असुरों को नियुक्त कर दें । उनकी उपेक्षा कर देने पर तो वे रूढमूल हो जायेंगे । उनको परास्त करना कठिन हो जायेगा । देवताओं के मूल विष्णु हैं । वे वहाँ रहते हैं जहाँ सनातन धर्म होता है । सनातन धर्म की जड़ हैं– वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या तथा यज्ञ । अतएव हमलोग इन सबों का विनाश कर दें; यही अच्छा होगा । ऐसा करने से विष्णु तथा देवता स्वयं निर्मूल हो जायेंगे ।

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि कंस तो पहले से ही दुर्बुद्धि था । उसने अपने मन्त्रियों की बात मान ली और ब्राह्मणों को मार डालना ही सबसे अच्छा समझा । उसने सज्जनों का विविध प्रकार से विनाश करने का आदेश असुरों को दे दिया और स्वयं अपने भवन में प्रवेश किया । उसके सिर पर काल नाच रहा था । जो लोग सन्तों का अनादर करते हैं, कुकर्म करते हैं, उनकी आयु, लक्ष्मी, यश, धर्म, लोक, परलोक तथा विषयभोग इत्यादि समस्त कल्याण के साधन विनष्ट हो जाते हैं ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

पाँचवाँ अध्याय

गोकुल में श्रीभगवान् का जन्म-महोत्सव

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया– नन्दजी मनस्वी एवं उदार थे । उन्होंने अपने पुत्र जन्म के पश्चात् स्नान किया । वस्त्राभूषण धारण किया एवं ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन करवाकर शिशु का जातकर्म संस्कार करवाया । देवताओं और पितरों की सविधि पूजा की । उन्होंने ब्राह्मणों की पूजा करके गोदान तथा तिल के सात पर्वतों का दान किया। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया, गायक गीत गाने लगे । बाद्य बजने लगे । ब्रज मण्डल सजा दिया गया । गाय, बैल, बछड़े के अंगों में हल्दी एवं तेल का लेप किया गया । सभी ग्वाल-बाल सज धजकर नन्दजी के घर गए ।

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयाञ्चक्रुः वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ।।
(भा० १०/५/९)

गोपियों ने जब यह सुना कि यशोदाजी को पुत्र हुआ है तो उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई । उन सबों ने सुन्दर वस्त्र, आभूषण और आञ्जन से अपना शृंगार किया । वे अपने हाथों में उपहार की सामग्री लेकर यशोदाजी के घर गयीं ।

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यः ।
चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
नन्दालयं सबलया व्रजतार्विरेजुः ।
व्यालोलकुण्डलपयोधर-हार-शोभाः ।।
(भा० १०/५/११)

गोपियों के कानों में मणिनिर्मित कुण्डल सुशोभित हो रहे थे तथा गले में सुवर्ण का हार शोभता था । वे रंग-विरंगे वस्त्र पहनी थीं, और उनके केशों में लगे पुष्पों की रास्ते में वर्षा हो रही थी । उनके हाथों में जडाऊ, कंगन चमकता था । उनके कानों के कुण्डल, पयोधर और हार हिल रहे थे । इस तरह नन्दजी के घर जाते समय उनकी अद्भुत ही शोभा थी । नन्दजी के घर जाकर वे नवजात शिशु को आशीर्वाद देती थीं और उच्चस्वर में मंगल गाती थीं ।

सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म के समय व्रज में महान् उत्सव मनाया गया । अनेक प्रकार के मंगलमय बाजे बजाये गए । सबके-सब ग्वाल आनन्दमग्न थे । उधर नन्दजी ने ग्वालों को वस्त्र आभूषण प्रदान किया । सबलोग भगवान् से प्रार्थना करते थे कि भगवान् विष्णु इस नवजात शिशु की रक्षा करें । नन्द बाबा ने रोहिणीजी का अभिनन्दन किया । वे ही समस्त आने-जाने वाली स्त्रियों का सत्कार वस्त्राभूषण से किया करती थीं । उस समय सम्पूर्ण नन्दव्रज में ऋद्धियों एवं सिद्धियों का निवास हो गया ।

कुछ दिनों के पश्चात् नन्दजी कंस का वार्षिक कर चुकाने के लिए मथुरा गए । वसुदेवजी ने जब जाना कि नन्दजी कंस का वार्षिक कर चुकाने के लिए मथुरा आये हैं तो वे नन्दजी से मिलने के लिए आये। दोनों महापुरुष प्रेमपूर्वक मिले । इसके पश्चात् वसुदेवजी ने नन्दजी से कहा कि इस समय नन्द व्रज में अनेक प्रकार के उत्पात हो रहे हैं अतएव आप शीघ्र यहाँ से लौट जायँ । वसुदेवजी की बातों को सुनकर नन्दजी गोकुल के लिए गोपों के साथ चल पड़े ।

इस प्रकार साप्ताहिक भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छठा अध्याय

पूतना का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि मथुरा से लौटते समय नन्दजी ने रास्ते में विचार किया की वसुदेवजी का कथन झूठा नहीं होता है । उनके मन में शंका हाने लगी । वे मन ही मन भगवान् की प्रार्थना करने लगे । पूतना नाम की राक्षसी कंस की आज्ञा पाकर सर्वत्र ग्रामों में घूम-घूम कर शिशुओं को मारने का काम कर रही थी। जहाँ के लोग भगवान् का नाम स्मरण नहीं करते हैं वहाँ ऐसी राक्षसियों का पराक्रम काम करता है । पूतना आकश मार्ग से चलती थी और अपने मनोकूल अपना रूप भी बना लेती थी । एक दिन वह गोकुल आयी और सुन्दर युवती का रूप बनाकर नन्द व्रज में उसने प्रवेश किया । उसके रूप सौन्दर्य को देखकर गोपियाँ सोचने लगीं स्वयं लक्ष्मीजी श्रीभगवान् का दर्शन करने के लिए आयी हैं ।

पूतना इधर-उधर घूमती हुई नन्दजी के घर में गयी और शय्या पर सोये हुए बालकृष्ण को उसने देखा । श्रीभगवान् तो चराचर जगत् के स्वामी हैं । उन्होंने जान लिया कि यह तो बच्चों को मारने वाली पूतना आयी है । उसे देखकर भगवान् ने अपनी आँखे बन्द कर ली किन्तु जैसे कोई रस्सी के भ्रम में भयंकर सर्प को उठा ले उसी प्रकार पूतना ने भी अपने काल स्वरूप श्रीभगवान् को उठा लिया । रोहिणी तथा यशोदा तो पूतना के सौन्दर्य से इतना प्रभावित हो गयीं कि उसे बालकृष्ण को उठाते हुए देखकर भी दोनों कुछ नहीं बोलीं । वह श्रीभगवान् को अपनी गोद में लेकर कालकूट से भरे अपने स्तनों को पिलाने लगी । भगवान् उस समय कुपित होकर उसके दूध के साथ प्राणों को भी पीने लगे । पूतना के मर्म स्थल फटने लगे । वह चिल्लाने लगीं । पूतना के चिल्लाने की भयंकर आवाज को सुनकर सब लोग घबरा गए । पूतना से जब वेदना नहीं बर्दास्त हुई तो वह

राक्षसी के रूप में प्रकट हो गयी । और आकाश में उड़ चली उसके पैर फैल गए और वह नन्द व्रज से बाहर आकर गोष्ठ में गिर पड़ी ।

पतमानोऽपि तद्देहः त्रिगत्यूव्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र महादासीत् तदद्भुतम् ।।
(भा० १०/६/१४)

राजन् ! पूतना का आकाश से गिरता हुआ अत्यन्त अद्भूत महदाकार शरीर छह कोसों के वृक्षों को चूर-चूर कर दिया । पूतना का शरीर भयंकर था । उसके दाँत तीक्ष्ण थे । उसकी नाक पहाड़ की गुफा के समान थी और स्तन पर्वत के समान ऊपर उठे थे । उसके उस भयंकर शरीर को देखकर सभी ग्वाल डर गये ।

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ।
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ।।
(भा० १०/६/१८)

गोपियों ने देखा कि बालक श्रीकृष्ण निर्भय होकर उसकी छाती पर खेल रहे हैं और वे सब शीघ्रता पूर्वक उस राक्षिसी के सन्निकट आकर श्रीकृष्ण को उठा लीं । इसके पश्चात् यशोदा तथा रोहिणी माताओं ने गाय का पूँछ घुमा-घुमाकर श्रीकृष्ण की रक्षा की । भगवान् को गोमूत्र से स्नान कराया तथा उनके अंगों में गोवर लगाकर भगवान् के केशव आदि द्वादश नामों से उनकी रक्षा की । श्रीभगवान् की रक्षा के लिए सबों ने विस्तार से मन्त्र पढ़ा । श्रीशुकदेवजी ने कहा–

इति प्रणयवद्धाभिः गोपीभिः कृतरक्षणम् ।
पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ।।
(भा० १०/६/३०)

प्रेम पाश में बँधी हुई गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की रक्षा की, माता यशोदा ने भगवान् को अपना दूध पिलाया और पालने में सुला दिया । नन्दजी आदि गोप जब मथुरा से गोकुल आये और पूतना के वृत्तान्त को देखे तो कहने लगे कि वसुदेवजी अवश्य ही कोई ऋषि हैं। ग्वाले पूतना के शरीर को काटकर गोकुल से दूर लाकर जलाये । शरीर के जलाते समय पूतना के शरीर से सुगन्धि निकल रही थी, क्योंकि भगवान् ने दूध के साथ उसकी वासना को भी पी लिया था ।

जिघांसयाऽपि हरये स्तनं दत्त्वाऽपि सद्गतिम् ।
किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।
यच्छन् प्रियतमं किन्नु रक्तास्तन्मातरो यथा ।।
(भा० १०/६/३५-३६)

पूतना ने श्रीभगवान् को मार डालने की ही इच्छा से दूध पिलाया था और वह उस गति को प्राप्त कर ली जो गति सत्पुरुषों को प्राप्त होती है । जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण को श्रद्धा पूर्वक अपने प्रियतम वस्तु को प्रदान करता है जैसे माताएँ; तो उसके विषय में कहना ही क्या है । उस राक्षसी को भी भगवान् ने माता की गति प्रदान की। श्रीभगवान् ने व्रज की गोपियों और गायों का दूध पिया । उनके सौभाग्य की तो कोई सीमा ही नहीं है । सब लोगों ने पूतना वध की कथा नन्दजी को सुनाया । श्रीनन्दजी आश्चर्य चकित थे । उन्होंने भगवान् को अपनी गोद में लेकर उनका माथा सूँघा । जो व्यक्ति इस पूतनावध की कथा को सुनता है । उसे भगवान् में प्रेम प्राप्त होता है।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सातवाँ अध्याय

शकटासुर तथा तृणावर्त का उद्धार

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से कहा– भगवन् ! श्रीभगवान् की लीलाओं का श्रवण करने से मानव का मन पवित्र हो जाता है । अतएव आप कृपा करके मुझे श्रीभगवान् की अन्य लीलाओं को सुनाइये । श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि एक दिन श्रीभगवान् के करवट बदलने का अभिषेक उत्सव मन रहा था, उसी दिन श्रीभगवान् का जन्म नक्षत्र भी था । श्री यशोदाजी बालक श्रीकृष्ण भगवान् को एक गाड़ी के नीचे सुलाकर घर में आयी हुई महिलाओं का सत्कार करने में लगी थीं। थोड़ी देर में श्रीभगवान् जगे और स्तनपान करने के

लिए रोने लगे । कार्य में व्यस्त यशोदाजी भगवान् श्रीकृष्ण के रोने की आवाज सुन न सकीं । इधर रोते-रोते भगवान् ने गाड़ी पर ऐसा पैर मारा कि वह गाड़ी उलट गयी और उस पर रखा हुआ सारा समान गिर पड़ा । सभी गोप आश्चर्य चकित थे कि यह क्या हो गया । बच्चों ने बतलाया कि यह बाल श्रीकृष्ण ने ही पैर मार करे इसे उलट दिया है, किन्तु गोप उन बच्चों की बात पर विश्वास नहीं किए । यशोदाजी ने समझा कि हो सकता है कि कोई ग्रह का उत्पात हो । उन्होंने शिशु श्रीकृष्ण को अपनी गोद में लेकर दूध पिलाया और फिर सुला दिया। नन्दजी ने सत्यवादी ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययन का पाठ कराकर शान्ति कराया । इस तरह श्रीभगवान् ने देह रहित शकटासुर का उद्धार किया।

एक दिन यशोदाजी बालक श्रीकृष्ण को गोद में लेकर घुमा रही थीं कि शिशु श्रीकृष्ण सहसा चट्टान की तरह भारी हो गए । श्रीभगवान् के भार को सम्हाल न सकने के कारण आश्चर्यचकित यशोदाजी ने उन्हें पृथिवी पर रख दिया तथा भगवान् पुरुषोत्तम का स्मरण करने लगीं ।

उसी समय कंस का सेवक तृणावर्त कंस की प्रेरणा से गोकुल में आया और अपने वेग से गोकुल में इतनी धूल उड़ा रहा था कि कोई कुछ देख नहीं पा रहा था । गोकुल में अंधेरा छा गया । वह पृथिवी पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण को उठाकर आकाश में ले गया । बवंडर शान्त होने पर यशोदाजी वहाँ आयी जहाँ उन्होंने शिशु श्रीकृष्ण को छोड़ रखा था । शिशु श्रीकृष्ण को न पाकर वे बेहोश हो गयीं । इधर तृणावर्त भगवान् के भार को सह नहीं सका । भगवान् ने उसका गला इतने जोर से पकड़ लिया था कि उसकी आँखे बाहर आ गयीं । उसके प्राण निकल गए और वह व्रज में ही गिर पड़ा । वह एक चट्टान पर गिर पड़ा । उसके अंग चूर-चूर हो गये । भगवान् श्रीकृष्ण उसकी छाती पर बैठे हुए थे । यह देखकर गोपियों ने दौड़कर भगवान् को उठाया और लाकर उन्हें यशोदाजी को दे दिया । यशोदाजी ने सोचा कि मेरा यह शिशु श्रीकृष्ण मानों मृत्यु के मुख से लौटकर आया है । सभी गोप आपस में कहने लगे ।

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा, बालो निवृतिं गमितोऽभ्यगात् पुनः ।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः, साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ।।
(भा० १०/७/३१)

अरे यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, यह अत्यन्त अद्भुत घटना घट गयी । राक्षस ने तो इस बालक को मृत्यु के मुख में डाल दिया था, किन्तु यह बालक बच गया । उस हिंसक दुष्ट को तो उसका पाप ही खा गया । साधु पुरुष अपनी समदृष्टि के ही कारण समस्त भयों से मुक्त हो जाते हैं । सब लोग अपना अहो भाग्य मान रहे थे । नन्दजी सोच रहे थे कि इस गोकुल में तो आए दिन घटना घटती ही रहती है। माँ यशोदा तो वात्सल्य रस से परिपूर्ण हो रही थीं । बालक श्रीकृष्ण दुग्ध पीकर तृप्त हो गये । माँ उनका मुँह चूम रही थीं कि भगवान् को जँभाई आ गयी । माँ ने उनके मुख में देखा–

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः, सूर्येन्दुवह्निः श्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि, भूतानि यानि स्थिरजंगमानि ।।
(भा० १०/७/३६)

आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मडल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन एवं समस्त चराचर प्राणी उनके मुख में स्थित हैं । अपने पुत्र के मुख में उन सारी चीजों को देखकर यशोदजी भय से काँपने लगीं । वे डर गयीं, उन्होंने अपनी आँखे बन्द कर लीं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

आठवाँ अध्याय

नामकरण संस्कार और बाललीला

यदुवंशियों के कुल पुरोहित गर्ग महर्षि थे । वे अत्यन्त तपस्वी थे । वसुदेवजी से प्रेरणा प्राप्त कर वे एक दिन गोकुल में नन्दजी के यहाँ आये । नन्दजी ने उनकी पूजा की और बैठाया । आये हुए श्रीगर्ग महर्षि को देखकर नन्दजी ने अपने भाग्य की सराहना की । उन्होंने कहा भगवन् आप हमारा कल्याण करने के ही लिए आए हैं । आप

भविष्यद्रष्टा एवं ज्योतिष् शास्त्र के प्रणेता हैं । अतएव हमारे इन दोनों बालकों का नामकरण संस्कार आप ही सम्पन्न कर दें ।

श्रीगर्ग महर्षि ने कहा कि नन्दजी मैं यदुवंशियों का गुरु हूँ । यदि मैं आपके पुत्रों का संस्कार कर दूँ तो कंस जानेगा कि ये देवकी के ही पुत्र हैं । आपकी वसुदेवजी से धनिष्ट मित्रता भी है । नन्दजी ने कहा कि आप इन बालकों का गुप्त रूप से संस्कार कर दें । इसे कोई नहीं जानेगा । तब गर्ग महर्षि ने एकान्त में उने दोनों बालकों का नामकरण संस्कार कर दिया । श्रीगर्ग महर्षि ने कहा–

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः ।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ।
यदूनामपृथग्भावात् संकर्षणमुशन्त्युत ।
(भा० १०/८/१२)

यह रोहिणी का पुत्र होने से रौहिणेय कहलायेगा । अपने सद्गुणों से सुहृदों का रञ्जन करने के कारण इसका नाम राम होगा तथा बलाधिक्य के कारण इसका नाम बलराम होगा । यह यादवों में तथा आप लोगों में कोई भेदभाव नहीं रखेगा । अतएव इसका नाम संकर्षण होगा । यह श्याम वर्ण का जो बालक है यह प्रत्येक युग में शरीर धारण करता है । पिछले युगों में इसने श्वेत, रक्त एवं पीत वर्ण स्वीकार किया था । इस बार इसका वर्ण कृष्ण है अतएव इसका नाम कृष्ण होगा । यह कभी वसुदेवजी के घर पैदा हुआ था अतएव यह वासुदेव भी कहलायेगा । यह आप लोगों का बहुत कल्याण करेगा । इसकी सहायता से आप लोग बड़ी-से-बड़ी विपत्ति पार कर लेंगे । इस शिशु से प्रेम करने वाले लोग बड़े भाग्यवान होंगे ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि जब राम एवं श्याम घुटनों के बल चलने लगे तो अनेक प्रकार की बाल क्रीड़ाओं को करते हुए गोपियों, गोपों एवं श्रोताओं का मनोरञ्जन करने लगे । माताएँ अपने इन दोनों बालकों में ही आसक्तचित होने के कारण घर का काम-काज भी नहीं देख पाती थीं । जब राम एवं श्याम अपने पैरों से चलने लगे तब तो इनका उत्पात और बढ़ गया । गोपियाँ अनेक प्रकार से इनकी उलाहना लेकर यशोदाजी के पास आती गोपियाँ कहती थीं यह अन्धेरे में रखी हुई हमारी वस्तुओं को देख लेता है–

एकदाक्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।
कृष्णो मृदं भक्षितवान् इति मात्रे न्यवेदयन् ।।
(भा० १०/८/३२)

एक दिन बलराम इत्यादि ग्वाले बाल श्रीकृष्ण के साथ खेल रहे थे उन सबों ने माता यशोदा से शिकायता की– माँ यह मिट्टी खाया है । माँ ने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर उन्हें डराते हुए कहा–

कस्मान् मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः ।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ।।
(भा० १०/८/३४)

कृष्ण ! तुम बड़े ही ढीठ हो गये हो । एकान्त में बैठकर तुमने मिट्टी क्यों खाया है ? ये सभी तुम्हारे मित्र तथा तुम्हारा बड़ा भाई दाऊ भी यही कहता है । श्रीकृष्ण ने कहा माँ मैंने मिट्टी नहीं खाया है । ये सब झूठ बोलते हैं । यदि तुम्हें सन्देह हो तो तुम मेरा मुहँ देख लो । यशोदाजी ने जब भगवान् का मुँह देखा तो उसमें उन्हें सारा ब्रह्माण्ड ही दिखाई दिया । यह देखकर यशोदा जी भयभीत हो गयीं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

नवाँ अध्याय

ऊखल बँधन लीला

एक वार नन्दजी की पत्नी श्रीयशोदाजी दासियों को घर के दूसरे कामों में नियुक्त कर स्वयं दधिमन्थन कर रही थीं । भगवान् श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित समस्त गीतों को याद करके वे गा रही थीं । रेशमी वस्त्र धारण किए हुए यशोदाजी के अपने पुत्र स्नेह के कारण स्तनों से दूध चू रहा था । दधिमन्थन करने से वे श्रान्त हो गयी थीं और उनके केशपाश में लगी नालती माला भूमि पर गिर पड़ी थी। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण माँ का दूध पीने की कामना से यशोदाजी के पास आये और दही की मथानी पकड़ लिए । माँ ने दधिमन्थन का

कार्य बन्द कर दिया । गोद में भगवान् को लेकर वे दूध पिलाने लगीं तथा प्रेम पूर्वक भगवान् के मनोहर मुखड़े को देख रही थीं । इतने में ही अंगीठी पर रखे हुए दूध में उफान आया और भगवान् को अतृप्त ही छोड़कर माता यशोदा दूध को देखने चली गयीं । और फिर क्या था।

सञ्जातकोपः स्फुरिता रुणाधरं, संदश्यदद्भिर्दधिमन्थभाजनम् ।
भित्वामृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयंगवमन्तरं गतः ।।
(भा० १०/९/६)

भगवान् श्रीकृष्ण को क्रोध आ गया । उनके लाल-लाल ओष्ठ फड़कने लगे । भगवान् ने अपने लाल ओष्ठों को क्रोध के मारे दाँतों से काट लिया और पास में पड़े हुए लोढ़े को उठाकर दही के पात्र पर दे मारा । दधि पात्र फूट गया । माँ मारेगी इस भय से भगवान् की आँखों में बनावटी आँसू भर गये तथा वे दूसरे कक्ष में जाकर अकेले में बासी मक्खन खाने लगे । माँ जब दूध उतार कर लौटीं तो अपने पुत्र के इस कर्म को देखकर उन्हें हँसी आ गयी, किन्तु सहसा याद आया इस तरह से तो मेरा श्रीकृष्ण शरारती हो जायेगा । उन्होंने देखा श्रीकृष्ण उलटे हुए उखल पर खड़े होकर छीके पर रखे हुए माँखन को बन्दरों को बाँट रहे थे । माँ ने अपने हाथ में छड़ी ले ली । वे चुपके से श्रीकृष्ण के पास पहुँचना ही चाहती थीं कि उन्हें श्रीकृष्ण ने देख लिया । वे तेजी से वहाँ से भाग चले । यशोदा भी उन्हें पकड़ने के लिए उनके पीछे-पीछे दौड़ी । यशोदाजी बड़ी ही मुश्किल से उन्हें पकड़ पायीं ।

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कषन्तमञ्जुमषिणी स्वपाणिना ।
उद्वीक्षमाणा भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहित्वा भिषयन्त्यवागुरात् ।।
(भा० १०/९/११)

माँ ने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और उन्हें डराने धमकाने लगीं । उस समय श्रीभगवान् की शोभा विलक्षण थी । उन्होंने अपराध तो किया ही था अतएव वे अपनी रुलाई रोक नहीं पाते थे । वे अपने हाथ से आँखों को मलते थे अतएव मुखड़े पर काजल की स्याही फैल गयी थी । भय के कारण वे ऊपर की ओर देख रहे थे जिसके कारण व्याकुलता सूचित होती थी । डरे हुए श्रीभगवान् को देखकर माँ ने हाथ से छड़ी फेंक दी । वे श्रीभगवान् के पराक्रम को नहीं जानती थीं उन्होंने सोचा श्रीकृष्ण को मैं रस्सी से बाँध दूँ । यशोदाजी ने रस्सी को ऊखल

से बाँधकर सम्पूर्ण जगत् में व्यापक श्रीभगवान् को बाँधने का प्रयास किया; किन्तु रस्सी दो अंगुल कम हो गयी । यशोदाजी ने फिर रस्सी जोड़ा, किन्तु वह भी दो अंगुल कम हो गयी । सारे प्रयास के बाद रस्सी दो अंगुल कम ही रह जाती थी । गोपियाँ माँ के प्रयास को देखकर मुस्कुरा रही थीं । आश्चर्य चकित माँ भी थक गयी थीं अपने प्रयास से निरास होकर माँ मुस्कुकराने लगीं । माँ को थका देखकर श्रीभगवान् माँ के बन्धन में आ गये ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा जिस भगवान् को प्रयास करके भी ब्रह्माजी शंकरजी आदि देवता नहीं प्राप्त कर सके, उन्हें माँ ने अपने बन्धन में बाँध दिया–

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथाभक्तिमतामिह ।।

(भा० १०/९/२१)

यशोदानंदन भगवान् श्रीकृष्ण अपने अनन्य प्रेमी भक्तों के लिए जितना सुलभ हैं, उतना सुलभ वे दूसरे देहाभिमानियों तथा ज्ञानियों के लिए नहीं हैं । भगवान् को बाँधकर माँ तो गृहकार्य में लग गयीं किन्तु भगवान् ने उन दो अर्जुन वृक्षों को मुक्ति प्रदान करना चाहा जो पहले कुबेर के नल कूबर एवं मणिग्रीव नामक पुत्र थे तथा देवर्षि नारदजी के शाप से वृक्ष हो गये थे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

दसवाँ अध्याय

यमलार्जुन का उद्धार

परीक्षित् ने पूछा महाराज नलकूबर ओर मणिग्रीव ने कौन सा ऐसा अपराध किया था जिसके कारण देवर्षि नारदजी को भी क्रोध आ गया और उन्होंने शाप दे दिया । श्रीशुकदेवजी ने कहा कि नलकूबर और मणिग्रीव दोनों कुबेर के पुत्र थे तथा शंकरजी के अनुचर भी ।

इसलिए धमण्ड में भरकर इन दोनों ने मदिरा पीकर अप्सराओं के साथ गंगा में नग्न होकर जलक्रीडा करना प्रारम्भ किया । उसी समय उधर नारदजी आये । नारदजी को देखकर अप्सराओं ने तो वस्त्र धारण कर लिया किन्तु ये दोनों नंगे ही रहे । यह देखकर नारदजी ने शाप दिया; तुम लोग श्रीमद् से युक्त हो । यही सब से बड़ा नाश है । तुम लोग अपने शरीर को ही नित्य समझते हो अतएव–

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम् ।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ।।
(भा० १०/१०/१३)

जो दुष्ट श्रीमद से अन्धे बन गये हैं उनकी आँखों में ज्योति डालने के लिए दारिद्रय ही सर्वोत्तम अंजन है । दरिद्र ही यह देख सकता है कि दूसरे प्राणी भी मेरे जैसे हैं । जिसके शरीर में एक बार काँटा गड़ जाता है वह नहीं चाहता है कि दूसरे के भी शरीर में काटा गड़े । दरिद्र अहंकार रहित होता है । उसमें किसी भी प्रकार का अभिमान नहीं होता है । दरिद्र हिंसा नहीं करता है । ये दोनों लोकपाल कुबेर के पुत्र हैं । मदमत्त होने के कारण इन्हें यह भी पता नहीं है कि मैं नंगा हूँ । अतएव ये दोनों स्थावर की योनि में जाने योग्य है, जिससे कि ये पुनः इस प्रकार का अनर्थ न करें । उन योनियों में भी इन्हें अपनी बात याद रहेगी । भगवान् का संबन्ध होने पर ये दोनों मुक्त हो जायेंगे । इस प्रकार का शाप देकर नारदजी वदरिकाश्रम चले गये । नलकूबर तथा मणिग्रीव जुड़वे अर्जुन वृक्ष हो गए । देवर्षि की वाणी सत्य करने के लिए श्रीभगवान् उन दोनों वृक्षों के पास पहुँचे । श्रीभगवान् ने सोचा–

देवर्षि में प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ।
तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ।।
(भा० १०/१०/२५)

देवर्षि नारद मेरे अत्यन्त प्रिय हैं । ये दोनों कुबेर के पुत्र हैं अतएव देवर्षि नारद ने जैसा कहा है वैसे ही मैं इन दोनों को मुक्त करूँगा। यह सोचकर भगवान् दोनों पेड़ों के बीच में प्रवेश कर गये, किन्तु ऊखल दोनों के बीच में ही अटक गया । भगवान् के कमर में ऊखल की रस्सी बँधी थी । भगवान् ने थोड़ा सा जोड़ लगाया तो

दोनों वृक्ष जड़ से ही उखड़कर गिर पड़े । उन दोनो वृक्षों से दो सिद्ध पुरुष निकल कर श्रीभगवान् की स्तुति किए । उन दोनों ने अपनी स्तुति का उपसंहार करते हुए कहा–

वाणी गुणानुकथाने श्रवणौ कथायां ।
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवास जगत् प्रणामे ।
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ।।

(भा० १०/१०/३८)

प्रभो ! हमारी बाणी आपके गुणों का वर्णन करती रहे, हमारे दोनों कान आपकी कथा का श्रवण करते रहें । हम अपने हाथों से आपकी सेवा करते रहें तथा हमारा मन आपके चरणों में लगा रहे । यह जगत् आपका निवास स्थान है । हमारा शिर सबों के समझ झुका रहे । सन्त आपके शरीर हैं हमारी आँखे उनका दर्शन करती रहें । इसके पश्चात् प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उन दोनों को भक्ति का वरदान देकर प्रेषित किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

ग्यारहवाँ अध्याय

गोकुल से वृन्दावन गमन, वत्सासुर और बकासुर का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि उन दोनों वृक्षों के गिरने से बहुत जोर से आवाज हुई । सबलोग वहाँ दौड़कर आए तो देखे दोनों वृक्ष उखड़े पड़े हैं । किसी को कुछ समझ में नहीं आया कि ये दोनों वृक्ष कैसे उखड़े पड़े हैं । वहाँ पर खेलते हुए बच्चों ने बतलाया कि यह काम कन्हैया का है । हम लोगों ने इनमें से निकलते हुए दो पुरुषों को भी देखा है किन्तु कोई भी उन बच्चों के कहने पर विश्वास नहीं किया । नन्द बाबा ने देखा कन्हैया बँधा हुआ है वे हँसने लगे और कन्हैंया को शीघ्र बन्धन मुक्त किए ।

भगवान् श्रीकृष्ण अनेक प्रकार की बाल लीला करते थे । किसी की आज्ञा से पीढा लाते थे तो किसी के कहने से बाट उठा लाते थे।

एक दिन फल बेचने वाली ने दरवाजे पर आकर पुकारा फल ले लो । श्रीभगवान् उसकी आवाज सुनते ही अपने दोनों हाथों में धान भरकर दौड़ पड़े किन्तु दरवाजे पर आते-आते उनके हाथ से सारा धान गिर चुका था । फलवाली ने भगवान् के खाली हाथों को फल से भर दिया और श्रीभगवान् ने उसकी टोकरी को रत्नों से भर दिया ।

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम बहुत देर से ग्वालों के साथ खेल रहे थे । पुकारने पर भी जब वे नहीं आए तो उन्हें बुलाने के लिए जाकर यशोदाजी ने कहा–

हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन ।
प्रातरेव कृताहारस्तद् भवान् भोक्तुमर्हति ।।
प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजधिपः ।
एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ।।

(भा० १०/११/१६-१७)

हे बलराम ! हे तात ! तुम तो सम्पूर्ण वंश को आनन्द देने वाले हो । अपने छोटे भाई को साथ लेकर शीघ्र चले आओ । तुमने बहुत सबेरे भोजन किया था । अतएव आकर भोजन कर लो । व्रजराज भोजन करने बैठ गये हैं और तुम्हारी बाट देख रहे हैं । आओ हम लोगों को आनन्दित करो । बच्चों तुम लोग अपने-अपने घर चले जाओ । आज तुम्हारा जन्म नक्षत्र है आकर ब्राह्मणों को गोदान करो। इस तरह माता यशोदा भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम को पकड़कर घर लायीं और उनका मंगल संस्कार किया ।

जब सभी बड़े-बूढे गोपों ने देखा कि गोकुल में आए दिन उत्पात ही उत्पात हो रहे है तो वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध उपनन्दजी की बात मानकर सब लोगों ने वृन्दावन जाने का निश्चय किया । सब लोगों ने गाड़ियों पर अपना सारा समान लाद लिया और वृन्दावन के लिए चल पड़े । उन लोगों ने गौओं और बछड़ों को आगे कर लिया तथा पीछे तुरही इत्यादि वाद्यों को बजाते हुए चल पड़े । गोपियाँ भी सजधज कर भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं को गाती चल पड़ी । सब लोग वहाँ पर आकर वृन्दावन की शोभा देखकर प्रसन्न हुए । बलराम

और श्रीकृष्ण ने भी वनों तथा यमुना की शोभा को देखकर आनन्द का अनुभव किया । श्रीकृष्ण और बलराम अपनी तोतली बोली से लोगों को अनन्द दे रहे थे । अब वे अपने गोष्ठ के ही सन्निकट बछड़ों को चराने लग गए थे तथा ग्वाल बालों के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा करते थे ।

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण और बलराजी यमुना तट पर बछड़ों को चरा रहे थे कि उनको मारने की नियत से कंस का दूत वत्सासुर आया । भगवान् उस बनावटी बछड़ै को देखकर पहचान लिए और बलरामजी को उसे दिखला दिया । अन्त में भगवान् ने उसे पकड़ कर मार दिया। यह देखकर सभी ग्वाले अत्यन्त प्रसन्न हुए और देवताओं ने फूलों की वर्षा की ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि अब त्रैलोक्याधिपति श्रीभगवान् वत्सपाल हो गये । प्रातःकाल की कलेवे की सारी सामग्री लेकर बछड़ों को चराने के लिए वन में चले जाते थे । एक बार सभी गोप अपने बछड़ों को यमुना के तट पर चरा रहे थे । उसी समय श्रीकृष्ण को मारने की इच्छा से बकासुर आया पहले तो उसने श्रीकृष्ण को निगल लिया । यह देखकर सभी गोप बेचैन हो गये । किन्तु भगवान् उस बकासुर के गले में जाकर आग के समान जलने लगे, जिससे उसने भगवान् को उगल दिया और भगवान् पर प्रहार करने की इच्छा से टूट पड़ा । किन्तु भगवान् ने अपने दोनों हाथों से उसकी चोंच पकड़कर अनायास ही चीर डाला । मरे हुए बकासुर को देखकर गोपगण अत्यन्त प्रसन्न हुए । देवताओं ने श्रीभगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा की। श्रीनन्दजी इत्यादि वृद्ध गोपों ने जब यह समाचार सुना तो सब कहने लगे ब्रह्मवेत्ताओं का वचन कभी झूठ नहीं होता है । श्रीकृष्ण के विषय में गर्गाचार्य ने जैसा-जैसा कहा है वैसी ही घटना हो रही है ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

बारहवाँ अध्याय

अघासुर का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने कहा राजन् ! एकबार श्रीभगवान् वन में ही कलेवा करने की इच्छा से प्रातःकाल उठकर वंशी की ध्वनि से अपने साथियों को जगाए और सबों के साथ वन में चल पड़े । उनके सभी साथी भी अपने-अपने बछड़ों को लेकर चल पड़े । सबों के पास अपना कलेवा था । उन सबों ने अपने हजारों बछड़ों को श्रीभगवान् के बछड़ों के साथ मिला दिया और वन में चलते हुए अनेक प्रकार की बाल सुलभ क्रीड़ा करने लगे । कोई कोयल की ध्वनि का अनुकरण करता था तो कोई हंस की गति का । कोई बक के ध्यान का अनुसरण करता था तो कोई मयूर के नृत्य का । यदि भगवान् कुछ आगे वन में निकल जाते तो सभी दौड़-दौड़ कर उनको सबसे पहले छूने का प्रयास करते थे और हर्ष का अनुभव करते थे ।

इत्थं सतां ब्रह्म सुखानुभूत्या, दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ।।
यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।
स एव यादृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ।।
(भा० १०/१२/११-१२)

ज्ञानी संतो के लिए भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् मूर्तिमान् ब्रह्मानन्दानुभव स्वरूप हैं । दास्यभाव वाले भक्तों के लिये वे परमाराध्या, परमैश्वर्य सम्पन्न तथा परमेश्वर हैं । माया मोहित विषयी जीवों के लिए वे एक बालक हैं । इस प्रकार के श्रीभगवान् के साथ अत्यधिक पुण्यवान् ग्वाल बाल खेल खेल रहे हैं । अनेक जन्मों तक कठोर तपस्या करके जिन लोगों ने अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में कर लिया है, ऐसे योगी भी भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों की धूलि प्राप्त करने में असमर्थ हो जाते हैं । वे ही श्रीभगवान् व्रजवासी

ग्वालों के साथ रहकर क्रीडा करते हैं । यह गोप बालों के सर्वोत्तम पुण्य का फल हैं ।

इसी समय कंस द्वारा प्रेषित पूतना तथा बकासुर का छोटा भाई अघासुर वहाँ आया जहाँ भगवान् क्रीडा कर रहे थे । वह श्रीभगवान् की क्रीड़ा को नहीं देख सका । उसके मन में जलन होने लगी । वह श्रीकृष्ण तथा ग्वालों को मारने की इच्छा से विशाल एक योजना लम्बा तथा मोटा सर्प बनकर मार्ग में लेट गया । सभी ग्वालों एवं भगवान् श्रीकृष्ण को निगल जाने की इच्छा से वह अपना मुँह फैला रखा था। उसकी आँखे चमक रही थीं । उसने भगवानृ श्रीकृष्ण को देखा ओर जान लिया कि यह मेरी बहन पूतना और मेरे भाई बकासुर को मारने वाला है अतएव इसको तो मै इसके साथियों के साथ ही मार डालूँगा। उसका ऊपर का ओठ बादलों को छू रहा था और अधरोष्ठ पृथिवी से लगा था । ग्वालों ने सोचा यह कोई पर्वत की कन्दरा है और वे अधासुर के मुख में प्रवेश कर गये । भगवान् ने उन बालकों को रोकना चाहा तब तक तो वे सब के सब प्रवेश कर चुके थे ।

तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो, ह्यनन्यनाथान् स्वकरादवच्युतान् ।
दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्, घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ।।
कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं नवा अमीषां च सतां विहिंसनम् ।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्यतज्ज्ञात्वाविशत् तुण्डमशेषदृग्घरिः ।।
(भा० १०/१२/२७-२८)

भगवान् श्रीकृष्ण सबों को अभय प्रदान करने वाले हैं । उन्होंने देखा ये ग्वाल-बाल जिनका मैं रक्षक हूँ मेरे हाथ से निकल गये । जैसे कोई तिनका उड़कर आग में पड़ जाय वैसे ही ये अघासुर की जाठराग्नि के ग्रास बन गये; तो दैव के इस विचित्र लीला पर श्रीभगवान् को बड़ा आश्चर्य हुआ और उनका हृदय दया से भर गया। वे सोचने लगे अब मैं क्या करूँ कि यह दैत्य भी मर जाय और इन भोले-भाले बालकों की भी रक्षा हो जाय । ये दोनों काम कैसे हो ? भगवान् तो सर्वज्ञ हैं उनके लिए इसका उपाय जानना आसान था । वे भी उस असुर के मुख में प्रवेश कर गये । यह देखकर देवता तो हाय-हाय करने लगे और असुर प्रसन्न हो गये । अघासुर अपनी दाढ़ों से सबों को दबोच कर चूर-चूर कर डालना चाहता था कि उसके गले

में भगवान् अपना शरीर बढ़ाने लगे । उसका श्वास रुक गया और उसका मस्तक फाड़कर उसके प्राण निकल गये । भगवान् ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से सबों को जीवित कर दिया । और सब के सब अघासुर के मुख मार्ग से निकल आये । अघासुर के शरीर से निकली उसकी प्राणज्योति श्रीभगवान् में प्रवेश कर गयी । वह श्रीभगवान् की सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लिया । अघासुर के मरने के पश्चात् भी उस अजगर का चमड़ा व्रजवासियों को बहुत दिन तक आश्चर्य चकित करता रहा ।

श्रीभगवान् की इस कथा को सुनकर राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से प्रार्थना किया कि आप हमें भगवान् की रहस्यमयी लीलाओं को सुनाएँ । यह सुनते ही श्रीशुकदेवजी को समाधि लग गयी कुछ देर के पश्चात् उन्होंने पुनः श्रीभगवान् की लीला का वर्णन प्रारम्भ किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भगवत कथा के दसवें स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी का मोह

श्रीशुकदेवजी ने कहा– राजन् तुम बड़े ही भाग्यवान् हो । तुम भगवद्भक्तों में अग्रगण्य हो । भगवद्भक्तों की श्रीभगवान् की लीलाओं के श्रवण में सदा नवीन रूचि बढ़ती ही रहती है । अब जो मैं तुम्हें भगवान् की कथा सुनाने जा रहा हूँ वह अत्यन्त रहस्यमयी है । उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो ।

श्रीशुकदेवजी ने आगे कहा– अघासुर का बध करने के पश्चात् भगवान् गोप बालकों तथा बछड़ों के साथ यमुना के तट पर आए और कहे कि यह स्थान हम लोगों के क्रीड़ा के अनुकूल है । दिन भी बहुत चढ़ गया है । अतएव हम लोगों को भोजन भी कर लेना चाहिए।

बछड़े भी पास में ही हरी-हरी घास चरते रहेंगे । सबो ने श्रीभगवान् की बातों का अनुमोदन किया । सबने अपनी-अपनी भोजन की पोटली खोली और श्रीभगवान् के साथ भोजन करने के लिए बैठ गये । सबों के बीच में भगवान् श्रीकृष्ण बैठे थे और सभी ग्वाल उनकी ओर मुँह करके गोल मण्डलाकर पंक्ति बनाकर बैठ गये । लग रहा था जैसे कमल की कर्णिका के चारो ओर उसकी छोटी-छोटी पंखुड़ियाँ बिखरी हों । सबके-सब अपनी-अपनी रूचि का भोजन कर रहे थे वे आपस में हँसकर लोट-पोट भी हो जाते थे । उस समय भगवान् की शोभा अद्भुत थी–

विभ्रद्वेणुं जठरपुटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे,
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः,
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ।।

(भा० १०/१३/११)

मुरली को वे कमर की फेट में आगे की ओर खोंस लिए थे । सिंगी और बेंत बगल में दबा लिए थे । बाएँ हाथ में बड़ा ही मधुर घृतमिश्रित दही और भात का कवल था और अंगुलियों में अदरक, मिर्च, नीबू आदि ने दबाये हुये थे । ग्वाल बाल उनको चारों ओर से घेर कर बैठे थे । वे स्वयं सबों के बीच में अपनी विनोद भरी बातों से अपने सभी ग्वाल-बालों को हँसा रहे थे । जो श्रीभगवान् समस्त यज्ञों के एकमात्र भोक्ता हैं, वे ही भगवान् बालकेलि करते हुए ग्वाल बालों के साथ बैठकर इस प्रकार से भोजन कर रहे थे । स्वर्ग के देवता आश्चर्य चकित होकर श्रीभगवान् की इस बाल लीला को देख रहे थे । इस तरह सभी भोजन में इतने तन्मय हो गये कि उन्हें बछड़ों की याद ही नहीं थी । जब उन्हें याद आयी तो बछड़े घास चरते हुए बहुत दूर चले गये थे । भगवान् ने कहा आप लोग भोजन करना मत बन्द करो मैं बछड़ों को ले आ रहा हूँ । वे अपने हाथ में दही और भात का कवल लिए हुए बछड़ों को खोजने वनों और कन्दराओं में गये । ब्रह्माजी तो वहाँ आकाश में पहले से ही विद्यमान थे उन्होंने अघासुर का मोक्ष भी देखा था । श्रीभगवान् की अन्य मनोहर लीलाओं को देखने के लिए

पहले तो बछड़ों को और भगवान् श्रीकृष्ण के चले जाने पर गोप बालकों को अन्यत्र रख दिया । बछड़ों को नहीं पाकर भगवान् जब लौटे तो ग्वालों को भी नहीं पाए । श्रीभगवान् तो सर्वज्ञ हैं । उन्होंने जान लिया कि यह सारा कार्य ब्रह्माजी का है । इसके बाद श्रीभगवान् ने गोप बालकों की माताओं की प्रसन्नता के लिए सम्पूर्ण बछड़ों तथा गोप बलकों का रूप बना लिया । भगवान् समस्त गोप बालकों के वस्त्र, लाठी, उनकी क्रीड़ा आदि के रूप में परिणत हो गए तथा सर्व स्वरूप होकर सबों के साथ बिहार करते हुए शाम को व्रज में गए । जिन ग्वाल बालों के जो बछड़े थे उन्हीं के गोष्ठ में भगवान् तत्-तत् रूप धारण करके प्रवेश करा दिए ।

वंशी की आवाज सुनकर ग्वालों की माताएँ आयीं । ग्वाल-बाल बने हुए श्रीकृष्ण को अपना पुत्र समझकर हृदय से लगायीं । तथा स्नेहाधिक्य के कारण स्तन से बहते हुए मधुर दुग्ध पिलाने लगीं । इस तरह श्रीभवगान् एक वर्ष तक समस्त बछड़ों, ग्वालों आदि का रूप धारण करके क्रीड़ा करते रहे । इस अवधि में समस्त गायों तथा ग्वालिनों का अपने पुत्रों तथा बछड़ों के प्रति स्नेह भर गया था । उन सबों का अपने वत्सों पर उसी प्रकार से प्रेम था जिस प्रकार का प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति था । जब एक दिन वर्ष पूरा होने में पाँच छह रात्रियाँ शेष थीं उस समय भगवान् श्रीकृष्ण बालरामजी के साथ बछड़ों को चराने वन में गये । उस समय गायें गोवर्धन पर्वत पर चर रही थीं। उन सबों ने दूर से ही अपने बछड़ों को देखा और ग्वालों को रोकते रहने पर भी दौड़कर आयीं और अपने बछड़ों को दूध पिलाने लगीं । वे अपने बछड़ो को अत्यन्त प्रेम से चाट रही थीं । गायों को चराने वाले बड़े-बूढ़े गोपों को पहले तो गयों पर बड़ा ही क्रोध आया किन्तु वे भी जब वहाँ आये तो अपने गोप बालकों को देखकर प्रेम में सराबोर हो गए । बच्चों को गोद में उठा लिए । बहुत देर के बाद किसी प्रकार बछड़ों तथा बालकों को छोड़कर वे अपनी गायों को लेकर वहाँ से जा सके । फिर भी वे अपने बालकों एवं बछड़ों का स्पर्श याद कर आनन्द में मग्न हो जाते थे । बलरामजी इस रहस्य से अपरिचित थे । अतएव उन्हें गोपों आदि के उमड़ते हुए स्नेह को देखकर बड़ा आश्चर्य होता

था। वे समझ नहीं पाते थे इस रहस्य को । तब उन्होंने जब आत्मदृष्टि से देखा तो जाने कि इन समस्त गोप बालकों तथा बछड़ों के रूप में भगवान् ही प्रकाशित हो रहे हैं । यह देखकर उन्होंने इस प्रकार से अनेक रूप धारण करने का कारण श्रीभगवान् से पूछा तो श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी की करतूत को संक्षेप में बतलाया ।

इतने में ब्रह्माजी अपने लोक से व्रज में आये तो देखे कि आज भी भगवान् के साथ वे ही ग्वाल-बाल क्रीड़ा कर रहे हैं तथा वे ही बछड़े चर रहे हैं । ब्रह्माजी ने सोचा कि मैंने तो ग्वालों एवं बछड़ों को माया की शय्या पर सुला दिया था, आज तक वे गये नहीं, ये ग्वाल एवं बछड़े कहाँ से आ गये । वे दोनों स्थानों पर उन्हीं ग्वालों एवं बछड़ों को देखे । उन्हें समझ में नही आ रहा था कि इनमें से कौन असली हैं और कौन बनावटी ।

ब्रह्माजी विचार ही कर रहे थे कि उन्हें समस्त ग्वाल बाल और बछड़े उनकी सारी सामग्री श्रीकृष्ण रूप से दिखायी देने लगी । सब के सब पीताम्बर धारी, मयूर मुकुट से सुशोभित, श्यामवर्ण के श्रीकृष्ण थे । सबके सब चतुर्भुज तथा श्रीवत्सचिह्न एवं विविध अलंकारों से अलंकृत थे । इसके पश्चात् उन्होंने देखा उनके ही समान अनेक ब्रह्मा देवता एवं समस्त जगत् श्रीभगवान् की अर्चना कर रहे हैं ।

यह आश्चर्यमय दृश्य देखकर ब्रह्माजी अपने वाहन हंस से उतर गये । भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए । उन्होंने अपने चारों सिरों को श्रीभगवान् के चरणों पर रख दिया और बहुत देर तक पड़े रहे । धीरे-धीरे वे उठे और अपने प्रेम के आँसुओं को पोछें । अब वे काँप रहे थे । इसके बाद वे हाथ जोड़कर श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति

ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहा–

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय,
गुञ्जावतंस परिपिच्छ-लसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु,
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ।।

(भा० १०/१४/१)

प्रभो ! एक मात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं, मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ । आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेघ के समान श्याम वर्ण का है । आपके शरीर पर सुशोभित होने वाला यह पीताम्बर बिजली के समान चमक रहा है । आपके गले में घुंघची की माला, कानों में कुण्डल तथा सिर पर मयूर पिच्छ है । इन सबों की कान्ति से अपका मुख मण्डल सुशोभित हो रहा है । आपके वक्षस्थल पर वनमाला तथा हाथ में दहीं एवं भात का कौर सुशोभित हो रहा है। आप वेंत, सिंगी तथा मुरली धारण किए हुए हैं । आपका यह गोपाल वेष मैं; आपके समस्त शुभ लक्षणों से समलंकृत चरणों में प्रणाम करता हूँ । आपका यह श्रीविग्रह भक्तों की अभिलाषा को पूर्ण करने वाला है। मुझे अनुगृहीत करने के ही लिए आपने अपना यह रूप प्रकट किया है । आपके भक्त सन्त आपकी लीलाओं के श्रवण को ही अपने जीवन का धन समझते हैं और अपनी भक्ति के द्वारा आपको अपने वश में कर लेते हैं ।

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध लब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते ।
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ।।

(भा० १०/१४/४)

प्रभो ! आपकी भक्ति सभी प्रकार के कल्याणों का उद्गमस्थल है। उसको छोड़कर केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए तपस्या करके जो लोग कष्ट उठाते हैं, उनके हाथ तो केवल क्लेश ही लगता है अन्य कुछ नहीं । उसी तरह से जिस तरह भूसी कूटने वाले को केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं । प्रभो ! इस लोक में पहले भी अनेक योगी हो चुके हैं। योग के द्वारा जब उन्हें आपकी प्राप्ति नहीं हुई तब उन लोगों ने अपने समस्त कर्मों को आपके चरणों में समर्पित कर दिया । उससे उन्हें आपकी भक्ति की प्राप्ति हुई । उसके द्वारा उनलोगों ने आपके स्वरूप को जाना तथा बड़ी ही सुगमता से आपके परमपद की उन लोगों ने प्राप्ति कर ली ।

इस तरह से ब्रह्माजी ने अपने भाव भरे चालीस श्लोकों में श्रीभगवान् की स्तुति की । अपनी स्तुति का उपसंहार करते हुए ब्रह्माजी ने कहा–

श्रीकृष्ण वृष्णिकुल पुष्कर-जोष-दायिन्
क्ष्मानिर्जर-द्विज-पशूदधि-वृद्धि-कारिन् ।
उद्धर्मशार्वहर क्षितिराक्षसध्रु-
गाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ।।

(भा० १०/१४/४०)

हे श्याम सुन्दर अपनी रूप माधुरी के द्वारा आप सबों के मन तथा प्राण को आकर्षित करने वाले हैं । आप वृष्णि वंश रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य हैं । आप ब्राह्मण, पृथिवी, देव तथा समुद्र की अभिवृद्धि करने वाले चन्द्रमा हैं । पाखण्डियों के धर्म रूपी रात्रि के अन्धकार को दूर करने के लिए आप सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों हैं । आप पृथिवी के राक्षसों को विनष्ट करने वाले हैं । तथा चन्द्रमा सूर्य एवं देवताओं के भी पूजनीय हैं । मैं आजीवन आपको नमस्कार करता रहूँ ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की स्तुति की और उनकी तीन परिक्रमा करके अपने लोक चले गए । ब्रह्माजी ने बछड़ों को तथा ग्वालों को अपने-अपने स्थान पर पहुँचा दिया था । बछड़ों को लेकर भगवान् उसी पुलिन पर आयें जहाँ ग्वाल उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे । माया मोहित होने के कारण ग्वाल बालों को एक क्षण जैसा बीता था । श्रीभगवान् ने समस्त ग्वालों के साथ भोजन

किया तथा अघासुर के चमड़े को दिखाते हुए वे सबों के साथ व्रज में प्रवेश किए ।

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से पूछा– ब्रजवासियों के लिए तो श्रीभगवान् अपने पुत्र नहीं थे, वे दूसरे के पुत्र थे फिर उनको श्रीकृष्ण के प्रति इनता प्रेम कैसे हुआ ? शुकदेव जी ने कहा– संसार के सभी प्राणी सर्वाधिक प्रेम अपनी आत्मा से ही करते हैं । आत्मा को प्रिय होने के कारण ही वे धन इत्यादि को प्रिय समझते हैं । शरीर को ही आत्मा मानने वाले लोग सर्वाधिक प्रेम अपने शरीर से ही करते हैं। जब उन लोगों को यह ज्ञान हो जाता है कि मैं शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा ज्ञान आदि से भिन्न हूँ तब मनुष्य का स्नेह शरीर इत्यादि से भी उतना नहीं रह जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण तो समस्त आत्माओं की आत्मा है । जिस तरह से शरीर के भीतर आत्मा का निवास है उसी तरह आत्मा के भीतर परमात्मा श्रीकृष्ण का निवास है । संसार का कल्याण करने के लिए वे योगमाया का आश्रय लेकर शरीरधारी बन जाते हैं । आत्मा परमात्मा के स्वरूप को जानने वाले यह जानते हैं कि सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् श्रीकृष्ण का ही रूप है । जगत् के परम कल्याण श्रीभगवान् ही हैं । उन्हीं में जगत् का लय होता है। ऐसे महापुरुष बड़ी ही सुगमता से संसार को पार कर जाते हैं । श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि मैंने आपको भगवान् श्रीकृष्ण के पाँच वर्ष की अवस्था तक की बाल लीलाओं का वर्णन सुनाया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

धेनुकासुर का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने कहा– बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् अब छह वर्ष के हो गये थे । अब इन्हें गायें चराने की स्वीकृति मिल गयी थी । श्रीभगवान् अपने मित्रों के साथ गयों को लेकर चराने जाते थे उस समय वृन्दावन की शोभा अत्यन्त मनोहर थी । सम्पूर्ण वन पुष्पों

एवं फलों से परिपूर्ण हो गया था, भौंरे गुनगुना रहे थे; विविध प्रकार के पक्षी कलरव करते थे । वन की शोभा को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने बलरामजी से कहा– देव शिरोमणि ! आपकी सेवा तो बड़े-बड़े देवता भी करते हैं, किन्तु इस समय यहाँ के वृक्ष और उनकी शाखाएँ भी आपकी सेवा में संलग्न हैं । आपके चरणों के स्पर्श से यहाँ की भूमि, लताएँ एवं हरी-हरी घास सबके-सब कृतार्थ हो रहे हैं ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा– वृन्दावन की शोभा को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रमुदित थे । वे अपने ग्वालबाल मित्रों के साथ यमुना तट पर विचरण करते हुए अनेक प्रकार की क्रीड़ारस का अनुभव कर रहे थे । कभी मयूरों के साथ नृत्य करते थे, तो कभी विविध प्रकार के पक्षियों की बोली का अनुकरण करते थे । उनके सभी साथी भी उनका सहयोग करते थे ।

श्रीकृष्ण भगवान् के मित्रों में प्रधान मित्र श्रीदामा थे । उन्होंने श्रीकृष्ण और बलरामजी से कहा– प्रभो आपका तो स्वभाव हीं है दुष्टों को विनष्ट करना; यहाँ से थोड़ी दूर पर एक विस्तृत वन है । उसमें ताड़ के वृक्ष पंक्ति के पंक्ति में लगे हैं । वहाँ बहुत अधिक ताल के फल पक-पक कर गिरते रहते हैं । उन वन के ताल फल अत्यन्त सुगन्धित और मनोहर हैं । किन्तु वन में कोई भी मनुष्य अथवा पक्षी नहीं जाता है। क्योंकि इस समय उन वन को धेनुक नामक राक्षस और उसके सहचर छेका रखे हैं । ये राक्षस मानवों और पशु पक्षियों को खा जाते हैं । वे राक्षस गधे के रूप में रहते हैं । उस वन के फलों की सुगन्धि यहाँ तक आ रही हैं ।

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् ।
वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ।।
(भा० १०/१५/२६)

भगवन् ! उसकी सुगन्धि से हमारा मन मोहित हो गया है । उन फलों को आप हमें अवश्य खिलाएँ । बलरामजी ! हमें उन फलों को प्राप्त करने की अत्यन्त उत्कण्ठा है । यदि आप चाहें तो चल चलें, मित्र की बातें सुनकर हँसते हुए बलराम और श्रीकृष्ण उन सबों के साथ ताल बन की ओर चल पड़े । बलरामजी ने एक वृक्ष को पकड़कर जोर से हिला दिया और ताल के फल गिरने लगे । फलों के गिरने की

आवाज सुनकर क्रोध में भरकर धेनुकासुर आ गया । उसने बलरामजी पर दुलत्ती चला दी । दूसरी बार जब वह बलरामजी पर दुलत्ती चलाना ही चाहता था कि बलरामजी ने उसके पैरों को पकड़कर हवा में धुमाया और ताल के वृक्ष पर पटक दिया । उससे धेनुकासुर तो मर ही गया अनेक ताल के वृक्ष भी टूट कर गिर पड़े । इसके बाद उस राक्षस के सभी संबन्धी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी पर आकर प्रहार करना चाहे और सबों को श्रीभगवान् ने खेल-खेल में मार डाला । उस दिन से सभी लोग उस वन में जाने लगे और गाएँ भी घास चरने जाने लगीं। शाम को भगवान् श्रीकृष्ण सभी गोप बालों के साथ व्रज में आये। दिन भर वन में विचरने के पश्चात् व्रज में आये श्रीभगवान् को गोपियों ने प्रेमपूर्वक देखा । श्रीशुकदेवजी कहते हैं–

पीत्वामुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैस्तापं जहुर्विरहजं व्रज योषितोऽह्नि ।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ।।
(भा० १०/१५/४३)

गोपियों ने अपने नेत्र रूपी भ्रमरों से श्रीभगवान् के मुखारविन्द के मकरद रस का पान करके दिनभर के वियोग की व्यथा शान्त किया तथा श्रीभगवान् ने भी उनकी लाज भरी हँसी तथा विनय परिपूर्ण प्रेम भरी तिरछी चितवन का सत्कार स्वीकार करके व्रज में प्रवेश किया । माता यशोदा तथा रोहिणी माता ने राम और श्याम का वात्सल्य पूर्ण पालन किया । भगवान् को स्नान कराया । चन्दन लगाकर पुष्पमाला पहनाया । इसके पश्चात् भोजन करके दोनों भाई सो गये ।

एक दिन भगवान् गोप बालकों के साथ बलरामजी को लिए बिना ही गाय चराने यमुना तट पर गये । आषाढ का महीना था प्यास से व्याकुल गायों तथा गोपों ने कालिय नाग के विष से दूषित यमुना का जल पी लिया और सबके सब बेहोश होकर यमुना के तट पर गिर पड़े । किन्तु भगवान् ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से देखकर उन सबों को पुनः जीवित कर दिया । सबों ने जान लिया कि भगवान् श्रीकृष्ण ने हम सबों को पुनः जीवित कर दिया है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

सोलहवाँ अध्याय

कालिय नाग पर भगवान् की कृपा

श्रीशुकदेवजी ने कहा– कि भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि कालिय नाग ने यमुनाजी के जल को अपने विष से दूषित कर रखा है । यमुना को शुद्ध करने के लिए श्रीभगवान् ने कालिय को यमुना से निकाल दिया । राजा परीक्षित् ने कहा भगवन् ! आप हमें कालिय की कथा सुनायें श्रीशुकदेवजी ने कहा– यमुना में कालिय नामक ह्रद था जिसका जल कालिय नाग के विष की आग से खौलता रहता था। उसके ऊपर से उड़ने वाले पशु पक्षी भी उसकी ताप से गिरकर मर जाते थे । भगवान् ने सोचा आज यमुना को शुद्ध कर देना चाहिए । उन्होंने ने कसकर अपना फेटा बाँध लिया और एक ऊँचे कदम्ब के वृक्ष पर चढ गए तथा उस विषैले जल में कूद गये । उस समय यमुना में भयंकर तरंगे उठ रही थीं । भगवान् श्रीकृष्ण के कूदने से यमुना का जल और उछलने लगा तथा वह उछलकर चार सौ हाथ तक फैल गया।

तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ।
आश्रुत्य तत् स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य, चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः।।
(भा० १०/१६/८)

भगवान् श्रीकृष्ण कालिया दह में कूदकर अत्यन्त बलवान् गजराज के समान जल उछालने लगे । इस प्रकार जल-क्रीड़ा करने पर उनकी भुजाओं की टक्कर से जल में जोर-जोर का शब्द होने लगा । चक्षुःश्रवा कालिय नाग ने जब उस आवाज को सुना तो उसने जान लिया कि कोई मेरे निवास स्थान का तिरस्कार कर रहा है । कालिय से यह बर्दास्त नहीं हुआ और वह भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष आ गया। उसने देखा अत्यन्त सुकुमार बालक श्रीकृष्ण उसके सामने निःशंक जलक्रीड़ा कर रहे हैं । उसने भगवान् के मर्मस्थल में डँस लिया और उन्हें अपने शरीर में जकड़ लिया । नागपाश में बँधे भगवान् को

देखकर सभी ग्वाल बाल तो बेहोश हो गये । गाएँ उदास हो गयीं । व्रज में अशुभ शकुन होने लगे । यह देखकर नन्द बाबा भयभीत हो गये । ब्रज के सभी लोग घबरा गये और श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए व्याकुल हो गए । सबलोग भगवान् श्रीकृष्ण को खोजने के लिए व्रज से निकल पड़े । वे लोग श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानते थे । बलरामजी तो भगवान् के प्रभाव को जानते थे । व्रजवासियों की कातरता पर उन्हें हँसी आती थी फिर भी वे चुप रहे । सभी व्रज वासी यमुना के तट पर आये । लोगों ने दूर से ही देखा कि श्रीकृष्ण कालिय नाग के पाश में बँधे हुए निश्चेष्ट पड़े हुए हैं । गौएँ अनाथ की तरह डकार रही हैं । ग्वाल-बाल बेहोश पड़े है । यह देखकर सब लोग बेहोश हो गये । गोपियाँ बेहोश हो गयीं । माता यशोदा तो कालिय दह में कूदने ही जा रही थीं कि कुछ गोपियों ने उन्हें पकड़ा । बलरामजी ने नन्द बाबा को रोका । इधर भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि लोग मेरी इस दशा को देखकर व्यथित हैं तो उन्होंने अपना शरीर मोटा करना प्रारम्भ किया । उससे नाग का शरीर टूटने लगा । वह अपना पाश तोड़कर अलग खड़ा हो गया । उस समय वह भगवान् पर अत्यन्त क्रुद्ध था और उन पर चोट करने का दाव खोजने लगा । भगवान् भी सावधान खड़े थे और पैंतरा बदलने लगे। पैंतरा बदलते बदलते सर्प का बल टूट गया इतने में भगवान् कूदकर सर्प के सिर पर चढ़ गये और नृत्य करने लगे–

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदातदीय गन्धर्व-सिद्धसुरचारणदेवबध्वः ।
प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ।।
(भा० १०/१६/२७)

श्रीभगवान् के भक्त गन्धर्व, सिद्ध देवता चारण तथा देवाङ्गनाओं ने जब देखा कि श्रीभगवान् नृत्य करना चाहते हैं तो वे सब प्रेम से मृदङ्ग, ढोल, नगारे आदि वाद्य बजाते हुए, मनोहर गीत गाते हुए पुष्पों की वर्षा करते हुए आत्मनिछावर करने लगे । वे उपहार लेकर भगवान् के पास आ गए । श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि कालिय नाग के १०१ (एक सौ एक) सिर थे । वह जिस सिर को नहीं झुकाता था उसी को भगवान् कुचल डालते थे । नाग की शक्ति क्षीण हो गयी । वह अपनी नाकों और मुख से खून उगलने लगा । वह बेहेश हो गया । किन्तु जब वह होश में आता तो फिर विष उगलता । किन्तु भगवान्

नृत्य करते-करते उसके सभी सिरों को कुचल डाले । उसके अंग-अंग छिन्न-भिन्न हो गए । वह अन्त में भगवान् नारायण को याद करते हुए स्तुति करने लगा । उसी समय नाग पत्नियाँ अपने बच्चों को आगे करके आयीं और भगवान् के समक्ष लेट गयीं । नाग पत्नियों ने कहा–

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्वषेऽस्मिन् तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोःसुतानामपि तुल्यदृष्टेः धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ।।
(भा० १०/१६/३३)

प्रभो ! आपका यह अवतार दुष्टों को दण्ड देने के लिए ही हुआ है । अतएव इस अपराधी को दण्ड देना उचित ही है । आपकी दृष्टि में शत्रु एवं पुत्र का कोई भी भेदभाव नहीं है । आप यदि किसी को दण्ड देते हैं तो वह उसके पापों का प्रायश्चित कराने और उसका कल्याण करने के लिए ही होता है । भगवन् इस नाग का बहुत बड़ा सौभाग्य था कि इसने इसके सिर पर आपके चरणों की धूलि पड़ गयी।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं, न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं बा, वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ।।
(भा०१०/१६/३७)

प्रभो ! आपकी चरण धूलि के शरणगत भक्तजन न तो स्वर्ग का राज्य चाहते हैं और न पृथिवी का अधिपत्य, वे न तो रसातल का राज्य चाहते है और न तो ब्रह्मा का ही पद, वे न तो योगों की सिद्धियों को चाहते हैं और न तो मोक्ष ही । नाग-पत्नियों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने नाग को कुचलना बन्द कर दिया । जब वह नाग होश में आया तो भगवान् ने कहा कि तुम अपने पूरे परिवार के साथ रमणक द्वीप में चले जाओ और सुख पूर्वक निवास करो । जिस गरुड़ के भय से तुम यहाँ आये थे वह गरुड़ भी तुम्हारे सिर पर मेरे पैरों का चिह्न देखकर तुम से बैर नहीं करेगा ।

जो व्यक्ति इस आख्यान का स्मरण करेगा वह सर्प के भय से मुक्त हो जायेगा । इसके पश्चात् वह कालिय अपने पूरे परिवार के साथ रमणक द्वीप चला गया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

सत्रहवाँ अध्याय

कालिय के कलियहृद में आने की कथा

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कालिया ने गरुड़ का कौन सा अपराध किया था जिसके कारण उसे रमणकद्वीप को छोड़कर कालियदह आना पड़ा ? शुकदेवजी ने बतलाया के पुराने समय में सर्पों ने यह निश्चित किया कि प्रत्येक मास की अमावस्या के दिन निश्चित पेड़ के नीचे एक सर्प गरुड़ को दिया जाय । उसी के अनुसार प्रत्येक अमावस्या को उस वृक्ष के नीचे एक सर्प गरुड़ के भक्ष्य के रूप में उनके पास आ जाता था । कालिय को अपने बल एवं विष का बड़ा ही अभिमान था । उसके एक सौ एक मुख थे । वह गरुड़ से द्वेष रखता था । वह स्वयं तो कभी गरुड़ के पास आया ही नहीं अपितु जो सर्प गरुड़ के पास जाता था उसे भी वह खा लेता था । इस बात को जब गरुड़ जी ने सुना तो उन्होंने कालिय पर आक्रमण कर दिया। कालिय ने भी जब देखा कि गरुड़ हम पर आक्रमण कर रहे हैं तो उसने भी अपना मुख फैलाकर गरुड़जी के पैरों मे डँस लिया । महा पराक्रमी गरुड़जी ने अपने बायें पंख का कालिय पर प्रहार करके उसे घायल कर दिया । वह भागकर यमुनाजी के कलिय दह में आकर सपरिवार निवास करने लगा । कालिय जानता था कि गरुड़जी कलिय दह में नहीं आ सकते हैं । इसका कारण यह है कि यहाँ पर सौभरि ऋषि जल के भीतर तपस्या कर रहे थे । उनके मना करने पर भी गरुड़ अपने भक्ष्य एक मत्स्य को पकड़ कर खा लिया। उसके कारण उस मत्स्य परिवार के जीव दुखी हो गये । यह देखकर सौभरि ऋषि ने शाप दे दिया कि अब यहाँ गरुड़ नहीं आ सकता है । वह यदि यहाँ आयेगा तो वह मर जायेगा । यह मेरी सत्य वाणी है ।

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति ।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ।।

(भा० १०/१७/११)

सौभरि महर्षि के इस शाप की बात कालिय नाग को छोड़कर कोई साँप नहीं जानता था । इसलिए वह गरुड के भय से यहाँ पर निवास करता था । अब भगवान् उसे निभर्य बना दिए थे और उसको पुनः रमणक द्वीप भेज दिये ।

इसके पश्चात् भगवान् कालिय दह से निकले । वे वस्त्र, आभूषण तथा अलंकारों से अलंकृत थे । श्रीभगवान् को स्वस्थ देखकर समस्त गोप प्रसन्न हो गये । बलरामजी श्रीभगवान् को गले लगाकर हँसने लगे । नन्दबाबा ने अपने कुलगुरु ब्राह्मणों को दान दिया ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि समस्त व्रजवासी उस दिन बहुत थक गये थे और भूखे थे; इसलिए उस दिन सबके सब यमुनाजी के तट पर ही सो गए । आधी रात के समय जब सब लोग सोए थे वन में आग लग गयी । सब व्रजवासी आग से घिर गये और आग की आँच से सन्तप्त होने लगे । उस समय सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण के शरणागत हो गए और कहने लगे–

कृष्ण ! कृष्ण !! महाभाग हेरामामितविक्रम ।
एष घोरतमो बह्निः तावकान् ग्रसते हि नः ।।

(भा० १०/१७/२३)

हे श्रीकृष्ण ! हे महाभाग्यवान् बलरामजी ! तुम दोनों का बल एवं पराक्रम अनन्त है । यह भयंकर अग्नि आपके शरणागत हम सबों को जला देना चाहती है । आप हमारी रक्षा कीजिए । उन सबों की बातों को सुनकर भगवान् ने उस आग को पी लिया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

अठारहवाँ अध्याय

प्रलम्बासुर का उद्धार

भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी समस्त गोपों एवं ग्वालों के साथ व्रज में प्रवेश किए । उस समय ग्रीष्म ऋतु थी किन्तु वृन्दावन के स्वाभाविक सौन्दर्य के कारण वसन्त जैसी ही शोभा बनी हुई थी । यमुना के जल तरंगों से शीतल हवा के कारण चारो ओर हरियाली छायी रहती थी । वन पुष्पों से परिपूर्ण था । पक्षी कलरव कर रहे थे एवं मृग विहार कर रहे थे । मयूर नाचते थे तथा कोलय कूक रही थी। ऐसा सुन्दर वातावरण देखकर भगवान्– श्रीकृष्ण ने वन में विहार करने का विचार किया । वे गोपों के साथ वन में गायों को चराने चल पड़े। कोई गोप नृत्य करता था तो कोई आपस में कुश्ती लड़ता था तो कोई गीत गाने लगा । भगवान् श्रीकृष्ण अपनी बाँसुरी बजाने लगते थे । उनके सभी साथी उनका गाकर और ताली बजाकर साथ देने लगते थे। इस अवसर पर देवता भी गोपों का रूप बनाकर उस मण्डली में सम्मिलित हो गए । इस तरह से समस्त गोप बालक भगवान् श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा करते थे ।

एक दिन बलराम एवं श्रीकृष्ण जब ग्वालों के साथ वन में गाएँ चरा रहे थे । उस समय बलराम एवं श्रीकृष्ण का हरण कर लेने की इच्छा से गोपों के वेष में प्रलम्ब नाम का एक असुर आया । सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण ने तो उसे देखते ही पहचान लिया । उस राक्षस के मित्रता के प्रस्ताव को भगवान् ने स्वीकार कर लिया । उस दिन भगवान् ने कहा हम दो दलों में विभक्त हो जायें और क्रीड़ा करें । जो हार जायेगा वह ढोने का काम करेगा और जीतने वाला हारने वाले दल को ढोएगा । तथा उसको एक निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचायेगा । इस तरह खेलते हुए दोनों दल भण्डीर वट के सन्निकट पहुँच गया ।

प्रलम्बासुर जानता था कि मैं भगवान् से नहीं जीत सकता

अतएव वह भगवान् श्रीकृष्ण के ही पक्ष में हो गया । संयोग वश बलरामजी का पक्ष जीत गया और भगवान् श्रीकृष्ण का दल ढोने का काम करने लग गया । श्रीकृष्ण श्रीदामा को अपने कंधे पर चढ़ाकर ढोने का काम किए । प्रलम्ब बलरामजी को ढोकर निर्दिष्ट वृक्ष की ओर चला । जब बलरामजी ने देखा कि वह उनको निर्दिष्ट वृक्ष से आगे लेकर भाग रहा है तो बलरामजी पहले कुछ घबराए । बलराम के भार से घबराकर प्रलम्ब अपने को छिपा नहीं सका उसका राक्षस वेष प्रकट हो गया । उसके काले-काले शरीर पर सुवर्ण का मुकुट चमक रहा था। बलरामजी ने देखा कि यह राक्षस उन्हें लेकर आकाश मार्ग से भाग रहा है । उन्होंने अपने स्वरूप का स्मरण किया और जोर से प्रलम्बासुर के सिर पर मुक्का मारा । उससे प्रलम्ब का सिर चूर-चूर हो गया उसके प्राण निकल गये। पापस्वरूप प्रलम्ब को मरे देखकर देवताओं ने बलरामजी के ऊपर पुष्प की वर्षा की और गोप बालकों ने उनकी प्रशंसा की ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

उन्नीसवाँ अध्याय

दावानल से गोपों एवं गौओं की रक्षा

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित को बतलाया कि सभी ग्वाल-बाल निश्चिन्त होकर वन में क्रीडा करने लगे और उनकी ग़ाएँ चरती हुई एक वन से दूसरे वन में प्रवेश कर गयी । वे गर्मी से व्याकुल होकर मुञ्जाटवी में प्रवेश कर गयीं । जब सबों का ध्यान अपने पशुओं की ओर गया तो उन्हें अपनी क्रीड़ा पर पछतावा होने लगा । अब उनके पशु दूर चले गये थे कहीं पता नहीं था । अपनी गायों को न पाकर वे घबरा रहे थे । सभी ग्वाल-बाल गायों को खोजते-खोजते देखे की उनकी गायें मुञ्जाटवी में चली गयी है और डकार रहीं हैं । सबों ने

अपनी गायों को प्राप्त कर प्रसन्नता का अनुभव किया । लौटते समय वे बिल्कुल थक गये थे । उन्हें प्यास भी सता रही थी । भगवान् अपनी गायों का नाम ले-लेकर पुकारने लगे । अपने नामों को सुनकर गाएँ हुँकारने लगीं । उसी समय उस वन में अचानक दावाग्नि लग गयी । तथा बड़े जोर की आँधी चलने लगी । ग्वालों एवं गौओं ने देखा कि अब वे भयंकर दावाग्नि में घिर गये हैं । उनके प्राण संकट में हैं तब वे भगवान् श्रीकृष्ण को पुकारने लगे ।

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामितविक्रम ।
दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातु मर्हथः ।।

(भा० १०/१९/९)

हे महावीर श्रीकृष्ण ! महाबलशाली बलरामजी, हम लोग आपके शरणागत हैं । इस समय हम दावाग्नि से जले जा रहे हैं, अतएव आप दोनों हमारी रक्षा करें । आप ही हमारे सब कुछ, भाई बन्धु हैं अतएव आप हमें कष्ट से बचाएँ । अपने सखाओं की इस दीनतापूर्ण वाणी को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–

निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ।
तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्वणम् ।
पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्रात् योगाधीशो व्यमोचयत् ।।

(भा० १०/१९/११-१२)

आप लोग डरो मत । अपनी आँखे बन्द कर लो । यह सुनकर ग्वालों ने कहा बहुत अच्छा और उन सबों ने अपनी आँखे बन्द कर ली । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुख से उस भयंकर अग्नि को पी लिया तथा ग्वाल-बाल को भयंकर अग्नि से मुक्ति दिलाया । ग्वालों ने आँख खोला तो देखा कि वे भण्डीर वट के सन्निकट हैं । सायंकाल भगवान् अपनी गायों तथा ग्वालों के साथ वंशी बजाते हुए व्रज में प्रवेश किये । उन्हें देखकर सभी व्रजवासी सुख एवं शान्ति का अनुभव किए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

बीसवाँ अध्याय

वर्षा तथा शरद् ऋतु का वर्णन

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि व्रज में आकर गोप बालकों ने प्रलम्बासुर के वध की कथा तथा श्रीकृष्ण के द्वारा दावाग्नि पान की कथा को वहाँ के लोगों को सुनाया तो लोगों के मन में यह निश्चय हो गया कि ये दोनों कोई देवता हैं जो व्रजवासियों के कल्याण के लिए यहाँ निवास करते हैं । इसके पश्चात् वर्षा ऋतु आ गयी इस ऋतु में अनेक प्रकार के जीव बढ़ जाते हैं । आकाश में बादल भर गये, बिजली चमकने लगी, कभी-कभी मेघ सूर्य, चन्द्रमा तथा तारों को ढँक लेते थे। लगता था–

अष्टौ मासान् निपीतं यद् भूम्याश्चोदमयं वसु ।
स्वगोभिर्भोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ।।
(भा० १०/२०/५)

सूर्य राजा के समान पृथिवी रूपी प्रजा के समान जो जल रूपी कर का ग्रहण किया था अब समय आने पर पुनः अपनी किरणों से उसे बाँटने लगे । कभी जोर-जोर से वर्षा होती थी ताकि प्रजाओं का कल्याण हो । रात्रि के अन्धेरे में नक्षत्रों के कभी चमकने पर जुगुनू अवश्य चमकते थे । मेघ ध्वनि सुनकर मेढ़क भी आवाज करने लगे थे । छोटी नदियाँ जो ज्येष्ठ के महीनों में सूख गयी थीं अब वर्षा का जल पाकर जोर-शोर से बहने लगी थी । सब ओर हरी-हरी घास उग आयी थी । खेतों में अनाज लहराने लगे और लोग उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते थे । नई वर्षा के जल के सेवन से समस्त नभचरों तथा थलचरों की शोभा बढ़ गयी थी । वर्षा ऋतु में वायु के झोकों से समद्र और उत्ताल ताल तरंगें लहराने लगी थीं । इस ऋतु में मयूर अपने नृत्य तथा कुहक से लोगों के मन को अत्यधिक आकृष्ट करने लगे थे। गर्मी के दिनों में जो वृक्ष सूख गये थे उनमें नये पत्ते निकल गये थे। सर्वत्र अत्यधिक आनन्द की वृद्धि हो रही थी ।

वर्षा ऋतु के बीतने पर शरद् ऋतु आ गयी । अब आकाश के बादल साफ हो गये थे । वायु धीरे-धीरे चलने लगी थी । सरोवरों में विकसित कमल सुशोभित होने लगे थे । आकाश में विचरने वाले मेघों की श्यामता समाप्त हो गयी थी । वे अपना सम्पूर्ण जल दान करके श्वेत हो गये थे । पृथिवी के कीचड़ समाप्त होने लगे और जो रास्ते वर्षा के दिन में नहीं चलते थे वे भी चलने लगे । आकाश में रात्रि में चन्द्रमा और तारे चमकने लगे । गावों में नवान्न प्राशन होने लगा ।

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे ।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ।।
(भा० १०/१०/४९)

साधना करके सिद्ध पुरुष जिस तरह समय आने पर अपने देव आदि शरीरों को प्राप्त करते हैं उसी तरह वैश्य, स्नातक, संन्यासी और राजा जो वर्षा के कारण एक स्थान पर रुके पड़े थे, चलकर अपने-अपने अभीष्ट कार्यों में लग गए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इक्कीसवाँ अध्याय

वेणुगीत

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि शरद् ऋतु में नदियों का जल स्वच्छ हो गया था । कमल की सुगन्धि लिए हवा चल रही थी । वन पुष्पों से भर गये थे । उस समय श्रीभगवान् ने गोपों तथा गायों के साथ वन में प्रवेश किया तथा गायों को चराते हुए वंशी बजाना प्रारम्भ किया। उस वंशी की ध्वनि को सुनकर गोपियों के मन में श्रीभगवान् के प्रति प्रेम उदित हो गया और उन सबों ने भगवान् के गुणों का वर्णन करते हुए कहा । उन सबों ने देखा—

वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारम्,
विभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः,
वृन्दारण्यं स्वजनरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ।।
(भा० १०/२१/५)

श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं । उनके सिर पर मयूर पिच्छ है और कानों पर कनेर के पीले-पीले पुष्प, शरीर पर सुनहरा पीताम्बर और गले में पाँच प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की बनी वैजयन्ती माला है । उनका वेष श्रेष्ठ नट के समान है । बाँसुरी के छिद्रों को वे अपने अधरामृत से भर रहे हैं । उनके पीछे ग्वाल-बाल उनकी लोक पावन कीर्ति का गान कर रहे हैं । इस तरह वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर यह वृन्दावन धाम उनके चरण चिह्नों से और रमणीय हो रहा है । इस तरह से भगवान् का वर्णन करती हुई गोपियाँ तन्मय हो गयीं और ध्यान में श्रीकृष्ण को प्राप्त कर उनका आलिङ्गन करने लगीं । गोपियों ने कहा–

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः,
सख्यः पशूननुविवेशयतो वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेश सुतयोरनुवेणुजुष्टं ।
यैर्वानिपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ।।
(भा० १०/२१/७)

सखियों ! नेत्र वालों के नेत्र का सबसे बड़ा फल हम यही मानते हैं कि श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण तथा गौर सुन्दर बलरामजी ग्वाल बालों के साथ गयों को वन में ले जा रहे हैं, अथवा वन से लौट रहे हैं । उनके ओठों पर मुरली रखी हो और प्रेम पूर्ण तिरछे चितवनों से वे हमारी ओर देख रहे हों और उसी समय उनके मुख माधुर्य को अपने नेत्रों से प्रेम पूर्वक देख लिया जाय । जब गोप मण्डल के बीच नीलाम्बरधारी बलरामजी तथा पीताम्बर धारी भगवान् श्रीकृष्ण बैठकर वंशी बजाते हैं उस समय उनकी बड़ी ही अद्भुत शोभा होती है। यह वंशी न जाने कौन सा तप किया है कि वह सदा श्रीभगवान् के ओष्ठों पर शयन करती हुई अधर रस का पान करती है । जिस समय श्रीभगवान् वंशी बजाते हैं उस समय मयूर नृत्य करने लगते हैं । हरिणियाँ नन्दनंदन के

पास पहुँच जाती हैं, देवाङ्गनाएँ श्रीभगवान् की वंशी की ध्वनि को प्रेम पूर्वक सुनती हैं और अपना धौर्य खो देती हैं। सम्पूर्ण जड़-चेतन स्तब्ध हो जाता है। नदियों की धारा मानो रुकने लगती है; जब भगवान् अपनी वाँसुरी बजाने लगते हैं, उनकी वंशी की ध्वनि को सुनकर वन की भील एवं भीलिनियाँ भी श्रीवृन्दावन धाम को धन्य मानने लगती हैं । इस तरह से श्रीभगवान् की लीलाओं का वर्णन करती हुई गोपियाँ प्रतिदिन तन्मय हो जाती थीं और वे भगवान् के ध्यान में तन्मय हो जाती थीं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

बाइसवाँ अध्याय

चीरहरण लीला

श्रीशुकदेवजी ने कहा– हेमन्त ऋतु के प्रथम मास मार्गशीर्ष मास में नन्द व्रज की कुमारियाँ हविष्य का भोजन करके कात्यायनी देवी के पूजन का व्रत करने लगीं । सूर्योदय से पूर्व यमुना में स्नान करके बालू की कात्यायनी देवी की मूर्ति बनाकर उसका पूजन करती थीं। देवी की विविध उपचारों से पूजा करके वे प्रार्थना करती थीं–

कात्यायनि महामये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।।
(भा० १०/२२/४)

हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि ! हे सबों की स्वामिनि ! हे देवि ! आप नन्दजी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण को मेरा पति बना दीजिए, आपको नमस्कार है । इस मन्त्र का जप करती हुई वे कात्यायनी देवी की पूजा करती थीं । इस प्रकार से उन सबों ने भद्रकाली की एक महींने तक पूजा इस भावना से किया कि श्रीकृष्ण हमें पति के रूप में प्राप्त हों । सब कुमारिकाएँ प्रातःकाल उठकर एक साथ भगवान् की लीलाओं का स्मरण करते हुए यमुना में स्नान करती थीं।

प्रतिदिन की भाँति एक दिन सभी गोपियाँ यमुना तट पर अपना वस्त्र उतारकर नंगी ही यमुना जल में स्नान कर रही थीं, उसी समय उन सबों के अभिप्राय को जानने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ वहाँ जाकर अकेले ही गोपियों के सारे वस्त्र उठाकर कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये । यह देखकर गोप बालक जोर-जोर से हँसने लगे। भगवान् ने गोपियों से कहा– तुम लोग व्रत करके कृश हो गयी हो । सब लोग एक-एक करके अथवा सभी एक साथ जल से बाहर आओ और अपना वस्त्र ले जाओ । श्रीकृष्ण की बातें सुनकर आश्चर्यचकित तथा आनन्दमग्न गोपियाँ एक दूसरे के मुँह को देखकर मुस्कुराने लगीं और कहा– कृष्ण ! तुम तो हमारे प्रिय हो, अनीति मत करो हमें ठंढी लग रही है । हमें वस्त्र दे दो ।

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ।।
(भा० १०/२२/१५)

श्याम सुन्दर हम तो तुम्हारी दासियाँ हैं । जो कहों वही करेंगी। तुम धर्म के जानकार हो, अतएव हमें वस्त्र दे दो नहीं तो हम जाकर राजा कंस से शिकायत करेंगी । भगवान् ने कहा– गोपियों ! यदि आप हमारी दासी हो, हमारा कहना मानती हो तो आकर अपना वस्त्र ले जाओ । इसके पश्चात् गोपियाँ अपने हाथों से गुप्ताङ्ग को ढंक कर बाहर आयीं और श्रीभगवान् ने उनके कन्धों पर उनका वस्त्र रख दिया। भगवान् ने कहा– गोपियों ! तुम लोगों ने अच्छी तरह व्रत निर्वाह किया है किन्तु ऐसी अवस्था में नंगे स्नान नहीं करना चाहिए । इससे तो वरुण देव तथा यमुनाजी का अपचार हुआ है अतएव तुम लोग हाथ जोड़कर सिर से लगाओ और उन्हें झुककर प्रणाम करो फिर अपने-अपने वस्त्र ले लो । श्रीभगवान् की बात सुनकर गोपियों ने अपना अपराध जान लिया और हाथ जोड़कर देवाधिदेव श्रीकृष्ण को प्रणाम किया तथा अपना वस्त्र लेकर पहन लिया । श्रीभगवान् के इस कार्य से गोपियों के मन में क्षोभ नहीं था, वे मन ही मन प्रसन्न होकर वस्त्र धारण करके अपनी लाजभरी आँखों से उन्हें ही देखती रहीं । भगवान् ने गोपियो से कहा–

संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ।
मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ।।
न मय्यावेशितधियां कामः कामाय जायते ।
भर्जिता क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते ।।
(भा० १०/२२/२५-२६)

परम प्रेयसी कुमारियों ! मैं आप लोगों का संकल्प जानता हूँ । आप लोग मेरी पूजा करना चाहती हो । मैं आप लोगों की इस अभिलाषा का अनुमोदन करता हूँ । तुम लोगों का संकल्प सत्य होगा। जिसने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित किया है उनकी कामनाएँ उन्हें सांसारिक भोग की ओर नहीं प्रवृत्त करती हैं ठीक उसी तरह जैसे भुने अथवा उबाले हुए धान पुनः अंकुर के रूप में उगने के योग्य नहीं रह जाते हैं । अब आपलोग अपने घर चले जाओ । शरद् ऋतु की रात्रि में तुम लोग मेरे साथ बिहार कर सकोगी । श्रीशुकदेवजी ने कहा कि इच्छा न होने पर भी गोपियाँ भगवान् की आज्ञा सुनकर उनका ध्यान करती हुई घर लौट गयीं । उनकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो गयी थीं ।

एक दिन भगवान् ग्रीष्म ऋतु में गाएँ चरते हुए बहुत दूर निकल गये । धूप होने पर भी उन्हें वृक्षों की छाया प्राप्त हो रही थी । भगवान् श्रीकृष्ण वृक्षों के औदार्य का वर्णन गोप बालकों के समक्ष कर रहे थे। उसी समय कुछ भूखे गोप बालकों ने भगवान् से कहा ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
बाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

तेइसवाँ अध्याय

यज्ञपत्नियों पर कृपा

ग्वालों ने श्रीभगवान् से कहा भगवान् हमें इस समय भूख सता रही है अतएव आप कोई उपाय करें कि हमारी भूख मिट सके । श्रीभगवान् ने गोपों से कहा कि यहाँ से थोड़ी दूर पर ब्रह्मवादी ब्राह्मण स्वर्ग प्राप्ति के लिए आंगिरस याग कर रहे हैं, उनसे जाकर कहना कि

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी थोड़ी दूर पर गो चारण कर रहे हैं; उन्हें भूख लगी है, अतएव आप यदि चाहें तो उनके लिए थोड़ा भात खाने के लिए दे दें । इसके बाद गोप उस यज्ञ में जाकर ब्राह्मणों को साष्टाङ्ग प्रणाम किए और भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश उन्हें सुनाए । किन्तु इस प्रकार की बात सुनकर वे सभी ब्राह्मण उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिए । वे अपने को ब्रह्मवादी मानने वाले भी ब्राह्मण वस्तुतः अज्ञानी ही थे ।

देशः कालः पृथग् द्रव्यं मन्त्रतन्त्र र्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुधर्मश्च यन्मयः ।।
तं ब्रह्मपरमं साक्षाद् भगवन्तमधोक्षजम् ।
मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ।।
(भा० १०/२३/१०-११)

देश, काल, अनेक प्रकार की सामग्रियाँ, भिन्न-भिन्न कर्मों में विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठान की पद्धति, ऋत्विक्, अग्नियाँ, देवता, यजमान, यज्ञ एवं धर्म ये सबके सब जिनके शरीर हैं, उन्हीं, साक्षात् परंब्रह्म अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्ण की भात की याचना को उन ब्राह्मणों ने उन्हें सामान्य मनुष्य मानकर स्वीकार नहीं किया । वहाँ से ग्वाल-बाल निराश होकर लौट आये तो भगवान् ने कहा कि इस बार तुम उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाओ और उन्हें बतलाओ कि बलराम और श्रीकृष्ण भूखे हैं उनके लिए भात दे दो । वे तुम्हें पर्याप्त मात्रा में भोजन देंगी ।

इस बार ग्वालों ने जाकर ब्राह्मणियों से कहा– पत्नियों ने जब यह सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण सन्निकट में आए हैं, वे उनका दर्शन करने के लिए उतावली हो गयीं । पात्रों में स्वादिष्ट भोजन लेकर पतियों के रोकने पर भी भगवान् का दर्शन करने के लिए चल पड़ीं। उन सबों ने यमुना तट पर आकर श्रीभगवान् का दर्शन किया । भगवान् ने आई हुई अपनी भक्ता ब्राह्मण पत्नियों से कहा–

स्वागतं वो महाभाग अस्यातां करवाम किम् ।
यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ।।
(भा० १०/२३/२५)

महाभाग्यवती देवियों ! आप सबों का स्वागत है । आइये, बैठिए आप सबों का मैं कौन सा स्वागत करूँ ? आप लोग हमारे दर्शन की इच्छा से यहाँ आयी हैं यह आपलोगों के लिए उचित ही है। आप लोगों की हमारे प्रति निष्काम एवं निष्कपट भक्ति है । मैं सम्पूर्ण जगत् की आत्मा-परमात्मा हूँ । मैं आप लोगों के प्रेम का अभिनंदन करता हूँ । अब आपलोग अपने पतियों के पास लौट जायँ । आप लोगों के बिना वे लोग यज्ञ नहीं कर सकते हैं ।

ब्रह्मण पत्नियों ने कहा– प्रभो ! हम लोग अपने पतियों की आज्ञा का उल्लंघन करके आपकी शरण में आयी हैं । अब वे लोग हम लोगों को स्वीकार नहीं करेंगे । हम आपके शरणागत हैं । आप ऐसी व्यवस्था करें कि हम लोगों को अन्य शरण में नहीं जाना पड़े । श्रीभगवान् ने कहा– देवियों ! अब आप लोगों का कोई भी तिरस्कार नहीं करेगा । सब लोग आपका सम्मान करेंगे । ये देवता भी हमारी बात का अनुमोदन कर रहे हैं । आप लोग जायँ । मुझमें ही अपना मन लगा दें । मेरी प्राप्ति शीघ्र ही हो जायेगी ।

भगवान् के कहने पर ब्राह्मण पत्नियाँ अपने पतियों के पास लौट गयीं। उनके पतियों ने अपनी पत्नियों का सम्मान किया और वे सोच रहे थे कि हमलोग भले ही वेदज्ञ ब्राह्मण हैं किन्तु हम लोगों में भगवान् के प्रति सुन्दर भावना नहीं है । हम लोगों से तो हम लोगों की पत्नियाँ ही भाग्यवान् हैं । हमारा तो श्रीभगवान् के चरणों में कोई प्रेम ही नहीं है । इस प्रकार से वे ब्राह्मण अपनी निन्दा अनेक प्रकार से कर रहे थे और मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे कि भगवान् हम लोगों के अपराध को दूर करें । अब वे भी चाहते थे कि हम भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन कर लें किन्तु राजा कंस के डर से वे भगवान् का दर्शन करने के लिए नहीं आये ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तेइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौबीसवाँ अध्याय

इन्द्र यज्ञ का निवारण

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि एक दिन श्रीभगवान् ने देखा कि वहाँ के गोप इन्द्र यज्ञ करने की तैयारी कर रहे हैं । यद्यपि वे सब कुछ जानते थे फिर भी विनयावनत होकर उन्होंने नन्द बाबा इत्यादि वृद्ध गोपों से पूछा– पिताजी आप लोग यह क़ौन सा उत्सव मनाने की तैयारी कर रहे हैं । यदि कोई परेशानी नहीं हो तो आप मुझे इस बात को अवश्य बतलाइये क्योंकि मैं आपका पुत्र हूँ और आप मेरे पिता हैं । इस संसार के कुछ लोग बिना समझे-बुझे कार्य करते हैं तथा कुछ समझ-बूझकर । समझ बूझकर काम करने वाले मनुष्य अवश्य सफल होते हैं । आप लोग जो कार्य कर रहे हैं वह लौकिक है अथवा शास्त्रीय? श्रीभगवान् की बातों को सुनकर नन्दजी ने कहा–

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ।।

(भा० १०/२४/८)

भगवान् इन्द्र वर्षा करने वाले मेघों के स्वामी हैं । मेघ उनके रूप हैं । ये समस्त प्राणियों को तृप्त करने वाले तथा जीवन दान देने वाले जल की वर्षा करते हैं । हम उन्हीं इन्द्र भगवान् की पूजा करने की तैयारी कर रहे हैं, उनका यज्ञ करने से जो अन्न बच जाता है उसी से अपने जीवन का निर्वाह करते हैं । यह हमारा परम्परा प्राप्त धर्म है । परम्परा प्राप्त धर्म को छोड़ने से अमङ्गल होता है । नन्द बाबा इत्यादि की बातों को सुनकर भगवान् ने उनसे कहा– मनुष्य तो अपने कर्मों के परतन्त्र है । उसे सुख एवं दुःख की प्राप्ति तो अपने कर्मों के ही अनुसार होती है । ईश्वर को भी यदि नियामक माना जाय तो ईश्वर भी मनुष्य को कर्मों का ही फल प्रदान करते हैं । मनुष्य को उसके कर्मों के ही अनुसार शरीर भी मिलता है । अतएव मानव जीवन में कर्म की ही प्रधानता है । अतएव मानव को चाहिए कि वह अपने वर्णाश्रम के

अनुसार कर्मों को करे । कर्मों से ही मनुष्य की जीविका सुगमता से चलती है । अतएव कर्म ही मनुष्य का इष्टदेव है । अतएव–

वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ।
वैश्यस्तु वार्तया जीवेत् शूद्रस्तु द्विजसेवया ।।
कृषी-वणिज्यगोरक्षाकुसीदं तुर्यमुच्यते ।
वर्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ।।
(भा० १०/२४/२०-२१)

ब्राह्मण को वेदों के अध्ययन-अध्यापन से, क्षत्रिय को पृथिवी के पालन से, वैश्य को वार्ता से तथा शूद्र को उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा से अपनी वृत्ति चलानी चाहिए । वैश्यों की वार्ता नामक वृत्ति चार प्रकार की बतलायी गयी है– कृषी, गोरक्षा, वाणिज्य तथा व्याज कमाना । उनमें से हम लोग सदा से गोपालन करते आये हैं । यह संसार स्त्री-पुरुष के संयोग रूपी रजोगुण से उत्पन्न है । रजोगुण से ही मेघ उत्पन्न होकर जल बरसाते हैं । उसी से अन्न होता है । इसमें इन्द्र का क्या लेना देना हैं ।

श्रीभगवान् ने नन्दबाबा से कहा– हम किसी राज्य के स्वामी भी नहीं है, हम तो वनवासी हैं, पर्वत ही हमारे घर हैं, अतएव हमें चाहिए कि हम गौ, ब्राह्मण एवं गिरिराज का ही यजन करें । इन्द्र के यज्ञ की सामग्री से हम इनकी आराधना करें । इन वस्तुओं से भोजन कराकर उन्हें सन्तुष्ट किया जाय और गिरिराज को भोग लगाया जाय। बचे हुए प्रसाद को खाकर हम लोग खूब सज-धजकर गिरिराज की परिक्रमा करें। मुझे तो यही अच्छा लगता है । आप लोगों की जैसी इच्छा ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि श्रीभवगान् इन्द्र के अभिमान को चूर करना चाहते थे । सबों ने भगवान् की बात मान ली । इन्द्र के यज्ञ की साम्रगी से ही गोवर्धन पूजा प्रारम्भ की गयी । ब्राह्मणों ने स्वस्ति वाचन किया । गोवर्धन की पूजा की गयी तथा गायों को हरी-हरी घास खिलाया गया । गोपियाँ गाड़ियों पर सवार होकर गोवर्धन की परिक्रमा करने लगीं । भगवान् दूसरे रूप में गोर्वधन के रूप में प्रकट होकर सामग्रियों का भोग लगाये । सबों ने गिरिराज को प्रणाम किया। इस प्रकार सब-के-सब गिरिराज की पूजा करके व्रजं लौट आये ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

पच्चीसवाँ अध्याय

गोवर्धनधारण लीला

श्रीशुकदेवजी ने कहा– इन्द्र ने जब देखा कि गोपों ने उनकी पूजा करना छोड़ दिया तो वे नन्द बाबा इत्यादि गोपों पर अधिक क्रोध किए । इन्द्र अपने को ही त्रिलोक का स्वामी मानते थे । क्रोध में आकर उन्होंने प्रलय करने वाले सांवर्तक नामक मेघों को आज्ञा दी और कहा– गोप कृष्ण को पाकर मदमत्त हो गये हैं; उन सबों ने मेरी पूजा छोड़ दी ।

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ।।
एषां श्रियाऽवलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ।
धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून् नयत संक्षयम् ।।

(भा० १०/२५/५-६)

कृष्ण वकवादी, नादान, अभिमानी तथा मूर्ख है फिर भी वह अपने को बहुत बड़ा ज्ञानी मानता है । वह स्वयं मृत्यु का ग्रास है । उसी का सहरा पाकर इन ग्वालों ने मेरा अपमान किया है । ये धन के नशे में चूर हैं तथा कृष्ण इन्हें बढ़ावा दे रहा है । तुम लोग जाकर इनके धन के घमंड को तथा पशुओं को विनष्ट कर दो । मैं भी ऐरावत पर सवार होकर मरुद्‌गणों के साथ नन्द व्रज को विनष्ट करने के लिए आ रहा हूँ ।

इसके बाद इन्द्र ने उन मेघों के बन्धन खोल दिये । इसके बाद तो सांवर्तक मेघ समूह नन्द व्रज में आकर मूसलाधार वर्षा करने लगे। सर्वत्र पानी भर गया । सब लोग काँपने लगे और किसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर कहने लगे कि भगवन् इस समय हम लोगों के एकमात्र रक्षक आप हैं, आप हमारी रक्षा करें । भगवान् ने जान लिया

कि अपने यज्ञ को विहत देखकर इन्द्र इस प्रकार से उत्पात मचा रहा है । उन्होंने सोचा गोपों की रक्षा करके अपनी योगमाया के बल से इन्द्र के मान का मैं मर्दन कर दूँ । इस प्रकार सोचकर भगवान् ने अपने एक ही हाथ से गोवर्धन को उखाड़ लिया और सबों ने कहा आप सब लोग इसी पर्वत की छाया में आ जाइये । पर्वत के गिरने का कोई भी भय नहीं है । आप लोगों की रक्षा ये गोवर्धन कर रहे हैं । सभी गोप अपने गोधन के साथ उस पर्वत की छाया में चले आयें और सात दिनों तक भगवान् उस पर्वत को अपने एक हाथ पर ही धारण किए रहे ।

कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निःस्तम्भो भ्रष्टसंकल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ।।
(भा० १०/२५/२४)

भगवान् श्रीकृष्ण की योगमाया के इस प्रभाव को देखकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ । वे भ्रष्ट संकल्प हो गये । इसके बाद उन्होंने मेघों को वर्षा करने से रोक दिया, भयंकर आँधी बंद हो गयी, वर्षा रुक गयी तथा सूर्य दिखायी देने लगे तो भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा अब आप लोग अपनी सम्पूर्ण सामग्री तथा गोधन को लेकर निकल जायें। अब वर्षा बन्द हो गयी है । इसके पश्चात् सभी गोप बाहर निकल आए तथा भगवान् ने भी गोवर्धन को पूर्ववत् अपने स्थान पर रख दिया ।

इसके पश्चात् सबों ने भगवान् को अपने हृदय से लगा लिया । नन्द बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया । माताओं ने उन्हें दही का तिलक लगाया । इसके पश्चात् भगवान् बलरामजी के साथ गाड़ी पर बैठकर व्रज में आए । सब लोगों ने श्रीभगवान् के गोवर्धन धारण की लीला का गान किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
पच्चीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छब्बीसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव के विषय में गोपों की बातचीत

श्रीशुकदेवजी ने कहा– श्रीभगवान् के पराक्रम को गोप पहले नहीं जानते थे । वे गोवर्धन धारण के कार्य को देखकर आपस में कहने लगे । इस बालक के अत्यन्त अद्भुत कर्म हैं ।

यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ।
कथं विभ्रद् गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ।।
तोकेन मीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ।
पीतः स्तनः सहप्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ।

जिस तरह कोई गजराज कमल को उखाड़ कर ऊपर उठा ले उसी प्रकार इस सात वर्ष के बालक ने एक ही हाथ से गिरिराज गोवर्धन को उखाड़कर खेल-खेल में सात दिनों तक धारण कैसे किए रहा ? जब यह छोटा था भयंकर राक्षसी पूतना के स्तन को अपनी आँखें बन्द किए हुए उसके प्राणों को भी उसी प्रकार से पी गया जैसे काल शरीर की आयु को पी जाता है । जब यह तीन महीने का था तो रोते-रोते इसके पैरों के उछाल से टकराकर राक्षस विनष्ट हो गया । जब यह एक वर्ष का था तो तृणावर्त नामक राक्षस का गला घोटकर उसे मार डाला। माखन चोरी करने पर यशोदाजी ने जब इसको ऊखल में बाँध दिया था तो उसने अपनी भुजाओं के बल से गगनचुम्बी अर्जुन के वृक्ष को तोड़ दिया । बछड़ों को चराते हुए इसने बकासुर की चोंच पकड़कर उसे चीर दिया । उसने बकासुर तथा धेनुकासुर को खेल-खेल में मार डाला । इसने बलरामजी द्वारा प्रलम्बासुर को मरवा डाला तथा गायों एवं गोपों की रक्षा दावानल से की । कलियानाग का मानमर्दन करके इसने यमुनाजी के विषमिश्रित जल को अमृत के तुल्य बना दिया । हम समस्त व्रजवासियों का इस पर अथाह प्रेम है और इसका भी हम सबों पर स्वाभाविक प्रेम है । कहाँ तो यह सात वर्ष का बालक और कहाँ

सात दिनों तक एक हाथ पर गिरिराज को उठाए रखना क्या कम आश्चर्य की बात है ?

गोपों की बातों को सुनकर नन्दजी ने कहा कि इस बालक के विषय में महर्षि गर्ग ने कहा था कि यह बालक प्रत्येक युग में शरीर धारण करता है । यह पहले श्वेत रक्त एवं पीत वर्ण का था इस बार यह कृष्ण वर्ण का हुआ है । यह पहले कहीं वसुदेव के घर उत्पन्न हुआ था; अतएव वासुदेव कहलाता है । तुम्हारे इस पुत्र के बहुत से नाम एवं कर्म हैं जिन्हें मैं जानता हूँ । सामान्यतः सांसारी लोग नहीं जानते । तुम्हारे इस पुत्र से प्रेम करने वाले लोग बड़े भाग्यवान हैं । यह स्वयं भगवान् नारायण के समान है । नन्दजी की बातों को सुनकर व्रज वासियों का सन्देह दूर हो गया वे भगवान् श्रीकृष्ण और नन्दजी की प्रशंसा करने लगे । उन सबों ने कहा– हमारे रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं । वे इन्द्र के दर्प को चूर-चूर कर दिये ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सत्ताइसवाँ अध्याय

इन्द्र द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति तथा श्रीभगवान् का अभिषेक

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि जब गोवर्धन पर्वत को धारण करके श्रीभगवान् ने नन्द व्रज, गोपों तथा ग्वालों को बचा लिया तो इन्द्र का गर्व चूर हो गया । उस समय भगवान् के पास गोलोक से कामधेनु आयी तथा इन्द्र स्वर्ग लोक से आये । इन्द्र श्रीभगवान् को प्रणाम करके स्तुति करने लगे । उन्होंने कहा–

विशुद्धसत्त्वं तव धामशान्तं, तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहं न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ।।
(भा० १०/२७/४)

भगवन् ! आपका रूप परम शान्त, ज्ञानमय, रजोगुण एवं तमोगुण से रहित विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय है । गुणों के प्रवाह से प्रतीत

होने वाला यह प्रपञ्च केवल मायामय है । आपका स्वरूप न जानने के कारण ही आपमें इसकी प्रतीति होती है । चूँकि आपका किसी भी दोष से संबन्ध नहीं होता है इसीलिए आप अखिलहेय प्रत्यनीक स्वरूप हैं । आप धर्म की रक्षा करने के लिए तथा दुष्टों का दमन करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं । आप ही सम्पूर्ण संसार के माता, पिता एवं आचार्य हैं । अवतीर्ण होकर आप भक्तों की अभिलाषा को पूर्ण करते हैं और हम जैसे अज्ञानियों का दमन करते हैं ।

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनः त्वां वीक्ष्य काले भयमाशु तन्मदम्।
हित्वार्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मयाः ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम्।।
(भा० १०/२७/७)

जो मुझ जैसे अज्ञानी तथा अपने को जगत् का स्वामी मानने वाले हैं, वे देखते हैं कि बड़े-बड़े भय के अवसर पर भी आप निर्भय रहते हैं, तब वे अपना घमंड त्याग देते हैं तथा संतपुरुषों के द्वारा सेवित भक्तिमार्ग का आश्रय लेकर आपका भजन करते हैं । भगवान् आपकी सारी चेष्टाएँ दुष्टों का दमन करने के लिए हुआ करती हैं । प्रभो! मैंने अज्ञान के कारण आपका अपराध किया है । आप मेरे अपराध को क्षमा कर दें, ऐसी कृपा करें कि मैं पुनः इस प्रकार का अपराध न करूँ। भगवन् मैं आपको नमस्कार करता हूँ आप सबों के अन्तर्यामी पुरुषोत्तम हैं । आप भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए अपने मनोनुकूल अवतारों को धारण करते हैं । आपने मेरे घमण्ड को नष्ट करके बहुत ही उचित कर्म किया है । आप मेरे स्वामी हैं । मैं आपका शरणागत हूँ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि जब इन्द्र इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे थे उस समय भगवान् ने कहा–

मया तेऽकारिमघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णता ।
मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्रश्रिया भृशम् ।।
ममैश्वर्यं श्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामिसम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ।।
(भा० १०/२७/१५-१६)

इन्द्र ! तुम धन सम्पत्ति के मद से मदमत्त हो गये थे । अतएव तुम पर अनुग्रह ही करके मैंने तुम्हारा यज्ञ भङ्ग किया है । वह इसलिए कि तुम मुझे सदा स्मरण रख सको । जो ऐश्वर्य एवं धन सम्पत्ति से

अन्धा हो जाता है; वह यह नही देख पाता है कि कालस्वरूप परमेश्वर उसके सिर पर दण्ड लेकर सवार हैं । मैं जिस पर अनुग्रह करना चाहता हूँ उसे भ्रष्टैश्वर्य बना देता हूँ । तुम जाओं तुम्हारा मंगल हो । अब कभी इस प्रकार का घमण्ड न करना ।

जिस समय भगवान् इन्द्र को इस प्रकार का आदेश दे रहे थे उस समय कामधेनु ने अपनी सन्तानों के साथ श्रीभगवान् की वन्दना करके कहा– आप हम सबों के रक्षक हैं, आपको रक्षक रूप में प्राप्त करके हम धन्य हो गये । हमारे तो आप ही इन्द्र हैं । उसके पश्चात् कामधेनु ने अपने दूध से तथा इन्द्र ने ऐरावत के द्वारा लाए गये आकाश गंगा के जल से श्रीभगवान् का अभिषेक किया । उस समय देवताओं ने भगवान् के यश का गान किया तथा अप्सराओं ने नृत्य किया । उस समय नदियों में अनेक प्रकार के रसों की बाढ़ आ गयी । पृथिवी में अनेक प्रकार की औषधियाँ पैदा हो गयीं । क्रूर जीव भी वैरहीन हो गए । इसके पश्चात् श्रीभगवान् की आज्ञा पाकर इन्द्र आदि अपने लोक चले गये ।

इस प्रकार साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
सताइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

अठाइसवाँ अध्याय

श्रीभगवान् द्वारा नन्दजी को वरुणलोक से छुड़ा लाना

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि एक बार नन्दजी ने एकादशी व्रत किया और ज्यों ही द्वादशी तिथि लगी रात्रि में यमुनाजी में स्नान करने चले गये । वे नहीं समझ पाये कि यह आसुरी बेला है । उसी समय वरुण का एक असुर अनुचर नन्दजी को पकड़कर वरुण लोक में ले गया । इधर नन्दजी के असुर द्वारा अपहरण की बात पूरे व्रज में फैल गयी । सब लोगों ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी से प्रार्थना की कि अब तो आप ही अपने पिताजी को ला सकते है । श्रीभगवान् तो

अन्तर्यामी हैं । वे सीधे वरुण के पास गये । उनको आए हुए देखकर वरुणदेव बहुत प्रसन्न हुए । आनन्द से उनका रोम-रोम खिल उठा । उन्होंने श्रीभगवान् की पूजा की, भगवान् की स्तुति करके वरुण देव ने कहा– भगवन् हमारा अनुचर अज्ञानी है; वह नहीं जाना इसीलए वह आपके पिता जी को लाया । आप उसके अपराध को क्षमा करें। हम पर भी आप कृपा करें । आप अपने पिताजी को ले जायँ । इसके बाद श्रीभगवान् नन्द बाबा को लेकर व्रज में आये । यह देखकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और जान गए कि वस्तुतः ये ही परब्रह्म हैं सभी गोपों के मन में यह अभिलाषा बनी हुई थी कि श्रीभगवान् अपने ब्रह्मधाम का दर्शन हम लोगों को भी करा देते । श्रीभगवान् तो अन्तर्यामी हैं; वे अपने परमप्रिय गोपों की अभिलाषा को जान गये । वे उन सबों को उस ब्रह्मस्वरूप ब्रह्महृद में ले गए । उस सबों के उसमें स्नान करने के पश्चात् उन्होंने उन सबों को अपने ब्रह्मधाम का दर्शन कराया । उस ब्रह्मधाम का दर्शन करके सभी गोप तथा नन्दबाबा इत्यादि अपने को कृतकृत्य मानने लगे । उनलोगों ने देखा कि उस ब्रह्म धाम में मूर्तिमान समस्त वेद भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहे हैं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
अठाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

उनतीसवाँ अध्याय

रास लीला का आरम्भ

श्रीशुकदेवजी ने कहा–

भगवानपि ताः रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ।।

(भा० १०/२९/१)

शरद् ऋतु की रात्रि थी । रात्रि में बेला, चमेली आदि पुष्प विकसित होकर अपनी सुगन्धि बिखेर रहे थे । चीरहरण के समय श्रीभगवान् ने जिन रात्रियों का संकेत किया था मानो वे सबके सब एक

ही रात्रि के रूप में पुञ्जीभूत हो गयी थीं । श्रीभगवान् ने उन रात्रियों को देखा और उन्हें दिव्य बना दिया तथा उन रात्रियों में गोपियों के साथ बिहार करने का मन बना लिया । उस समय उन्होंने अपने योगमाया का सहारा लिया । ज्यों ही श्रीभगवान् ने इस प्रकार का अपना मन बनाया उसी समय पूर्व की दिशा में चन्द्रोदय हो गया । श्रीभगवान् ने देखा आज तो चन्द्रदेव का मण्डल अखण्ड है । चाँदनी की कोमल किरणों को प्राप्त कर सारा वन अनुराग के रंग में रंग गया था । भगवान् श्रीकृष्ण ने देखो कि उद्दीपन के अनुकूल सारी सामग्री उपस्थित है और उन्होंने रमणियों के मन को आकृष्ट करने वाली बाँसुरी बजाया । गोपियों का मन तो पहले से ही श्रीभगवान् में लगा था । वंशी की ध्वनि सुनते ही उनकी स्थिति विचित्र हो गयी । जो गोपी जहाँ थी वहा वहाँ से ही श्रीभगवान् से मिलने के लिए चल दी ।

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ।।
(भा० १०/२९/५)

जो गोपी गाय दूह रही थी वह उत्सुकतावश गाय दूहना छोड़कर चल पड़ी, जो दूध औटा रही थी वह उफनते हुए दूध को छोड़कर तथा हलवा बनाने वाली उसे चूल्हे पर से उतारे बिना ही छोड़कर चल पड़ी । गोपियों को जाते देखकर उनके पतियों तथा भाइयों आदि ने रोका किन्तु वे किसी भी प्रकार रुक न सकीं । कुछ गोपियाँ घर के भीतर थीं वे बाहर निकलने का मार्ग नहीं प्राप्त कर सकीं तो उन सबों ने ध्यान लगा लिया । उन्हें ध्यान में ही पति रूप में श्रीकृष्ण मिल गये । उससे उनको इतना सुख मिला कि उनका सारा पुण्य समाप्त हो गया । ध्यान करने के कारण उनका सारा पाप भी विनष्ट हो गया । अतएव उन सबों ने श्रीभगवान् को मुक्त होकर पा लिया ।

राजा परीक्षित् ने पूँछा– गोपियाँ तो भगवान् को अपना पति ही मानती थी, ब्रह्म नहीं, ऐसी स्थिति में उनके प्रकृति का प्रवाह रूप संसारचक्र कैसे समाप्त हो गया ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भगवान् से चेदिराज शिशुपाल बैर भाव रखता था फिर भी वह भगवान् श्रीकृष्ण का पार्षद अप्राकृत शरीर से बन गया । गोपियाँ तो श्रीभगवान् की

अनन्य प्रेमिकाएँ हैं । वे सब उन्हें प्राप्त कर लीं इसमें कौन सा सन्देह है । भगवान् से चाहे जैसा संबन्ध हो, काम का हो, क्रोध का हो, स्नेह का हो, एकता का हो अथवा मित्रता का हो; उनसे यदि किसी व्यक्ति का संबन्ध हो गया तो वह व्यक्ति श्रीभगवान् को ही प्राप्त करता है ।

कामं क्रोधं, भयं, स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ।।
(भा० १०/२९/१५)

आयी हुई गोपियों को देखकर श्रीभगवान् ने कहा– गोपियों ! आप लोगों का स्वागत है । आपलोग को प्रसन्न करने के लिए मैं कौन सा कार्य करूँ । व्रज में सभी प्रकार की कुशलता है न ? इस समय में आपलोगों को यहाँ आने की कौन सी आवश्यकता पड़ गयी ? यह भयंकर रात्रि है । रात्रि में भयंकर जीव विचरण करते हैं । अतएव आप लोगों को यहाँ नहीं ठहरना चाहिए । आप लोग शीघ्र ही अपने घर लौट जायँ । आपलोगों ने चाँदनी से सुशोभित तथा पूर्णरूप से पुष्पों से मण्डित इस वन की शोभा को देख लिया अब आप लोग अपने घर चले जायँ । हो सकता है आप लोग मेरे प्रेम में पागल होकर यहाँ आयी हों तो कोई अनुचित नहीं हैं । मुझसे तो सब लोग प्रेम करते हैं। आप लोगों को अपने पतियों एवं बन्धवों की सेवा करनी चाहिए यही आप लोगों का परम धर्म है ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि श्रीभगवान् की इस तरह की बातों को सुनकर गोपियाँ उदास हो गयीं । वे चिन्ता के अथाह सागर में निमग्न होने लगीं । अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की निष्ठूरता भरी बात सुनकर उन गोपियों ने कहा–

नैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवाग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ।।
(भा० १०/२९/३१)

भगवन् श्रीकृष्ण आप तो सबों के अन्तःकरण में निवास करते हैं। अतएव आप हमारे हृदय की बात जानते हैं । आपको इस तरह की निष्ठुर बातें नहीं कहनी चाहिए । हम सब कुछ छोड़कर आपके चरणों से प्रेम करते हैं, आप स्वतन्त्र हैं, यह हम लोग जानती हैं । आप

पर हमारा कोई वश नहीं है । किन्तु हम लोग आपकी भक्ता हैं । जिस तरह भगवान् नारायण मुमुक्षु जीवों को अपना लेते हैं उसी तरह से आप हमलोगों को अपना बना लें । हमलोगों का त्याग न करें । भगवन् आप सर्वज्ञ हैं । पति की सेवा करना स्त्रियों का धर्म है । आप ही हमलोगों के साक्षात् पति हैं अतएव आपकी सेवा ही हमारा परमधर्म हैं इसीलिए ज्ञानी पुरुष आपसे ही प्रेम करते हैं । आज तक हम गृहकार्यों में अवश्य लगी थीं किन्तु—

यर्हयम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृतिनान्य समक्षमङ्ग
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयाम ।।
(भा० १०/२९/३६)

प्रभो ! आप तो हम वनवासियों के प्रिय हो ! आपके चरण कमलों की सेवा करने का अवसर लक्ष्मी जी को कभी-कभी ही मिल पाता है । जिस दिन से आपके उन चरण कमलों को स्पर्श करने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ उसी दिन से हम किसी के भी सामने नहीं ठहर पाती हैं । आपके वक्षःस्थल में तो श्रीलक्ष्मी का नित्य निवास है; किन्तु वे भी चाहती हैं कि तुलसी के ही समान उन्हें भी आपके चरणों की सेवा करने का नित्य अवसर प्राप्त हो ।

व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो,
देवो यथादिपुरुषः सुरलोक गोप्ता ।
तन्नो निधेहि करपंकजमार्तबन्धो,
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ।।
(भा० १०/२९/४१)

प्रभो ! जिस तरह भगवान् नारायण देवलोक के रक्षक हैं, उसी तरह से आप भी व्रजवासियों के कष्ट को दूर करने के लिए पृथिवी पर अवतार ग्रहण किए हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है । हमलोग तो आपकी किंकरी हैं । हमलोग आप से मिलने के लिए तड़प रहीं हैं । हे आर्तबन्धो ! आप हमारे सिर पर तथा स्तनों पर अपना कर कमल रख दें ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने जब गोपियों की पीर भरी वाणी सुनी तो उन्होंने गोपियों के मनोनुकूल चेष्टा करना प्रारम्भ

कर दिया। वे उनके साथ क्रीड़ा करने लगे । वे हँसने और मुस्कुराने लगे । गोपियाँ उन्हें चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गयीं । वैजयन्ती की माला धारण किए हुए श्रीभगवान् गोपियों के साथ वन में विचरण करने लगे । वे आनन्दपूर्वक यमुनाजी के तट पर गोपियों के साथ क्रीड़ा करने में मग्न हो गए ।

बाहुप्रसार परिरम्भकरांलकोरु
नीवीस्तनालभन नर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितै र्व्रजसुन्दरीणा
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ।।

(भा० १०/२९/४६)

हाथ फैलाना, आलिङ्गन करना, गोपियों का हाथ दबाना, उनकी चोटी, जंघा, नीवी, तथा स्तन आदि का स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करता तिरछी चितवन से देखना तथा मुस्कुराना इत्यादि क्रियाओं के द्वारा गोपियों के काम को उद्दीप्त करके श्रीभगवान् ने उन सबों को आनन्दित किया । जब गोपियों का श्रीभगवान् ने इस प्रकार से सम्मान किया तो गोपियों के मन में काम की भावना आ गयी । उन सबों की इस भावना को पहचानकर श्रीभवान् उन सबों के सामने से ही अन्तर्धान हो गए ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का उनतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दशा

श्रीशुकदेवजी ने कहा– जब श्रीभगवान् गोपियों के सामने से सहसा अन्तर्हित हो गये तो गोपियाँ व्याकुल हो गयीं । क्योंकि गोपियों के अन्तःकरण को तो भगवान् ने अपनी चाल, चितवन तथा भावभंगिमाओं के द्वारा हरण कर लिया था । गोपियाँ श्रीभगवान् की चाल, गति, विलास आदि का चिन्तन करती हुई तन्मय हो गयीं और

कहने लगीं मैं ही श्रीकृष्ण हूँ । वे भगवान् की लीला का अनुकरण करने लगी । एक साथ श्रीभगवान् के गुणों का गान करती हुई एक वन से दूसरे वन में जाकर श्रीकृष्ण को ढूंढने लगीं तथा वनस्पतियों से श्रीभगवान् का पता पूछने लगीं । उन सबों ने पीपल, बरगद, पाकड़, कुरब, अशोक, नागकेशर आदि पुरुष जाति के वृक्षों से अपने श्याम सुन्दर का पता जब नहीं पाया तो तुलसी, मालती, चमेली आदि स्त्री जाति की वनस्पतियों से श्रीभगवान् का पता पूछा; किन्तु किसी से भी उन्हें श्रीभगवान् का पता नहीं मिला । गोपियों ने पृथिवी देवी से कहा–

किं ते कृतं क्षितितपो बतकेशवाङ्घ्रि
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभाऽसि ।
अप्यङ्घ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद् वा,
आहोवराह वपुषः परिरम्भणेन ।।

(भा० १०/३०/१०)

भगवति श्रीपृथिवी देवि ! आपने ऐसा कौन सा तप किया था कि भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श करके आप सदा आनन्दमय बनी रहती हैं । आपका यह उल्लास विलास किसके कारण है ? श्रीभगवान् के चरण कमलों के स्पर्श से या वामन भगवान् के चरणों से नापी जाने के कारण ? अथवा यज्ञवाराह भगवान् के शरीर का आलिंगन करने के कारण ? इसके पश्चात् मृगाङ्गनाओं तथा लताओं से श्रीभगवान् का पता पूँछती हुई विरह व्याकुल गोपियाँ भावांविष्ट होकर श्रीभगवान् की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं । एक पूतना बन गयी तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तनपान करने लगी । कोई शकट बन गयी तो दूसरी कृष्ण बनकर रोते हुए उसे पैरों से मार कर उलट दिया । उन सबों ने तृणावर्त, बकासुर, अघासुर, प्रलम्ब आदि असुरों के वध का अभिनय किया फिर अग्नि पान तथा गोवर्धन धारण का अभिनय किया । अन्त में उन सबों ने एक स्थान पर श्रीभगवान् के चरणों का चिह्न देखा । उस चरण चिह्न के ही सहारे वे सब भगवान् को ढूँढती हुई आगे बढ़ी । तो उन्हें श्रीकृष्ण के चरण चिह्न के साथ किसी युवती के भी चरण चिह्न दिखायी पड़े । यह देखकर तो वे सब व्याकुल हो गयी और कहने लगीं–

कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना ।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ।
अनयाऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दो प्रीतायामनयद् रहः ।।
(भा० १०/३०/२७-२८)

जिस तरह कोई मादा हाथी अपने प्रियतम गजराज के साथ गयी हो वैसे ही नन्द नन्दन श्याम सुन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर चलने वाली किस महाभाग्यवती के ये चरण चिह्न हैं ? निश्चय ही इसने सर्व शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना किया होगा । इसीलिए हम सबों को छोड़कर प्रसन्न भगवान् इसको लेकर एकान्त में चले गये हैं। धन्य है वह गोपी एकान्त में जिसने अकेले श्रीभगवान् के अधर सुधा का पान किया होगा । आगे चलकर गोपियों ने श्रीभगवान् के अनेक प्रकार के कामक्रीड़ा का अनुमान लगाया । वे श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल थीं ।

इधर श्रीकृष्ण जिस गोपी को लेकर एकान्त में चले गये थे उसने सोचा कि मैं ही सभी गोपियों में श्रेष्ठ हूँ । इसीलिए तो भगवान् श्रीकृष्ण मेरा इतना सम्मान करते हैं । वह अपने सौभाग्य के मद में मतबाली होकर बोली– प्रियतम अब मुझसे नहीं चला जा रहा है । भगवान् ने कहा तो फिर तुम मेरे कन्धे पर बैठ जाओ । ऐसा कहने पर ज्यों ही वह भगवान् के कन्धे पर बैठना चाही कि भगवान् उसके सामने से अन्तर्धान हो गये । अब तो वह गोपी भी अपने पर पछताने लगी । श्रीभगवान् को ढूँढती हुई अन्य गोपियाँ भी वहाँ पहुँच गयीं जहाँ वह गोपी भगवान् के वियोग में बेहोश पड़ी थी । श्रीभगवान् को ढूँढती हुई गोपियाँ वहाँ तक गयीं जहाँ तक चाँदनी का प्रकाश दिखायी पड़ा । आगे अन्धकार देखकर गोपियाँ नहीं बढ़ सकीं । फिर वे यमुना के तट पर आकर समवेत स्वर में श्रीकृष्ण विरह का गीत गाने लगीं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इकतीसवाँ अध्याय

गोपिकागीत

विरह के आवेश में गोपियाँ गाने लगीं–

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः, श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते ।।
(भा० १०/३१/१)

प्रियतम आपके जन्म के कारण व्रज की महिमा वैकुण्ठ आदि लोकों से भी बढ़ गयी है । इसीलिए श्रीदेवी यहाँ नित्य निवास करने लगी हैं । हे प्रियतम ! आप देखिये ! आप पर ही अपने प्राणों को न्योछावर करने वाली हम गोपियाँ वन में भटकती हुई आपको ढूँढ रही हैं । प्रभो ! हमलोग तो आपकी बिना मूल्य की दासियाँ है । आपके मनोहर नेत्रों ने हमें घायल कर दिया है । आखों से मारना क्या वध नहीं है । क्या केवल शस्त्रों से वध करना ही वध है ? आपने हमलोगों की रक्षा यमुनाजी के विषैले जल से, अघासुर आदि राक्षसों से बार-बार किया है । आप केवल यशोदानन्दन ही नहीं हैं अपितु आप सबों की अन्तरात्मा में विराजमान रहने वाले सबके अन्तर्यामी हैं। आपने संसार की रक्षा करने के लिए अवतार ग्रहण किया है । जो जीव आपके चरणों के शरणागत हो जाते हैं उनको आप संसार च्रक से अभय बना देते हैं । प्रियतम आप अपना करकमल हमारे सिर पर रख दें । प्रभो! हम लोग आपकी दासियाँ है । आप अपना मुख कमल हमें दिखा दें आप अपने शरणागत जीवों के पापों को विनष्ट करने वाले, पशुओं के पीछे-पीछे चलने वाले, श्रीदेवी के एकमात्र आश्रय अपने चरणों को हमारे स्तनों पर रख दें जिससे कि हमारे हृदय की ज्वाला मिट जाय। हे दानवीर ! आप अपने अधर-सुधा का पान हमे करा दें ।

तवकथामृतं तप्तजीवनं, कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ।।
(भा० १०/३१/९)

प्रभो ! हमारा जीवन सन्तप्त है । आपकी कथा तो अमृत के समान है । इसका गान तत्वज्ञ पुरुषों ने किया है । उसके सुनने मात्र से ही मंगल हो जाता है । आपका ऐश्वर्य सम्पन्न एवं विस्तृत है । जो लोग आपकी कथा सुधा का गान करते हैं वे बहुत बड़े दानी हैं । प्रभो! आपके प्रेमपूर्ण चितवन तथा विहार का ध्यान करने मात्र से ही मंगल हो जाता है । आप गायों को चराने के लिए अपने कमलवत् सुकुमार चरणों से जब वन में चलते हैं तो हमारे मन में बड़ा ही कष्ट होता है। सायंकाल जब आप वन से गायों को चराकर लौटते हैं तो आपके काले कुन्तलों से समलंकृत मुखमण्डल को देखकर हम लोगों का कान उद्दीप्त हो जाता है । हमसब आपके अधरों का पान करना चाहती हैं । जब हम आपको क्षणभर भी नहीं देखती हैं तो लगता है जैसे एक युग बीत गया हो ।

यत्ते सुजात चरणम्बुरुहस्तनेषु
भीताः शनैः प्रियदधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ।।

(भा० १०/३१/१९)

प्रियतम आपके चरण तो कमल से भी अधिक कोमल हैं । उन्हें कहीं चोट न लग जाय इस भय से हम उन्हें अपने कठोर स्तनों पर बहुत धीरे से रखती हैं । उन्हीं चरणों से आप छिपे-छिपे रात्रि में वनों में भटक रहे हैं । क्या इनमें कंकड़ पत्थर की चोट नहीं लगती है, हम लोगों को यह सोचकर ही चक्कर आ रहा है । हमारा जीवन तो आपके लिए है, हमलोग आपके लिए ही जीती हैं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

बत्तीसवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का प्रकट होकर गोपियों को सान्त्वना देना

श्रीशुकदेवजी ने कहा– उपर्युक्त प्रकार से गाती हुई गोपियाँ श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा में फूट-फूटकर रोने लगीं ।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ।।

(भा० १०/३२/२)

उसी समय उन गोपियों के बीच में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये । उनका मुखमण्डल मन्दमुसुकान से विकसित था । वे पीताम्बर धारण किए हुए थे और माला पहने थे । उनका यह रूप सबों के मन को मथ डालने वाले कामदेव के भी मन को मथ डालने वाला था । आए हुए प्रियतम श्रीकृष्ण को देखकर सभी गोपियाँ उठकर खड़ी हो गयीं । किसी ने भगवान् श्रीकृष्ण के हाथ को अपनी अंजलि में पकड़ लिया । किसी ने उनकी भुजा को अपने कन्धे पर रख लिया । किसी ने भगवान् के चबाये हुए पान को अपनी अंजलि में ले लिया । किसी ने उनके ऊपर तिरछा कटाक्ष पात किया किसी ने उनकी माधुरी को अपनी आँखों में बन्द कर लिया ।

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ।
जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ।।

(भा० १०/३२/९)

जैसे मुमुक्ष पुरुष परमज्ञानी पुरुष को प्राप्त करके संसार की पीड़ा से मुक्त हो जाते हैं उसी तरह सभी गोपियों को भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर परमानंद की प्राप्ति हुई और उनकी सम्पूर्ण विरहजन्य व्यथा समाप्त हो गयी । गोपियों के बीच में उपस्थित भगवान् श्रीकृष्ण की शोभा और अधिक बढ़ गयी थी ।

उन समस्त व्रज सुन्दरियों को लेकर श्रीभगवान् यमुनाजी के तट

पर पधारे । उस समय वहाँ पर शीतल मन्द सुगन्ध वायु बह रही थी। भौरे चारो ओर मँडरा रहे थे । कुन्द और मन्दार के पुष्प विकसित थे। शरत् पूर्णिमा की रात्रि थी । अन्धकार का नामोनिशान नहीं था । सर्वत्र आनन्द का साम्राज्य था । यमुना के तट में सुकोमल सैकत राशि बिछी हुई थी । गोपियाँ तो पूर्णकाम हो गयी थीं । अपने स्तनों के कुंकुम से सुशोभित चादर को गोपियों ने भगवान् को बैठने के लिए बिछा दिया। श्रीभगवान् उसी पर बैठ गए । श्रीभगवान् के अलौकिक सौन्दर्य के द्वारा गोपियों के स्नेह और आकांक्षा उद्रिक्त हो रहे थे । किसी गोपी ने भगवान् के चरण कमल को अपनी गोद में लिया तो किसी ने उनके कर कमलों को । इसके बाद गोपियों ने श्रीकृष्ण से पूछा–

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद् विपर्ययम् ।
नोभयंश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भो ।।

(भा० १०/३२/१६)

प्रभो ! कुछ लोग प्रेम करने वालों से प्रेम करते हैं और कुछ लोग प्रेम नहीं करने वालों से भी प्रेम करते हैं । कुछ लोग तो दोनों में से किसी से भी प्रेम नहीं करते । आपके अनुसार इन तीनों में से कौन अच्छा है ? श्रीभगवान् ने कहा सखियों जो लोग प्रेम करने वालों से ही प्रेम करते हैं उनका तो प्रेम केवल स्वार्थमय हैं, उस प्रेम में न तो सुहृदता है और न तो धर्म; जो लोग प्रेम नहीं करने वालों से भी प्रेम करने वाले होते हैं उनका प्रेम तो सौहार्द पूर्ण होता है । उनका प्रेम निष्कपट एवं पूर्ण धर्ममय होता है । जो लोग किसी से भी प्रेम नहीं करते हैं ऐसे लोग चार प्रकार के होते हैं । १. आत्माराम- जो अपने स्वरूप में ही मस्त रहते हैं । २. आप्तकाम- जिनकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो गयी रहती हैं । ३. अकृतज्ञ- उन्हें पता ही नहीं होता कि हमसे कौन प्रेम करता है तथा ४. गुरुजनद्रोही- अपने से बड़े लोगों से भी वे लोग जान बूझकर द्रोह करते हैं । मैं तो प्रेम करने वाले से भी वैसा व्यवहार नहीं करता हूँ । मिल-मिल कर भी छिप जाता हूँ । ऐसा इसलिए करता हूँ कि उन लोगों की चित्त की वृत्ति मुझमें लगी रहे । आपलोगों ने मेरे लिए अपने सारे लोगों को छोड़ दिया, सारी मर्यादाओं का भी आपलोगों ने परित्याग कर दिया है । मैं आप लोगों से मिलकर इसलिए छिप गया था कि आप लोगों की वृत्ति मुझमें ही लगी रहे,

कहीं अन्यत्र न भटके । तुम लोग तो मेरी प्रियतमा हो । तुम लोगों ने उस बन्धन को मेरे प्रेम में तोड़ डाला है जिसे बड़े-बड़े योगी भी नहीं तोड़ पाते हैं । हमारा और आपका मिलन, सर्वथा निर्दोष एवं निर्मल है । मैं तुम लोगों के प्रेम के लिए ऋणी हूँ । आपलोगों के इस त्याग का बदला मैं कभी भी नहीं चुका सकता ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

तैतीसवाँ अध्याय

महारास

श्रीशुकदेवजी ने कहा– इस तरह से श्रीभगवान् की मनोहर बातों को सुनकर तथा उनके अंगों का सम्पर्क पाकर गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से उत्पन्न संताप को त्याग दिया । भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेयसी गोपियाँ एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले खड़ी थी । उन सबों के साथ भगवान् ने यमुनाजी के तट पर रास क्रीड़ा प्रारम्भ किया। भगवान् प्रत्येक दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये इस तरह सभी गोपियों ने यह अनुभव किया कि हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण हमसबों के साथ हैं । इस तरह भगवान् का महारास प्रारम्भ हुआ । उस महारास को देखने के लिए अपनी पत्नियों के साथ आये हुए देवताओं के विमान से आकाश भर गया । स्वर्ग की दुन्दुभियाँ अपने आप बजने लगीं । आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगीं । सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करने लगीं । गोपियाँ असंख्य थीं; अतएव उनके नूपुर आदि आभूषणों का शब्द भी जोर-जोर से होने लगा । गोरी-गोरी गोपियों के बीच में विद्यमान् भगवान् श्रीकृष्ण की ऐसी शोभा होती थी जैसे सुवर्ण मणियों के बीच में नीलमणि चमक रही हो ।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैः ।
भज्यन्मध्यैः चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।

स्विद्यन्मुख्यःकबररशनाग्रन्थयः कृष्णबध्वः
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरोजुः ।।
(भा० १०/३३/८)

गोपियाँ अनेक प्रकार से पैरों को रखकर हाथों के द्वारा भावों को बतला के, कभी मुस्कुराकर, कभी भौंहे मटका कर, कभी कमर लचका कर तथा कभी नृत्य के समय स्तनों के अधिक हिलने के कारण वस्त्रों के स्तनों से हट जाने से भगवान्, श्रीकृष्ण के साथ अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं । उनके मुखड़े पर पसीना हो गया था, केशों की चोटियाँ ढीली हो गयी थीं, नीवी की गाँठ खुल रही थी । लग रहा था साँवले-साँवले मेघ मण्डल में जैसे बिजली चमक रही हो । नृत्य करती हुई गोपियाँ भगवान् के साथ मधुर गीत गा रही थीं । कोई गोपी जब जोर-जोर से गाने लगती थी तो श्रीभवगान् उसकी प्रशंसा करते थे । नृत्य करती हुई कोई गोपी जब थक गयी तो उसने भगवान् के कन्धे को जोर से पकड़ लिया । किसी गोपी ने भगवान् की सुगन्धित भुजा को चूम लिया । एक नृत्य करती हुई गोपी ने अपने मुख का चबाया हुआ पान भगवान् के मुख में दे दिया । श्रीशुकदेवजी ने कहा–

गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कान्तं श्रिय एकान्त बल्लभम् ।
गृहीतकण्ठ्यस्तद् दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रे ।।
(भा० १०/३३/१५)

परीक्षित् गोपियों का भाग्य लक्ष्मीजी से भी अधिक है, लक्ष्मीजी के परम प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण को अपने परम प्रियतम के रूप में प्राप्त करके गोपियाँ गा-गाकर विहार करने लगीं । भगवान् उनके गलों को अपने भुजपाश में बाँध रखे थे । उस समय गोपियों की अपूर्व शोभा थी । गोपियाँ उस रास में नृत्य करती हुई थक गयी थीं । उनके माला एव पुष्प टूटकर पृथिवी पर गिर पड़े थे । भगवान् ने गोपियों के मुख को पोंछा और उनका सम्मान किया । थकी हुई गोपियाँ भगवान् की लीलाओं को ग़ाने लगीं । इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने गोपियों के साथ यमुना के जल में जल विहार किया । उस समय देवता उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे । इसके पश्चात् भगवान् ने उऩ गोपियों के साथ उपवनों में विहार किय । वह रास की रात्रि अनेक रात्रियों की हो गयी थीं ।

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से पूँछा कि श्रीभवगान् के अवतार का प्रयोजन तो धर्म की रक्षा और अधर्म का नाश होता है । वे धर्म उपदेशक हैं फिर उन्होंने धर्म के विपरीत गोपियों का स्पर्श कैसे किया ? प्रभो हमारे इस सन्देह को आप दूर करें ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा–

धर्मव्यतिक्रमो दृष्टः ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय बह्नेः सर्वभुजो यथा ।।

(भा० १०/३३/३०)

देखा जाता है कि सूर्य, अग्नि, आदि समर्थ पुरुष भी कभी धर्म का अतिक्रमण करते है, किन्तु ऐसे कार्यों से उन तेजस्वी पुरुषों में कोई दोष नहीं लगता है । अग्नि सब कुछ खा जाता है किन्तु वह उन पदार्थों के दोष से संपृक्त नहीं होता है । किन्तु असमर्थ व्यक्तियों को ऐसा काम तो मन से भी नहीं करना चाहिए, शरीर से कौन कहे ? समर्थ पुरुषों के उपदेश ही ग्राह्य हैं, कहीं-कहीं ही उनके आचरण का अनुकरण किया जाता है । समर्थ पुरुष अहंकार होने के कारण अनर्थ तथा स्वार्थ से ऊपर रहते हैं । श्रीभगवान् से तो शुभ एवं अशुभ का संपर्क होता ही नहीं है । श्रीभगवान् गोपियों, उनके पतियों तथा सम्पूर्ण संसार के अन्तःकरण में विद्यमान हैं । वे ही अवतार ग्रहण करके विविध लीला करते हैं । रास लीला के समय समस्त व्रजवासी यह जानते थे कि उनकी पत्नियाँ उनके साथ ही हैं । वे योगमाया से मोहित थे । उन्होंने भगवान् में दोष बुद्धि की ही नहीं । महारास की रात्रि उतनी बड़ी हुई जितनी बड़ी ब्रह्माजी की रात्रि होती है । ब्राह्म मुहूर्त में भगवान् ने सभी गोपियों को उनके घर भेज दिया । जो ज्ञानी पुरुष श्रीभगवान् की इस रासलीला का श्रवण एवं वर्णन करते हैं उनकी श्रीभगवान् में भक्ति हो जाती है तथा उनका कामभाव विनष्ट हो जाता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौंतीसवाँ अध्याय

सुदर्शन तथा शंखचूड़ का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने कहा– एकबार नन्द बाबा इत्यादि गोपों ने शिवरात्रि के समय बैलगाड़ी पर सवार होकर अम्बिका वन की यात्रा की । उन लोगों ने स्नान करके भक्तिपूर्ण भाव से भगवान् शंकर तथा पार्वतीजी का पूजन किया । भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिए उन लोगों ने ब्राह्मणों को भोजन कराकर अनेक प्रकार का दान दिया । उस दिन नन्द, सुनन्द आदि उपवास किए थे । और रात्रि में सरस्वती नदी के तट पर ही सो गए । उस वन में एक अजगर रहता था । रात्रि को उसने नन्दजी को पकड़ लिया । तब तो नन्दजी भगवान् श्रीकृष्ण का नाम लेकर रक्षार्थ चिल्लाने लगे । जितने गोप थे उस सर्प को लुकाठी से मार रहे थे । फिर भी उसने नन्दजी को नहीं छोड़ा । उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण आकर उसे अपने पैरो से छू दिये । पैर से छूते ही उसने अपना सर्प शरीर त्याग दिया और सुवर्ण अलंकारों से मण्डित पुरुष के रूप में भगवान् के समक्ष खड़ा हो गया । भगवान् ने उससे पूँछा–

को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ।
कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ।।

(भा० १०/३४/११)

तुम कौन हो ? तुम्हारे अंग से शोभा निकल रही है, तुम देखने में अद्भुत लगते हो, तुम्हे यह अजगर की योनि कैसे मिली ? लगता है कि विवश होकर अजगर योनि में आये हो । उस पुरुष ने कहा प्रभो! मैं पूर्व जन्म में विद्याधर था । मैं सुन्दर एवं धनवान् था । विमान पर चढकर जाते हुए मैंने अंगिरा गोत्र के कुरुप ऋषियों को देखकर उनकी हंसी उड़ायी । उन्हीं के शाप से मुझे यह योनि मिली है ।

आपके चरण स्पर्श से मेरे सारे पाप विनष्ट हो गए हैं और मैं शाप मुक्त हो गया हूँ । प्रभो ! आपके दर्शन मात्र से मैं ब्राह्मणों के शाप से मुक्त हो गया । जो व्यक्ति आपके नामों का उच्चारण करता है वह अपने श्रोताओं के भी पापों को विनष्ट कर देता है । सुदर्शन भगवान् की स्तुति, प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करके अपने लोक चला गया । व्रजवासियों के भी मन में श्रीभगवान् के प्रति बहुत अधिक श्रद्धा हो गयी । वे सब उनकी लीला का गान करते हुए व्रज में लौट गए ।

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी रात्रि के समय गोपियों के साथ वन में विहार कर रहे थे । सायंकाल की बेला थी । पुष्पों की सुगन्धि लेकर हवा बह रही थी । आकाश में तारे उग गये थे । गोपियों का सम्मान करने के लिए श्रीबलराम और कृष्ण राग अलाप रहे थे और गोपियाँ आनन्द मग्न हो रही थी । मोहित गोपियों को अपने शरीर की भी सुधि नहीं थीं । उसी समय वहाँ पर एक शंखचूड नामक यक्ष आया । वह कुबेर का अनुचर था । सबों के समक्ष वह गोपियों को लेकर उत्तर की ओर भाग चला । गोपियाँ अपनी रक्षा के लिए बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् को पुकारने लगीं। यह देखकर श्रीभवगान् तथा बलरामजी हाथ में शाल वृक्ष लेकर उसके पीछे दौड़े । उन दोनों को अपने सन्निकट देखकर वह गोपियों को छोड़कर अपनी जान बचाने के लिए भागा । बलरामजी तो गोपियों की रक्षा के लिए वहीं रुक गये; किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण उसके पीछे दौड़ते रहे । उन्होंने उस यक्ष को पकड़कर उसके सिर पर एक मुक्का मारा उससे उसका सिर टूट गया । भगवान् ने उसके सिर से चमकीली मणि को निकाल लिया और उसे बलरामजी को प्रदान किया।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पैंतीसवाँ अध्याय

युगलगीत

श्रीशुकदेवजी ने कहा– भगवान् श्रीकृष्ण जब गायों को चराने के लिए वन मे चले जाते थे तो गोपियाँ श्रीभगवान् की लीलाओं को गा-गाकर अपना दिन का समय बिताती थीं । गोपियों ने गाया–

वाम बाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रूरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य, ईरयति यत्र मुकुन्दः ।।
(भा० १०/३५/२)

सखियों ! श्रीभगवान् अपने प्रेमी भक्तों को प्रेम प्रदान करते हैं तथा द्वेषियों को भी मोक्ष प्रदान करते हैं । अतएव वे मुकुन्द कहलाते हैं । वे जब अपने बायीं गाल को बायीं भुजा पर रखकर भौहों को नचाते हुए बाँसुरी बजाते हैं तथा अपनी कोमल अंगुलियों को उसके छिद्रों पर फिराते हैं, उस समय सिद्धों की पत्नियाँ अपने पतियों के साथ विमान पर चढ़कर आकाश में चली आती हैं, तथा उस आवाज को सुनकर अत्यन्त चकित हो जाती हैं । वे इतना कामाविष्ट हो जाती हैं कि उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त होने लगते हैं । श्याम जब हँसते है तो उनका हास्य ही हार बना जाता है । उनके वक्षस्थल में विद्यमान सुनहरा श्रीवत्स चिह्न ऐसा प्रतीत होता है जैसे श्याम मेघ पर बिजली स्थिर रूप से बैठ गयी हो । उनकी वंशी की ध्वनि सुनकर गाएँ एवं वृष भी अपने मुख में ग्रास लिए-लिए सोने लगते हैं । जब श्रीकृष्ण मोर-मुकुट इत्यादि से अपने को सजाकर श्रीबलरामजी के साथ अपनी वंशी में एक-एक गौ का नाम लेकर पुकारते हैं उस समय उस ध्वनि को सुनकर नदियों की भी जलधारा इसलिए रुक जाती है कि वे सोचती हैं कि वायु उड़कर श्रीकृष्ण की चरण धूलि हममें डाल दे । उन सबों ने कहा–

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपुरुष इवाचलभूतिः
वनचरोगिरितटेषुचरन्तीः वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ।

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमदृष्टतनवः ससृजुः स्म ।।
(भा० १०/३५/८-९)

जिस तरह देवगण अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न आदि पुरुष भगवान् नारायण के अचल ऐश्वर्य का वर्णन करते हैं उसी तरह ग्वाल-बाल भी अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण की अचिन्त्य शक्ति का वर्णन करते हैं । जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण पर्वतों की तलहटी में चरने वाली गायों का नाम लेकर वंशी की धुन में पुकारते हैं उस समय वन के वृक्ष एवं लताएँ पुष्प एवं फलों से लद जाते हैं । उनकी डालियाँ पृथिवी तक झुक जाती हैं जैसे वे प्रणाम कर रही हों । वे लताएँ भी अपने भीतर श्रीभगवान् की स्थिति को व्यक्त करती हुई फूली नहीं समाती । उनका रोम-रोम विकसित हो जाता है और सबके-सब मधुधाराएँ उड़ेलने लग जाती हैं । श्रीभगवान् सकल जगत् शिरोमणि हैं । उनके गले में वनमाला ललाट पर केसर की खौर अपनी ओर भौरों को आकृष्ट करते हैं तो वंशी की ध्वनि समस्त पक्षियों को । प्रियतम श्रीकृष्ण की मुरली ध्वनि सुनकर उनके समक्ष ब्रह्माजी, शंकरजी इत्यादि भी आनन्द मग्न सिर झुकाकर खड़े हो जाते हैं । हम गोपियाँ भी उन भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं और हमलोगों को अपने वस्त्र तक नहीं रह जाता है । मणियों की माला धारण किए हुए भगवान् श्रीकृष्ण जब अपने बाल सखाओं के गले में अपना हाथ डाल देते हैं और गायों को गिनते हुए भाव बता-बताकर वंशी की तान छेड़ देते हैं, उस समय मृगाङ्गनाएँ भी आकर उन्हें चारो ओर से घेर लेंती हैं तथा हटने का नाम तक नहीं लेतीं । गायों को लेकर वन से लौटते हुए श्रीकृष्ण भगवान् को देखकर गोपियाँ कहती हैं–

मदविघूर्णितलोचनईषन् मानदः स्वसुहृदां वनमाली ।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डलक्ष्म्या ।
यदुपतिर्द्विरदराजबिहारो यामिनी पतिरिवैषदिनान्ते ।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिनतापम् ।।
(भा० १०/३५/२४-३५)

सखी देखो ! हमारे प्रियतम का कैसा सौन्दर्य हैं ? मदभरी

आँखे कुछ चढ़ी हुई हैं । उनमें थोड़ी अरुणिमा भी है । वे वनमाला धारण किए हुए हैं । सुवर्ण कुण्डल से उनके कोमल कपोल समलंकृत हैं । उनके कपोल अधपके वेर के समान पीले-पीले प्रतीत होते हैं । उनका मुख कमल प्रसन्न है । श्रीकृष्ण इस तरह विहार करते हैं जैसे कोई गजराज विहार करता हो । इनकी शोभा इस तरह हो रही है जैसे सायंकाल में चन्द्रमा सुशोभित होते हैं । प्रसन्न मुख भगवान् श्रीकृष्ण दूर से इसी ओर आ रहे हैं और व्रजवासियों तथा गौओं का दिनभर का सन्ताप मिटा रहे हैं ।

इस प्रकार से गोपियाँ भगवान् की लीलाओं का गान करती हुई उनके विरह से उत्पन्न व्यथा को मिटाती हुई दिन बिताती थीं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❁❁❁

छत्तीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुर का उद्धार तथा कंस द्वारा अक्रूरजी को व्रज भेजना

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि जब भगवान् श्रीकृष्ण गायों को चरा कर सायंकाल व्रज में प्रवेश कर रहे थे उस समय उत्सव मनाया जा रहा था । उसी समय अरिष्टासुर नामक राक्षस व्रज में बृहदाकार बैल का रूप धारण करके प्रवेश किया । उसकी सिंगों की ऊँचाई आकाश के बादलों को छू रही थी । उसके ककुद और शृंग बड़े ऊँचे थे । वह पृथिवी पर पैर पटक रहा था जिससे पृथिवी कांप रही थी। उसे देखकर सभी पशु भाग चले । सभी गोप-गोपी भयभीत होकर भगवान् श्रीकृष्ण को पुकारने लगे । भगवान् ने जब उस अरिष्टासुर को देखा तो कहे कि भयभीत होने की कोई बात नहीं है । उन्होंने उस राक्षस से कहा कि अरे दुष्ट ! मैं तेरा मान मर्दन करने वाला हूँ । गोपियों एवं गौओं को क्यों भयभीत कर रहा है ? यह कहकर भगवान् ने उसे ललकारा और ताल ठोकर अपने एक सखा के गले में हाथ

डालकर खड़े हो गए । यह देखकर अरिष्ट भगवान् पर सींग से प्रहार करने के लिए सोचा; किन्तु श्रीभगवान् ने उसकी सींग पकड़कर उसे पीछे की ओर अठारह डेग ढकेल ले गये और गिरा दिये । वह उठकर श्रीभगवान् पर अपने सिगों का प्रहार करना चाहता ही था कि भगवान् ने फिर जोर से ढकेल कर गिरा उसे दिया तथा उसकी छाती पर पैर रखकर इसतरह से दबाया कि उसके मुख से खून निकलने लगा और वह मर गया । गोपों ने श्रीभगवान् की बहुत प्रशंसा की ।

अरिष्टासुर के मारे जाने के पश्चात् नारदजी कंस के पास गये और बोले– कंस जो लड़की तुम्हारे हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी वह यशोदा की लड़की थी और यशोदा के घर में पल रहे श्रीकृष्ण और बलराम क्रमशः देवकी और रोहिणी के पुत्र हैं । वसुदेवजी ने तुम्हारे डर से उन्हें वहाँ भेज दिया था । यह सुनते हीं कंस का रोम-रोम क्रोध से जल उठा । उसने वसुदेवजी को मारने के लिए तलवार उठा ली, किन्तु उसे नारदजी ने रोक दिया । नारदजी के चले जाने पर कंस देवकी तथा वसुदेव को कारागार में फिर डाल दिया और केशी नामक राक्षस को बुलाकर कहा कि तुम नन्द व्रज में जाकर श्रीकृष्ण और बलराम को मार डालो । उसने शाल, मूसल आदि अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा कि नन्दव्रज में विद्यमान श्रीकृष्ण और बलराम देवकी और वसुदेव के पुत्र हैं और हमारी मृत्यु हैं । तुमलोग कुश्ती के बहाने श्रीकृष्ण को अखाड़े में मार डालना । महावत से कंस ने कहा कि ज्यों ही श्रीकृष्ण रंगशाला के दरवाजे पर आएँ तो उन्हें तुम कुबलया पीड हाथी से मरवा देना । इसी चतुर्दशी से धनुर्यज्ञ प्रारम्भ कर दो और उसकी सफलता के लिए भूतनाथ तथा भैरव को अनेक पशुओं की बलि चढ़ाओ ।

इसके पश्चात् कंस ने अक्रूरजी को बुलाया और प्रेम पूर्वक उनका हाथ पकड़कर कहा–

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ।
नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ।।
अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ।
यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वर्थमध्यगमद् विभुः ।।

(भा० १०/३६/२८-२९)

अक्रूरजी आप बड़े ही उदार एवं दानी हैं, सब तरह से मेरे आदरणीय हैं । आज आप मेरा एक मित्रोचित कार्य कर दीजिए । क्योंकि भोजवंशी तथा वृष्णिवंशी यादवों में आपसे बढ़कर मेरा भलाई करने वाला कोई दूसरा नहीं है । यह काम बहुत बड़ा है मैंने आपका आश्रय लिया है ठीक वैसे ही जैसे इन्द्र समर्थ होने पर भी विष्णु का आश्रय लेकर अपना स्वार्थ साधता रहता है । आप नन्द व्रज में जाइये और इस रथ पर ही चढ़ाकर श्रीकृष्ण और बलराम को यहाँ ले आइये। यहाँ आने पर उन दोनों को मैं अपने हाथी से मरवा डालूँगा । यदि वे किसी तरह उससे बच भी गये तो मैं अपने मुष्टिक, चाणूक आदि पहलवानो से उन्हें मरवा डालूँगा । उन दोनों के मर जाने पर वसुदेव, देवकी तथा उनके बान्धवों को मैं अपने हाथों मार डालूँगा । उसके पश्चात् मैं अपने पिता उग्रसेन तथा देवक को मार डालूँगा । उसके बाद मैं रहूँगा और आप रहेंगे । हमदोनों पृथिवी पर अकंटक राज्य करेंगे। इसके पश्चात् जरासंध इत्यादि अपने पक्षपातियों की सहायता से मैं देवताओं के पक्षपाती राजाओं को मार डालूगाँ । अतएव आप जायँ और उन दोनों को लिवा लायँ । उन दोनों से कहियेगा कि वे धनुर्यज्ञ देखने के लिए मथुरा चलें ।

कंस की बातों को सुनकर अक्रूरजी ने कहा– राजन् आपने ठीक सोचा है । मनुष्य को प्रयास करना चाहिए सफलता तथा असफलता तो दैव के हाथ में है । यदि दैव अनुकूल रहे तो सफलता मिलती है। दैव के प्रतिकूल रहने पर विफलता मिलती है । मुझे तो आपकी आज्ञा का पालन करना ही है । इसके बाद अक्रूरजी को विदा करके कंस स्वयं भी अपने महल में चला गया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

सैंतीसवाँ अध्याय

केशी तथा व्योमासुर का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने कहा— कंस की आज्ञा प्राप्त करके केशी नामक राक्षस काले तथा भयंकर विशाल घोड़े के रूप में मन के वेग के समान तेजी से दौड़ता हुआ व्रज में आया । उसका मुँह भयंकर था तथा उसके चलने से पृथिवी काँप रही थी । वह श्रीकृष्ण तथा बलराम को मारकर अपने स्वामी कंस का प्रिय करना चाहता था । भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि व्रजवासी भयभीत हैं । तब वे सिंह के समान गरजकर सामने खड़े हो गये और केशी को ललकारे । भगवान् को खड़ा देखकर केशी उनकी ओर दौड़ा और आकर भगवान् पर उसने अपने दोनों पैरों का प्रहार किया; किन्तु भगवान् अपने को बचा ले गए । उन्होंने केशी के दोनों पैर को पकड़कर चार सौ हाथ उसी तरह फेंक दिया जिस तरह गरुड़ किसी सर्प को पकड़कर फेंक देते हैं ।

थोड़ी देर में सचेत होकर केशी फिर भगवान् के पास आया । वह अपना मुँह फैलाये हुए था । भगवान् ने अपना बायाँ हाथ उसके मुख में घुसेड़ दिया । भगवान् के हाथों का स्पर्श होते ही केशी के सारे दाँत गिर गये तथा उसके मुँह में भगवान् का हाथ इतना बढ़ गया कि केशी का श्वांस ही बंद हो गया और थोड़ी देर में वह पृथिवी पर गिर पड़ा और मर गया । इसके बाद भगवान् ने अपना हाथ उसके मुँह से खींच लिया । केशी के मर जाने पर देवताओं ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की । कंस के यहाँ से लौटकर नारदजी भगवान् श्रीकृष्ण के पास आये और कहे—

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ।
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ।।
त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योति रिवैधसाम् ।
गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ।।

(भा० १०/३७/११-१२)

भगवान् श्रीकृष्ण आपका रूप मन एवं वाणी का विषय नहीं है। आप योगेश्वर हैं तथा सम्पूर्ण जगत् का नियन्त्रण आप ही करते हैं आप सबों के हृदय में निवास करते हैं । आप यदुवंश शिरोमणि हैं तथा हमारे स्वामी हैं । जैसे एक ही अग्नि समस्त लकड़ियों में व्याप्त रहती है वैसे एक ही आप सबों की आत्मा हैं । आत्मा होने पर भी आप सबों से अपने को छिपाये रहते हैं । आप सबों के अन्तःकरण में निवास करते हैं । आप सबों के साक्षी महापुरुष तथा नियामक हैं । आप ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं । आप दैत्यों का विनाश करने के लिए तथा धर्म की मर्यादा की रक्षा करने के लिए यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं । केशी नामक भयंकर राक्षस को मारकर आपने देवताओं का बहुत बड़ा कार्य किया है । अब–

चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ।
कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ।।
(भा० १०/३७/१६)

प्रभो मैं परसो दिन आपके हाथों, चाणूर, मुष्टिक, अन्य राक्षस कुबलयापीड हाथी तथा कंस को मरा हुआ देखना चाहता हूँ । उसके बाद कालयवन मुर तथा नरकासुर का वध मैं देखूँगा । आप अनेक कन्याओं से विवाह करेंगे तथा द्वारका में रहते हुए नृग को पाप से मुक्त करायेंगे । इस तरह मैं आपके अनेक वीर कार्यों को देखूँगा ।

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेष विशेषकल्पनम् ।
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धूर्यं यदुवृष्णिसात्त्वताम् ।।
(भा० १०/३७/२४)

आप सबों के स्वामी हैं तथा अपने आप में स्थित एवं परम स्वतंत्र हैं । सम्पूर्ण भेदों की कल्पना करने वाली आपकी माया है । आप क्रीड़ा करने के लिए इस मानव शरीर को धारण किए हुए हैं । आप यदुवंशियों, वृष्णिवंशियों तथा सात्त्वतवंशियों में सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि भगवान् की स्तुति करके नारदजी तो चले गये तथा श्रीभगवान् भी केशी को मार कर गोपों के साथ पशुपालन के कार्य में लग गए ।

एक बार श्रीभगवान् गोपों के साथ पर्वत की चोटियों पर अपनी

गायों को चराते हुए लुका-छिपी का खेल खेल रहे थे । ग्वालों में से कुछ चोर कुछ रक्षक तथा कुछ भेड़ बन गये । उसी समय मय नामक राक्षस का पुत्र महामायावी व्योमासुर वहाँ पर ग्वाल का वेष धारण करके आया । खेल में वह प्रायः चोर ही बनता था और भेड़ बने बालकों को ले जाकर पर्वत कन्दराओं में छिपा देता था । अब केवल चार पाँच गोप बालक बचे थे । भगवान् ने व्योमासुर को धर दबोचा और उसको पृथिवी पर पटककर उसका गला दबाकर मार डाला और गुफा में बन्द किये गये गोप बालकों को श्रीभगवान् बाहर निकाल लाए।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

अड़तीसवाँ अध्याय

अक्रूरजी की व्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी ने कहा-- कंस का आदेश पाने के बाद दूसरे दिन अक्रूरजी रथ से व्रज के लिए प्रस्थान किए । उनके मन में श्रीभगवान् के प्रति पूर्णभक्ति थी, वे सोचने लगे । न जाने मेरा पूर्वजन्म का कौन सा सत्कर्म या तप अथवा दान है कि आज मैं श्रीभगवान् का दर्शन पाऊँगा । मैं विषयी जीव हूँ मेरे लिए श्रीभगवान् का दर्शन दुर्लभ है। मैं अधम हूँ फिर भी श्रीभगवान् का दर्शन आज मुझे मिलेगा ।

ममाद्यामंगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ।
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयांघ्रिपंकजम् ।।

(भा० १०/३८/६)

आज मेरे समस्त पाप विनष्ट हो गए । आज मेरा जन्म सफल हो गया । आज मैं श्रीभगवान् के उन चरणकमलों को नमस्कार करूँगा जो योगियों के लिए केवल ध्यान के विषय हैं । कंस ने मुझे श्रीभगवान् को लाने के लिए भेजकर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है । भगवान् के जिन चरणों की कान्ति का ध्यान करके प्राचीन महर्षि संसार

सागर को पार कर गये उनका मैं आज साक्षात्कार करूँगा । भगवान् के उन्हीं चरणों की अर्चना ब्रह्माजी, शंकरजी, श्रीदेवी तथा भागवत जन किया करते हैं । आज मैं श्रीभगवान् के सम्पूर्ण श्रीविग्रह का दर्शन कर पाऊँगा । श्रीभगवान् तो पृथिवी का भार उतारने के लिए मानवावतार ग्रहण किए हैं । आज उनके सौन्दर्य सागर श्रीविग्रह का दर्शन करके मेरे नेत्रों को सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जायेगा ।

यस्याखिलामीबहुभिः सुमङ्गलैः वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः।
प्रणन्ति शुम्भान्ति पुनन्ति वै जगद् यास्तविरक्ताः शवशोभना मताः।।
(भा० १०/३८/१२)

जब समस्त पापों का विनाश करने वाले परम मङ्गलमय गुण, कर्म, तथा जन्म की लीलाओं से युक्त होकर वाणी उनका गान करती तो उस गान से संसार में जीवन की स्फूर्ति होने लगती है, शोभा का संचार होने लगता है, सारी अपवित्रताएँ विनष्ट हो जाती हैं और पवित्रता का साम्राज्य छा जाता है । जो वाणी श्रीभगवान् के गुण, कर्म तथा लीलाओं का वर्णन नहीं करती है वह तो मुर्दे की वाणी (जीभ) के समान है । वे ही श्रीभगवान् आज व्रज में अवतीर्ण हुए हैं । उन्हीं श्रीभगवान् के दर्शन से आज मेरा सुप्रभात होगा । उन श्रीभगवान् के चरणों को देखकर मैं रथ से उतरकर उनके चरणों में प्रणाम करूँगा ।

इस प्रकार से अनेक प्रकार की कामना करते हुए अक्रूरजी रथ से जब गोकुल आये तो उस समय सूर्यास्त हो रहा था । उन्होंने गोष्ठ में श्रीभगवान् के चरण चिह्नों को देखा । उन चरण चिह्नों को देखकर वे रथ से उतर गये और उस धूलि में लोटने लगे । श्रीशुकदेवजी ने कहा–

देहभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।
संदेशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शन-श्रवणादिभिः ।।
(भा० १०/३८/२७)

कंस के संदेश से गोकुल पहुँचने तक अक्रूरजी की जो मनसिकता थी यह जीवों के देह धारण का परम लाभ है । अतएव जीवमात्र का यही परम कर्तव्य है कि दम्भ, भय तथा शोक का परित्याग करके श्रीभगवान् की मूर्ति, चिह्न, लीला आदि के दर्शन तथा श्रवण आदि के द्वारा ऐसा ही भाव सम्पादित करे । अक्रूरजी ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को गो दोहन स्थल में देखा । उन दोनों की

अभी किशोरावस्था थी । उनकी समस्त लीलाएँ उदारता तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण थीं । भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को देखते ही अक्रूरजी रथ से कूद पड़े तथा उनके चरणों में लोट गये । प्रेम परतन्त्र अक्रूरजी का शरीर रोमांचित हो रहा था, कण्ठ अवरुद्ध हो गया था । आँखों में प्रेमाश्रु छा गया थाद्ध वे अपना नाम भी नहीं बतला पा रहे थे । श्रीभगवान् ने उन्हे गले लगाया तथा दोनों भाई अक्रूरजी का हाथ पकड़कर अपने घर ले गये । सबों ने अक्रूरजी का बड़ा ही सत्कार किया । रात्रि में मधुर भोजन करने के पश्चात् बलरामजी ने उन्हें पान खिलाया नन्द रायजी उनके सन्निकट आकर उनसे सारा समाचार पूँछे। अक्रूरजी नन्दरायजी से पहले ही समाचार पूँछ चुके थे । अक्रूरजी को इस व्यवहार से बड़ी ही प्रसन्नता हुई ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उनतालिसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण बलराम का मथुरा गमन

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा– रास्ते में अक्रूरजी ने जो कामना की थी वह सारी कामना पूरी हो गयी । सायंकाल का भोजन कर लेने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरजी के पास जाकर बैठ गये और अपने सम्बंधियों के साथ किए जाने वाले कंस के व्यवहार के विषय में पूँछे ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा– चाचाजी आपको यहाँ आने में रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? अपने बान्धवों का समाचार मैं क्या पूछूँ मेरे ही कारण मेरे माता-पिता को कारागार में बन्दी बना दिया गया है। उनके बच्चे मार दिये गये । मैं चाहता था कि आप लोगों में से कोई हमसे मिले । आज हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई । आप अपने आगमन का प्रयोजन बतलाएँ ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा– श्रीभगवान् के प्रश्न को सुनकर अक्रूरजी ने अपने आने का प्रयोजन नारदजी द्वारा कंस को सारी बात बतलाने की बात, कंस द्वारा वसुदेव देवकी को मारने का प्रयास इत्यादि को बतला दिया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने नन्द बाबा को कंस के सम्पूर्ण सन्देश को सुना दिया । श्रीनन्द बाबा ने कोतवाल के द्वारा व्रज में कहलवा दिया कि कल प्रातःकाल मथुरा चलना है, कंस को उपहार देने के लिए सम्पूर्ण दूध दही एकत्रित कर लो । मथुरा में बहुत बड़ा उत्सव हो रहा उसे देखने चलना है ।

गोपियों ने जब यह सुना कि अक्रूरजी श्रीभगवान् को लेने के लिए गोकुल आये हैं तो उन्हें बड़ा ही कष्ट हुआ । वे बेहोश होने लगीं उन्हें अपने शरीर का भान समाप्त होने लगा । वे समाधिस्थ हो गयीं। उनके आँखों में आँसू भर गये । वे झुण्ड के झुण्ड इकट्ठी होकर आपस में कहने लगीं ।

अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया, संयोज्य मौत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनंक्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ।।
(भा० १०/३९/१९)

विधाता ! तुम सारा विधान करते हो किन्तु तुम्हारे भीतर थोड़ी भी दया नहीं है । पहले तो तुम संसार के प्राणियों को सौहार्द और प्रेम से जोड़ देते हो और उनकी आशाओं तथा अभिलाषाओं के तृप्त होने से पूर्व ही उन्हें वियुक्त भी कर देते हो । तुम्हारा यह खिलवाड़ बच्चों के खिलवाड़ के समान व्यर्थ है । तुमने तो एक बार हमें श्याम-सुन्दर से मिला दिया । वे हमारे सर्वस्व बन गये । अब उन्हीं को हमारी आँखों से ओझल कर रहे हो । यह तुम्हारी करतूत बड़ी ही अनुचित है । इस महाक्रूर को अक्रूर न जाने कैसे कहते है । जो अक्रूर हमारे नेत्रों के तारे श्रीकृष्ण को हमसे दूर ले जाना चाहता है । श्याम सुन्दर को भी नये-नये लोगों से मित्रता करने की आदत पड़ गयी है । इन्हीं के कारण हमलोगों ने संसार के सारे संबन्धों का परित्याग कर दिया । किन्तु ये ऐसे हैं कि हम लोगों की ओर देखते तक नहीं हैं । आज की रात का प्रातःकाल मथुरा की रमणियों के लिए है । आज उनकी बहुत दिनों की अभिलाषाएँ पूर्ण हो जायेंगी । वे व्रजराज श्याम-सुन्दर के

सुन्दर मुखमण्डल का दर्शन करके कृत-कृत्य हो जायेंगी । वे अपने मधुर वचनों से श्याम-सुन्दर के अन्तःकरण को अपने वश में कर सकती हैं । हो सकता है वे वहाँ से लौटकर फिर हम अज्ञ गोपियों के पास नहीं आ सकें । अजान्त क्रूर अक्रूर हमारे श्याम-सुन्दर को हमसे बहुत दूर ले जाना चाहते हैं । ये गोप भी उनके साथ बहुत शीघ्रता कर रहे हैं । श्यामसुन्दर भी जाने के लिए अब रथ पर बैठ गये। अब हम श्रीकृष्ण के बिना कैसे जीयेंगी । इसतरह बातें करती हुई गोपियाँ अपने धैर्य को नहीं संभाल सकीं और लाज छोड़कर जोर-जोर से हे कृष्ण, हे माधव ! हे दामोदर इत्यादि नामों को लेकर रोने लगीं ।

प्रातःकाल होते ही अक्रूरजी ने अपना रथ मथुरा के लिये चलाया। नन्द बाबा आदि भी उपायन की सामग्री दही, दूध इत्यादि लेकर उनके पीछे चल दिए । बैठे हुए श्रीकृष्ण को देखकर गोपियाँ उनके रथ के समक्ष आयीं कि कृष्ण हमें कुछ सन्देश देंगे । श्रीकृष्ण भगवान् ने दूत से कहवा दिया कि 'मैं आऊँगा' । गोपियाँ तब तक चित्र लिखित सी देखती रहीं जब तक उन्हें रथ की धूलि, पताका इत्यादि दिखायी देते रहे । अन्त में वे निराश होकर अपने-अपने घर चली गयीं । वे श्रीभगवान् की लीलाओं का गान करके अपने संताप्प को हलका करती रहीं ।

इधर रथ पर सवार होकर श्रीकृष्ण भगवान् और बलरामजी भी शीघ्र ही यमुनाजी के तटपर आ गये । श्रीभगवान् तथा बलरामजी को रथ पर बैठाकर तथा उनसे आज्ञा लेकर अक्रूरजी यमुनाजी में स्नान करने के लिए प्रवेश किये । उन्होंने देखा कि उस यमुना के जल मे भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी बैठै हुए हैं । उन्हें आश्चर्य हुआ कि मैं तो इन दोनों को रथ पर बैठाकर आया था । वे यहाँ जल में कैसे हैं ? उन्होंने बाहर निकलं कर देखा तो भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी रथ पर पूर्ववत् बैठे थे ।

उन्होंने सोचा कि शायद मुझे भ्रम हो रहा है । उन्होंने जब जल के भीतर डुबकी लगया तो देखा कि श्रीभगवान् श्रीकृष्ण शेषशय्या पर विराजमान हैं शेषजी के हजार सिर हैं । वे अपने मुखों से श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे हैं । श्रीभगवान् समस्त बह्मालंकारों से अलंकृत हैं ।

उनकी चार भुजाएँ है । नन्द सुनन्द आदि पार्षद, श्री भू इत्यादि देवियाँ, नित्यमुक्त जीव उनकी सेवा में लगे हुए हैं । श्रीभगवान् के इस रूप को देखकर अक्रूरजी का अन्तःकरण प्रेम से परिपूर्ण हो गया । उन्होंने अपने गद्गद स्वर से श्रीभगवान् की स्तुति करना प्रारम्भ किया।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
उनतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चालीसवाँ अध्याय

अक्रूरजी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति

श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए अक्रूरजी ने कहा–

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशात् ब्रह्माविरासीत् यत एष लोकः ।।
(भा० १०/४०/१)

प्रभो ! आप प्रकृति आदि समस्त कारणों के भी कारण हैं । आप ही अविनाशी पुरुष नारायण हैं । आपके ही नाभिकमल से ब्रह्माजी का अविर्भाव हुआ, जिन ब्रह्मजी ने इस चराचर जगत् की सृष्टि की। मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ । आपसे यह सम्पूर्ण जगत् उद्भूत है । आपके दिव्य रूप को कोई भी नहीं जान पाता है । समस्त योगिजन आपकी ही आराधना करते हैं । वे सदा महापुरुष त्रयी विद्या के द्वारा आपकी अनेक देवताओं के रूप में अराधना करते हैं । ज्ञानी पुरुष आपकी आराधना ज्ञान स्वरूप से करते हैं । भगवान् शिवजी द्वारा प्रोक्त मार्ग के अनुयायी आपकी आराधना शिवरूप में करते हैं ।

यथाद्रिप्रभवानद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ।।
(भा० १०/४०/१०)

जिस तरह पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ जल से भरी हुई सब ओर से आकर समुद्र में ही मिलती हैं उसी प्रकार से सभी उपासनाओं

के अन्तिम लक्ष्य आप ही हैं । आपकी माया के गुण सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण हैं । ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त जितने भी जीव हैं वे प्राकृतिक हैं और वे सबके-सब प्राकृतिक गुणों से ही ओत-प्रोत हैं। प्रभो ! आप क्रीड़ा करने के लिए पृथिवी पर अवतीर्ण होते हैं और उन अवतारों से आप प्राणियों के शोक एवं मोह को विनष्ट कर देते हैं तथा संसार के प्राणी आपके निर्मल यश का गान करते हैं । अक्रूरजी ने कहा– प्रभो ! आप मत्स्यावतार धारण करके प्रलयाब्धि में संचरण करते हैं, मधुकैटभ का विनाश करने के लिए आपने हयग्रीव रूप धारण किया । मन्दराचल पर्वत को धारण करने के लिए आपने कच्छपावतार लिया तथा पृथिवी देवी का उद्धार करने के लिए आपने वराहावतार धारण किया ।

इस तरह से आप जिन अवतारों को ग्रहण करते हैं आपके उन समस्त अवतारों को मैं नमस्कार करता हूँ ।

प्रभो ! संसार के समस्त जीव आपकी माया से मोहित हैं तथा अहंकार तथा ममकार में फँसे हुए हैं । मैं भी अज्ञान के ही कारण देह-गेह के मोह में फँसा हुआ हूँ । मैं अपना कल्याण स्वयं नहीं जानता हूँ।

सोऽहं तवांघ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं
तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।
पुंसो भवेद् यर्हि संसरणापवर्गः
त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ।।

(भा० १०/४०/२८)

उपुर्यक्त प्रकार से भटकता हुआ मैं आज आपके चरण कमलों की छत्र-छाया में आ गया हूँ । आपके चरण कमल दुष्टों के लिए दुष्प्राप्य हैं । प्रभो ! यह मेरे ऊपर आपकी बहुत बड़ी कृपा है । हे अब्जनाभ ! जब जीव के संसार से मुक्त होने की बेला आती है उस समय सत्पुरुषों की उपासना से चित्तवृत्ति आपमें लग जाती है । प्रभो! आप ही परवासुदेव हैं तथा सम्पूर्ण जीवों के आश्रय हैं । आप ही मन एवं बुद्धि के अधिष्ठाता हैं । मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

एकतालीसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का मथुरा में प्रवेश

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि यमुनाजी में अपना दिव्य रूप दिखाने के पश्चात् श्रीभगवान् ने अक्रूरजी के सामने से अपना रूप अन्तर्हित कर लिया । इसके पश्चात् आवश्यक कार्य सम्पादित करके अक्रूरजी बाहर आये तो श्रीभगवान् ने उनसे पूँछा– आप क्यों घबराए हुए हैं ? क्या आपने कोई अद्भुत वस्तु देखा है ? श्रीभगवान् की बातों को सुनकर अक्रूरजी ने कहा– प्रभो ! आप तो विश्वरूप हैं, सारी अद्भुत वस्तुएँ आपके भीतर ही हैं । जब मैं आपको देख रहा हूँ तो फिर दूसरी कौन सी अद्भूत वस्तु देख लूँगा ? यह कहकर अक्रूरजी ने अपना रथ हाँका और सायंकाल वे मथुरा पहुँच गए। रास्तें में जो लोग आए भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी की छवि देखकर वे मग्न हो जाते थे । नन्दजी तथा गोपगण पहले ही मथुरा पहुँच चुके थे । वे मथुरा के बाहरी उद्यान में रुककर श्रीकृष्ण और बलरामजी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे । उनके पास पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कहा कि आप मथुरा पुरी में प्रवेश करें। हम लोग पहले यहाँ उतरेंगे फिर नगर देखने आयेंगे ।

श्रीअक्रूरजी ने कहा–

नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ।
त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ।।
(भा० १०/४१/११)

प्रभो ! मैं आप दोनों के बिना मथुरा में नहीं जा सकता हूँ । प्रभो! मैं आपका भक्त हूँ । आप तो भक्तवत्सल हैं । प्रभो ! आप मुझे त्यागिये नहीं । आप ग्वाल-बालों के साथ चलकर हमारे घर को प्रवित्र कर दें । आपके चरणों की धूलि से हम पवित्र हो जायेंगे । आपके चरण रज से हमारा घर पावन हो जायेगा । प्रभो ! आप देवताओं के भी देवता हैं । आप जगत् के स्वामी हैं । आपके गुणों एवं लीलाओं

का श्रवण बड़ा ही मङ्गलकारी है । आप उत्तम श्लोक हैं । आप ही नारायण हैं । आपको मेरा नमस्कार है । श्रीभगवान् ने कहा– चाचाजी पहले कंस को मार कर मैं आपके घर आऊँगा । भगवान् की बात सुनकर अक्रूरजी कुछ उदास हो गए । इसके बाद मथुरा आकर उन्होंने बलराम एवं श्रीकृष्ण भगवान् के मथुरा आने का समाचार कंस को सुनाया।

उसके दूसरे दिन तीसरे प्रहर श्रीकृष्ण भगवान् बलरामजी तथा गोपों के साथ मथुरा पुरी को देखने के लिए चले । भगवान् ने देखा कि मथुरा नगरी के परकोटे स्फटिक मणि के बने हैं । सोने के किवाड़ बने है । नगर के चारों तरफ ताम्बे एवं पीतल की चाहर दीवारी है । उसमें प्रवेश करना कठिन है । स्थान-स्थान पर रमणीय उद्यान है । धनिकों के सुन्दर भवन तथा प्रजाओं का सभा भवन भी था । नगर पूरी तरह सजाया गया था ।

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो, हर्म्याणि चैवारुरुहु र्नृपोत्सुकाः ।।
(भा० १०/४१/२४)

भगवान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण तथा बलरामजी अपने मित्रों के साथ राजमार्ग से मथुरा पुरी में प्रवेश किए हैं, इस बात को सुनकर उस नगर की नारियाँ उन्हें देखने के लिए बड़ी उत्सुकता के साथ अटारियों पर चढ़ गयीं । उस समय किसी ने शीघ्रता के कारण आभूषण ही उल्टा पहन लिया, किसी ने एक ही आभूषण पहना और चल दी तो किसी ने कर्णफूल धारण किया । सब का मन आनन्द और उत्साह से भरा हुआ था । उन सबों ने देखा भगवान् मस्ती के साथ गजराज के समान अपने गोप बालकों के साथ चल रहे थे । उनकी विलासपूर्ण हँसी सबों का मन आकृष्ट कर रही थी । सबों ने बहुत दिनों से भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में सुन रखा था । आज उन सबों की आशाएँ पूर्ण हो रहीं थीं । उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के ऊपर पुष्पों की वर्षा की । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों ने उन दोनों को स्थान स्थान पर फूलों की माला पहनाया और वे मन ही मन कह रहे थे कि गोपियों ने जाने कौन सा तप किया है कि वे प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करती हैं । इतने में बलरामजी ने देखा कि कोई रङ्गकार अच्छे-अच्छे कपड़ों के साथ उनकी ही ओर आया । भवगान् ने कहा–

भाई तुम हमलोगों के शरीर के अनुसार अच्छे-अच्छे कपड़े दे दो । वह कंस का नौकर था । उसने कहा–

ईदृशान्येव वस्त्राणि नित्यं गिरिवनेचराः ।
परिधत्त किमुद्वृत्त राजद्रव्याण्यभीप्सथ ।।

(भा० १०/४१/३५)

तुम लोग जंगल एवं पहाड़ों में रहने वाले जीव हो । वहाँ पर ऐसा ही वस्त्र पहनते हो क्या ? तुमलोग बहुत उद्दण्ड हो गए हो इसीलिए राजा की सम्पति लेना चाहते हो अब फिर इस तरह से नहीं माँगना नहीं तो राजा के कर्मचारी तुम्हे कारागार में डाल देंगे । जिस समय वह धोबी इस प्रकार से बढ़-चढ़कर बोल रहा था । उसी समय भगवान् ने उसे एक तमाचा मारा और उसका सिर धड़ से अलग हो गया। यह देखकर उस धोबी के नीचे काम करने वाले कपड़ों का गट्ठर वहीं छोड़कर भाग चले । भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम ने अपने मनोनुकूल वस्त्रों को पहन लिया और शेष कपड़े बच्चों में बाँट दिया। आगे चलकर एक दर्जी मिला उसने भगवान् और उनके साथियों के कपड़ों को ठीक कर दिया । अब भगवान् देखने में बड़े अच्छे लग रहे थे । उसको भगवान् ने ऐसी शक्तियाँ प्रदान कर दिया कि वह किसी वस्तु को अच्छी तरह से देख सुन और समझ सके ।

इसके पश्चात् श्रीभवगान् सुदामा नामक माली के घर गये । उसने श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । उसने श्रीभगवान् और उनके साथियों को आसन पर बैठाया और उनकी पूजा की और स्तुति करके श्रीभगवान् तथा ग्वाल-बालों को सुन्दर सुन्दर मालाओं को पहनाया । भगवान् ने उसे बहुत सा वरदान प्रदान किया तथा वंश परम्परा के साथ सदा बढ़ती रहने वाली लक्ष्मी की प्राप्ति का वरदान दिया ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
एकतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

बयालिसवाँ अध्याय

कुब्जा पर कृपा तथा धनुर्भङ्ग

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि जब श्रीभगवान् मालाओं से अलंकृत होकर अपने मित्रों के साथ आगे बढ़े तो उन्होंने देखा कि एक युवती आ रही है । उसका मुख तो सुन्दर है किन्तु उसके पीठ पर कूबर है । इसीलिए उसका नाम कुब्जा था । भगवान् ने उससे उसका परिचय पूछा और कहा थोड़ा सा चन्दन हमें भी लगा दो ।

श्रीभगवान् की बातों को सुनकर कुब्जा ने कहा– मै कंस की प्रिय दासी हूँ । महाराज मुझे बहुत मानते हैं । मेरा नाम त्रिवक्रा है । मैं उनके यहाँ अंगराग और चन्दन लगाने का काम करती हूँ । उसने भगवान् के सौन्दर्य को देखकर उन्हें अपना चित्त प्रदान कर दिया । उसने दोनों भाइयों को गाढ़ा अंगराग लगाया । उसने भगवान् के श्याम शरीर पर गोरे रंग का अंगराग लगाया तथा बलरामजी के गोरे शरीर पर लालरंग का अङ्गराग लगाया । उससे भगवान् की शोभा और बढ़ गयी तथा उन्होंने कुब्जा को प्रत्यक्ष फल प्रदान करने का विचार किया । और–

पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना ।
प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ।।
सातदर्जु समानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ।
मुकुन्द स्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ।।

(भा० १०/४२/७-८)

श्रीभगवान् ने अपने पैरों से कुब्जा के पैरों के दोनों पंजो को दबा लिया और हाथ ऊँचा करके अपनी दो अंगुलियों को उसकी ठोढी में लगाया तथा उसके शरीर को थोड़ा उचका दिया । उचकाते ही उसके सारे अंग सीधे और समान हो गए । प्रेम तथा भक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के स्पर्श से तत्काल वह विशाल नितम्ब तथा पीन पयोधरों

से युक्त एक सुन्दर युवती हो गयी । उसका मन भी भगवान् में लग गया । वह श्रीभगवान् से मिलने की कामना करने लगी । उसने भगवान् के दुपट्टे का छोर पकड़ लिया और कहा– वीर शिरोमणि चलिए अब घर चलें । आप मुझ दासी पर कृपा करें । श्रीभगवान् ने हँसकर कहा– सुन्दरी हम अपना कार्य पूरा करके तुम्हारे घर आयेंगे । हम तो यहाँ बेघर के हैं तुम्हारा ही तो सहारा है । उन्होंने कुब्जा को समझाकर उसे उसके घर विदा किया और इसके बाद वे बाजार में और लोगों के द्वारा सत्कृत हुए । उनको देखकर नारियों का मन आनन्दमग्न हो गया था। वे अपने देह-गेह की स्मृति भी भूल गयी थीं ।

ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ।
तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ।
पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ।
वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ।।
(भा० १०/४२/१५-१६)

इसके पश्चात् श्रीभगवान् लोगों से घनुष का स्थान पूछे और रंगशाला में पहुँच गए और वहाँ पर इन्द्र धनुष के समान रखे हुए एक धनुष् को देखे । उस धनुष की रक्षा अनेक वीर कर रहे थे । उसे अलंकारों से सजाया गया था तथा उसकी पूजा की गयी थी । रक्षकों के द्वारा रोकते रहने पर भी श्रीभगवान् ने उस धनुष् को बलपूर्वक उठा लिया । सबों के समक्ष उन्होंने उस धनुष को बाएँ हाथ से उठाया, उस पर डोरी चढायी तथा उसे खींचकर उसको बीच से ही असानी से उसी प्रकार तोड़ डाला जैसे कोई हाथी ईख को तोड़ डालता है । यह देखकर उस धनुष् के रक्षकों ने श्रीभवगान् को घेर लिया और मार डालो, बाँध लो; इस प्रकार से चिल्लाने लगे । श्रीभगवान् और श्रीबलरामजी ने उस धनुष् के टुकड़े से ही उन समस्त रक्षकों को मार डाला तथा उस सेना का भी संहार कर दिया जिसे कंस ने धनुष् के रक्षकों की सहायता के लिए भेजा था । इसके पश्चात् बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् मथुरा पुरी की शोभा देखते हुए विचरने लगे । श्रीभगवान् तथा बलरामजी के सौन्दर्य तथा पराक्रम को देखकर वहाँ के निवासियों ने उन्हें देवश्रेष्ठ माना । तब तक शम हो गयी और नगर देखकर दोनों भाई वहाँ पर आ गये जहाँ पर नन्द बाबा इत्यादि ठहरे थे । श्रीशुकदेव जी ने कहा–

गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुराया,
आशासताशिष ऋता मधुपूर्यभूवन् ।
सम्पश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं
हित्वेतरान्नुभजत श्चकमेऽयनं श्रीः ।।

(भा० १०/४२/२४)

तीनों लोकों के बड़े-बड़े देवता चाहते थे कि लक्ष्मी हमें मिलें किन्तु श्रीलक्ष्मीजी ने अपने को नहीं चाहने वाले श्रीभगवान् को अपना आश्रय बनाया तथा अन्य समस्त देवताओं का परित्याग कर दिया । श्रीभगवान् के मथुरा आते समय विरह व्याकुल गोपियों ने मथुरा के विषय में जो जो सम्भावनाएँ की थीं वे सब आज सत्य हो रही हैं । मथुरावासी श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के सौन्दर्य को देखकर आनन्दमग्न हो रहे थे । रात्रि में भोजन करके भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सो गए ।

इधर जब कंस ने यह सुना कि बलराम और श्रीकृष्ण ने धनुष् तोड़ दिया और उसके द्वारा भेजी गयी सेना को खेल-खेल में मार डाला तो वह मृत्यु से भयभीत हो गया । उसे अनेक प्रकार के अपशकुन जाग्रतावस्था में तथा स्वप्नावस्था में दिखाई देने लगे । उसे नींद नहीं आ रही थीं । जब रात बीत गयी और सूर्योदय हो गया था उस समय कंस ने मल्ल क्रीडा का आयोजन किया । मल्लशाला सजा दी गयी । सभी लोग आकर बैठ गये । सभी राजा लोग भी अपने-अपने निश्चित स्थान पर जाकर बैठ गये । राजा कंस स्वयं सर्वोत्तम आसन पर आकर बैठ गये । अखाड़े में चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल तथा तोशल आदि पहलवान आकर सजधजकर बैठ गये । उसी समय कंस ने नंदजी को बुलवाया । वे लोग भी विविध प्रकार के उपहार कंस को प्रदान किए और जाकर अपने लिए निश्चित स्थान पर बैठ गये ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
बयालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

तैंतालिसवाँ अध्याय

कुबलयापीड का उद्धार और अखाड़े में प्रवेश

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी भी स्नान इत्यादि करके रंग शाला के अनुरूप वस्त्र आदि धारण करके अखाड़े की ओर चल पड़े । नगर द्वार पर जाकर उन्होंने देखा कि महावत कुबलयापीड नामक हाथी को दरवाजे पर खड़ा किए हुए है। श्रीभगवान् ने महावत को डाँटकर कहा कि तुम हम दोनों को जाने के लिए रास्ता दे दो, नहीं तो अभी तुमको तथा तुम्हारे हाथी को हम मार डालेंगे । यह सुनकर महावत ने हाथी को अंकुश की मार से क्रुद्ध कर दिया और उसे भगवान् श्रीकृष्ण की ओर बढ़ाया । हांथी ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी सूँड में लपेट लिया । किन्तु वे उसकी पकड़ से बाहर निकल गये और उसे एक घूसा मारकर उसके पैरों के बीच में जा छिपे । भगवान् को अपने सामने न देखकर हाथी और क्रुद्ध हो गया और अपनी सूंड से टटोलकर भगवान् को पकड़ा; किन्तु भगवान् बलपूर्वक उससे छूट गए । इसके बाद श्रीभगवान् उस हाथी के पूँछ को पकड़कर उसे सौ हाथ तक पीछे खींच लाए तथा उसकी पंछ पकड़कर घुमाने लगे । जब हाथी दायें घूमकर उन्हें पकड़ना चाहता तो वे बायें घूम जाते थे और उसके बायें घूमने पर दायें घूम जाते थे । इसके बाद भगवान् हाथी के सामने आये और उसे एक मुक्का मारे और भागने लगे और हाथी भी उन्हें खदेड़ने लगा । भगवान् जान-बूझकर गिर पड़े पीछे से हाथी ने आकर पृथिवी पर अपने दाँतो से प्रहार किया । किन्तु तब तक भगवान् वहाँ से उठकर भाग चुके थे । कुबलयापीड का वह आक्रमण व्यर्थ हो गया । इसके बाद तो हाथी श्रीभगवान् पर टूट पड़ा। भगवान् ने हाथी का सूंड पकड़कर उसे पृथिवी पर पटक दिया। भगवान् ने खेल-खेल में हाथी के दोनों दाँतों को उखाड़ लिया तथा उसी से पीट-पीटकर हाथी और महावत दोनों को मार डाला ।

मरे हुए हाथी को छोड़कर भगवान् हाथी का दाँत लेकर मल्लशाला में प्रवेश किये । उस समय उनकी अद्भुत शोभा थी । वे अपने कन्धे पर हाथी दाँत रखे थे तथा उनका शरीर पसीने तथा हाथी के खून से रंजित था । बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों के हाथ में कुबलयापीड के दाँत थे । उनके साथ कुछ गोप बालक थे । श्रीशुकदेवजी कहते हैं–

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरो, स्त्रीणांस्मरो मूर्तिमान् ।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परंयोगिनां ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गंगतः साऽग्रजः ।।
(भा० १०/४३/१७)

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ मल्लशाला में प्रवेश किए उस समय वे पहलवानों को वज्र के समान कठोर शरीर वाले, सामान्य मनुष्यों को मानवश्रेष्ठ, स्त्रियों को साक्षात् कामदेव के समान, गोपों को आत्मीय, दुष्ट राजाओं को दण्ड देने वाले प्रशासक, अपने माता-पिता को शिशु के समान सुकुमार, कंस को मृत्यु के समान भयंकर, अज्ञानियों को अज्ञानी पुरुष, योगियों को परमतत्त्व तथा वृष्णिवंशियों को परम दैवत प्रतीत हो रहे थे । कंस ने जब देखा कि इन दोनों ने कुवलयापीड को भी मार डाला तो वह घबरा गया। उसने सोचा इन सबों को तो जीतना बड़ा मुश्किल है । हार तथा भूषण आदि से समलंकृत श्रीकृष्ण एवं बलरामजी का रूप बड़ा ही मनोहर था । उस मल्लशाला में बैठे हुए सभी लोग भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्हें उनका दर्शन करने से सन्तोष नहीं हो रहा था । वे सब भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी की लीलाओं और गुणों के विषय में चर्चा कर रहे थे ।

इस प्रकार की चर्चा जिस समय हो रही थी उस समय चाणूर नामक पहलवान ने श्रीभगवान् को सम्बोधित करके कहा–

हे नन्दसूनो ! हे राम ! भवन्तौ वीरसम्मतौ ।
नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽहूतौ दिदृक्षुणा ।।
प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः ।
मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ।।
(भा० १०/४३/३२-३३)

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ! और बलरामजी आप दोनों वीराग्रगण्य हो। आप दोनों कुश्ती लड़ने में निपुण हो यह सुनकर हमारे महाराज ने आप दोनों को बुलाया है । जो प्रजा; मन, वचन और कर्म से राजा का प्रिय कार्य करती है उसका कल्याण होता है, राजा की इच्छा के विपरीत कार्य करने वाले की हानि होती है । अतएव आओ हम और तुम दोनों मिलकर कुश्ती लड़ें और महाराज को प्रसन्न करें । श्रीभगवान् ने कहा– चाणूर हम भी महाराज के वनवासी प्रजा हैं । अतएव हमें भी इनको प्रसन्न करना चाहिए । हम दोनों बालक हैं अतएव हम अपनी ही उम्र के बालकों के साथ कुश्ती लड़ेंगे । ऐसा करने से दर्शकों को अन्याय समर्थन का पाप भी नहीं लगेगा । चाणूर ने कहा कि आप दोनों न तो बालक हैं और न किशोर, आप दोनों ने खेल-खेल में कुवलयापीड जैसे हाथी को मार डाला; अतएव आप दोनों वीराग्रगण्य हो । अतएव आप हमारे साथ कुश्ती लड़ें बलरामजी के साथ मुष्टिक लड़ेगा ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तैंतालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

चौवालिसवाँ अध्याय

चाणूर मुष्टिक आदि पहलवानों तथा कंस का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने कहा– उपयुक्त प्रकार से चाणूर के कहने पर भगवान् ने चाणूर और मुष्टिक का बध करने का निश्चित संकल्प कर लिया और दोनों जोड़ों में कुश्ती प्रारम्भ हो गयी । भगवान् श्रीकृष्ण चाणूर से लड़ने लगे और बलरामजी मुष्टिक से । एक दूसरे आपस में अनेक प्रकार का दावपेंच कर रहे थे । उस दंगल को देखने के लिए नगर की महिलाएँ भी आयी थी । उन सबों ने देखा कि सुन्दर सुकुमार दो बच्चों को दो व्रजकर्कश शरीर वाले पहलवानों से लड़ाया जा रहा है तो वे सब कहने लगीं यहाँ तो सरासर अन्याय हो रहा है । इस सभा

में इस अन्याय का कोई भी विरोध नहीं कर रहा है । अतएव इस दंगल को देखने वालों को पाप अवश्य लगेगा । हमलोगों को यहाँ से चला जाना चाहिए । देखो भगवान् श्रीकृष्ण के मुखड़े पर आया हुआ पसीना कितना सुन्दर लग रहा है ।

पुण्या बत ब्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग,
गूढः पुराणपुरुषो वन चित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयश्च वेणुं,
विक्रीडयाञ्चतिगिरित्र रमार्चितांघ्रिः ।।

(भा० १०/४४/१३)

सच पूछो तो व्रजभूमि ही परम पवित्र एवं धन्य है; क्योंकि वहाँ ये पुरुषोत्तम मनुष्य के रूप में छिपकर निवास करते हैं । जिनके चरणों की अर्चना भगवान् शंकर और लक्ष्मीजी करती हैं, वे ही प्रभु वहाँ रंग-बिरंगे वनपुष्पों की माला धारण करते हैं तथा बलरामजी के साथ बाँसुरी बजाते हुए, गायों को चराते हुए तथा विभिन्न प्रकार की क्रीड़ा करते हुए विचरण करते हैं । इनके रूपमाधुर्य का दर्शन करने वाली गोपियाँ बड़ी ही पुण्यवान हैं । इस प्रकार से वे सभी महिलाएँ श्रीभगवान् के सौन्दर्य तथा गोपियों के सौभाग्य का वर्णन कर रही थीं। उसी समय भगवान् ने निश्चय किया कि अब चाणूर को मार डालना है । महिलाओं की बातें सुनकर वसुदेव और देवकी को बड़ा कष्ट हो रहा था । भगवान् का शरीर वज्र के समान कठोर हो गया । उनके शरीर के रगड़ से चाणूर का नस-नस ढीला पड़ने लगा। उसने दौड़कर भगवान् की छाती में दोनों मुक्कों से प्रहार किया । किन्तु भगवान् ने उसके दोनों हाथों को पकड़कर अन्तरिक्ष में कई बार घुमाया और अन्त में पृथिवी पर पटक दिया । चाणूर मर चुका था उसके वस्त्र और केश अस्त-व्यस्त हो गये थे । इसी प्रकार मुष्टिक ने भी बलराम जी की छाती में मुक्का मारा। किन्तु बलरामजी ने उसको एक ऐसा तमाचा मारा कि वह कटे वृक्ष के समान पृथिवी पर खून उगलते हुए गिर पड़ा और मर गया । उसके बाद कूट नामक पहलवान आया । उसे बलरामजी ने उपेक्षा पूर्वक बायें हाथ से एक घूसा और वह मर गया । भगवान् श्रीकृष्ण ने शल का सिर पैर की ठोकर से मारकर धड़ से अलग कर दिया और तोशल को चीर कर फेंक दिया । बचे हुए पहलवान अपनी

जान बचाने के लिए वहाँ से भाग गये । इसके पश्चात् बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् अपने समवयस्क ग्वाल-बालों के साथ कुश्ती की क्रीड़ा नाच-नाच कर करने लगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण की यह दंगल देखकर साधु पुरुष तो धन्य-धन्य करने लगे; किन्तु कंस को बड़ा ही कष्ट हुआ । उसने सारे बाजे-गाजे बन्द करवा दिया और अपने अनुचरों को आज्ञा दिया कि इन दुश्चरित्र दोनों लड़कों को मथुरा से भगा दो । नन्द को कैद कर लो और गोपों का सारा धन छीन लो । दुर्बुद्धि वसुदेव को मार डालो । मेरे पिता को भी मत छोड़ो उसे भी मार डालों ।

इस प्रकार से कंस जब बड़-बड़ा रहा था, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो गये और अत्यन्त शीघ्रता से कूदकर कंस के मंच पर पहुँच गए । भगवान् श्रीकृष्ण को सामने आया हुआ देखकर कंस ने सिंहासन से उठकर तलवार और ढाल उठा लिया और भगवान् पर आक्रमण करने का अवसर खोजते हुए पैतरा बदलने लगा । किन्तु भगवान् ने बड़ी आसानी से उसे उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे गरुड़ छोटे साँप को पकड़ लेता है । उस समय कंस का मुकुट उसके सिर से गिर पड़ा । श्रीभगवान् ने कंस को पृथिवी पर पटक दिया और उसके ऊपर स्वयं कूद पड़े । उस समय कंस मर चुका था । भगवान् श्रीकृष्ण उसके मृत शरीर को पृथिवी पर उसी प्रकार घसीटने लगे जिस प्रकार सिंह मृत हाथी के शरीर को घसीटता है । उस समय सब लोग हाय-हाय करने लगे ।

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपन् श्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यः तदेव रूपं दुरवापमाप ।।
(भा० १०/४४/३९)

कंस नित्य निरन्तर बड़ी घबराहट के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का ही नित्य चिन्तन करता रहता था । वह खाते-पीते, सोते-चलते, बोलते तथा श्वांस लेते समय सर्वदा चक्रायुधधारी श्रीभगवान् को ही अपने आगे देखते रहता था । यद्यपि उसके परमात्मा के निरन्तर साक्षात्कार का कारण द्वेषभावना ही थी फिर भी उसे भगवान् के उसी रूप की प्राप्ति हुई जिसकी प्राप्ति योगियों के लिए भी दुर्लभ होती है । कंस के छोटे आठ भाई थे । वे कंस का वध होते देखकर बलरामजी पर टूट

पड़े । उन्हें युद्ध के लिए आते हुए देखकर बलरामजी परिघ लेकर उन सबों का वध कर डाले । उस समय आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं; देवता पुष्पों की वर्षा करने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । कंस की पत्नियाँ विलाप करने लगीं । श्रीशुकदेव जी ने कहा–

राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ।
यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ।।
(भा० १०/४४/४९)

भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत् के जीवनदाता हैं । उन्होंने राजा की पत्नियों को आश्वासन दिया । इसके पश्चात् मरने वालों का जैसा क्रिया-कर्म होता है उसे कराया । श्रीभगवान् उसके पश्चात् जेल में जाकर अपने माता-पिता को बन्धन मुक्त किये तथा उनके पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किये ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का चौवालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पैंतालिसवाँ अध्याय

बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् का यज्ञोपवीत संस्कार तथा गुरुकुल में प्रवेश

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने देखा कि मेरे माता-पिता मुझे ईश्वर समझकर मेरा आलिङ्गन नहीं कर रहे हैं । उन्होंने उन्हें मोहित करने के लिए अपनी योगमाया को प्रेरित किया और कहा कि पिताजी, माताजी हम आपके पुत्र हैं कंस के भय से हम आपसे अलग रहे और आपकी कोई भी सेवा नहीं कर सके माता-पिता के ऋण से कोई भी व्यक्ति उऋण नहीं हो सका । मैं आपकी सेवा नहीं कर सका इसके लिए मुझे खेद है । इस प्रकार से श्रीभगवान् कह रहे थे कि देवकी और वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण और बलरामजी को अपनी गोद में उठाकर हृदय से लगा लिया । अपने माता-पिता को इस प्रकार से सान्त्वना देकर

भगवान् श्रीकृष्ण ने उग्रसेनजी को यदुवंसियों का राजा बना दिया और कहा कि हम यदुवंशियों को राज्य सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं है; अतएव आप राजा हैं । मैं सिर झुकाकर आपकी सेवा करता रहूँगा तो देवता भी उपहार लाकर आपको प्रदान करेंगे । जो यदुवंशी तथा वृष्णिवंशी इत्यादि कंस के भय से दूर भागकर कष्टपूर्वक इधर-उधर अपना जीवन बिता रहे थे, उन सबों को श्रीभगवान् ने ढूँढ़-ढूँढ़ कर बुलाया तथा सबों को अतुल सम्पत्ति प्रदान करके उन्हें समृद्ध बना दिया । अब वे सब अपने-अपने घरों में सुखपूर्वक रहने लगे थे । सब लोग सुखी और सानन्द थे ।

इसके पश्चात् श्रीभगवान् नन्द बाबा तथा गोपों के पास गये और कहे कि बाबा आपने तथा यशोदा मैय्या ने हम दोनों को बड़े स्नेह पूर्वक पाला है वस्तुतः आप ही हमारे माता-पिता हैं । किन्तु इस समय यहाँ की परिस्थिति यह है कि इन गोपों के साथ आप व्रज चलें, यहाँ के लोगों को कुछ दिन तक व्यवस्थित करके मैं आप लोगों के पास आऊँगा । इस तरह श्रीनन्द बाबा तथा गोपों को समझा-बुझा कर भगवान् ने उन्हें अनेक प्रकार का उपहार दिया और बड़े ही स्नेह से गोकुल विदा किया । नन्द बाबा ने दोनों भाइयों को गले से लगा लिया और व्रज के लिए प्रस्थान किया ।

इसके पश्चात् वसुदेवजी ने गर्गाचार्य से बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार कराया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् श्रीबलरामजी के साथ विद्याध्ययन करने के लिए संन्दीपनी मुनि के आश्रम में अवन्तिकापुरी आए । आचार्य संदीपनि मुनि की ये दोनों भाई प्रेम पूर्वक सेवा करते थे तथा आचार्य के एक बार कहने पर ही उस विद्या को धारण कर लेते थे । उन्होंने समस्त विद्याओं का अध्ययन थोड़े ही दिन में कर लिया । श्रीभगवान् ने चौसठ दिनों में चौसठ कलाओं की शिक्षा प्राप्त कर ली । अन्त में उन्होंने आचार्य से गुरुदक्षिणा माँगने को कहा तो—

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ।
संम्मन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयाम्बभूव ।।
(भा० १०/४५/३७)

श्रीसन्दीपनि मुनि ने श्रीभगवान् एवं बलरामजी की अद्भुत

महिमा का अनुमान कर लिया था । उन्होंने समझ लिया था कि इन दोनों लोगों की बुद्धि अतिमानुष है । इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी से सलाह करके यह गुरुदक्षिणा माँगा कि हमारा पुत्र प्रभास क्षेत्र में मर चुका है, उसे ला दें । उन दोनों भाइयों ने उसे स्वीकार किया और रथ पर चढ़कर समुद्रतट पर जाकर क्षण भर बैठे उतने में समुद्र ने उनकी भली-भाँति पूजा की । श्रीभगवान् ने समुद्र से कहा कि तुम अपनी तरङ्गों में हमारे गुरु पुत्र को बहा ले गये थे उसे लाकर दे दो ।

समुद्र ने कहा– प्रभो ! हमारे भीतर एक पञ्चजन नामक राक्षस रहता है; वहीं ले गया होगा । भगवान् समुद्र के भीतर जल में जाकर उस राक्षस को मारकर देखे तो उसके पेट में वह बालक नहीं था। उसके अङ्ग से उत्पन्न शंख को लेकर भगवान् अपने रथ पर आये और यमराज की संयमनीपुरी में जाकर शंख बजाए । उस आवाज को सुनकर यमराज आये तथा दोनों भाइयों की उन्होंने पूजा की और आने का प्रयोजन पूछा ।

श्रीभगवान् ने कहा– यहाँ पर अपने कर्मों के बन्धन के कारण मेरे गुरु का पुत्र लाया गया है । आप उसके कर्म पर ध्यान न दें । मेरी आज्ञा से उसे लाकर मुझे दें । यमराज ने उस बालक को लाकर श्रीभगवान् को दे दिया। भगवान् भी उस बालक को लाकर सन्दीपनी मुनि को दे दिये और कहे प्रभो ! और कोई वरदान माँगना हो माँग लें। आचार्य सन्दीपनि मुनि ने कहा आप लोगों ने मुझे अच्छी तरह से गुरुदक्षिणा प्रदान कर दी है । मेरी सारी इच्छा पूर्ण है । अब आप लोग मथुरा लौट जायँ । आप दोनों की विद्या सदा अयातयाम बनी रहे । श्रीकृष्ण और बलरामजी को बहुत दिनों से नहीं देखने के कारण मथुरा की प्रजा दुःखी थी । उन दोनों भाइयों को देखकर सब लोग प्रसन्न हो गए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

छियालिसवाँ अध्याय

उद्धवजी की व्रज-यात्रा

श्रीशुकदेवजी ने कहा– उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रिय मित्र थे तथा वृहस्पतिजी के साक्षात् शिष्य थे । वे वृष्णिवंशियों में प्रधान पुरुष थे । वे भगवान् के मंत्री भी थे । एक दिन श्रीभवान् ने बड़े प्रेम से उद्धवजी का हाथ पकड़कर कहा– उद्धवजी आप यहाँ से गोकुल जाओ । मेरे नन्द बाबा और यशोदा माता को आनन्दित करो और गोपियों को सान्त्वना प्रदान करो । मैं जब से मथुरा आ गया हूँ गोपियाँ बहुत दुःखी हैं । गोपियों ने मेरे लिए अपने सारे सांसारिक सबन्धों का परित्याग कर दिया है । वे मुझको ही अपनी आत्मा मानती हैं । वे मेरी विरह की व्यथा में दुःखी रहती हैं अतएव जाकर आप उन्हें सान्त्वना प्रदान करो ।

इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेशं भर्तुरादृतः ।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ।।
प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ ।
छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ।।
(भा० १०/४६/७-८)

परीक्षित् ! अपने स्वामी का संदेश लेकर तथा उनका आदेश पाकर उद्धव जी रथ पर सवार हुए तथा नन्द गोकुल के लिए प्रस्थान किए । वे जब नन्द व्रज में पहुँचे तब सूर्यास्त हो रहा था । उस समय वन से गायें लौट रही थीं । गायों के खुरों से इतनी धूल उड़ रही थी कि उद्धवजी का रथ ही ढँक गया । गायें अपने बछड़ों की ओर दौड़ रही थीं । गायें दुही जा रही थीं । कोई वाँसुरी बजा रहा था । गोपी तथा गोप भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के चरित्रों का गान कर रहे थे । घरों में दीपक जल रहे थे और हर ओर से धूप की सुगन्धि आ रही थी । उस समय वन में हंस आदि पक्षी विहार कर रहे थे ।

नन्दजी ने जब जाना कि श्रीकृष्ण के मित्र उद्धवजी आये हैं तो

वे उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए । भोजन करने के बाद गोपों ने उनके पैरों को दबाकर उनकी थकान दूर की । इसके पश्चात् नन्द बाबा ने सर्वप्रथम वसुदेवजी का कुशल पूछा फिर उन्होंने कहा–

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।
गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ।।
(भा० १०/४६/१८)

क्या श्रीकृष्ण कभी हम लोगों को भी याद करते हैं ? क्या उन्हें अपनी माँ यशोदा जी, अपने मित्रों, सखाओं तथा गोपों की भी याद आती है ? ये सभी व्रजवासी श्रीकृष्ण को ही अपनी आत्मा तथा अपना स्वामी मानते हैं । क्या उन्हें अपनी गायों की, वृन्दावन की तथा गोवर्धन पर्वत की भी याद आती है ? क्या वे कभी यहाँ पर आयेंगे कि हमलोगों भी उनको देख सकेंगे ? श्रीकृष्ण का हृदय उदार है । उन्होंने अपनी अनन्त शक्ति के प्रभाव से हम लोगो की अनेक बार रक्षा की है । हम लोगों को सदा श्रीकृष्ण की ही याद आती रहती है । इसीलिए कोई भी काम नहीं हो पाता है । उनके द्वारा किया गया गोवर्धन धारण, गौओं का चारण, राक्षसों का विनाश, दावाग्नि का पान कालिय नाग का दमन, ये सब-के-सब चरित्र हम सबों को सर्वदा याद आते रहते हैं ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि श्रीनन्दबाबा एक के बाद एक भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन प्रेम पूर्वक कर रहे थे । उनका गला रुँधा हुआ था । वहीं बैठी हुई यशोदा माता के आँखों से अश्रु की तथा स्तनों से दूध की धारा बह रही थी । उद्धवजी सोच रहे थे कि इन लोगों का भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति कितना गाढ़ा अनुराग है ?

उद्धवजी ने कहा– निश्चय ही आप लोग बड़े भाग्यवान हैं । भगवान् श्रीकृष्ण तो कारण पुरुष हैं वे तो सम्पूर्ण जगत् के उपादान और निमित्त कारण दोनों हैं । श्रीबलरामजी सम्पूर्ण जगत् का नियमन करने वाले साक्षात् संकर्षण हैं । मृत्युकाल में इन दोनों भाइयों का स्मरण करके मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ, नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ।
भावं निधत्तां नितरां महात्मन् किं वाव शिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ।।
(भा० १०/४६/३३)

भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत् की आत्मा और परम कारण हैं पृथिवी का भार उतारने के लिए वे मानव शरीर धारण करके पृथिवी पर अवर्तीण हुए हैं । उन दोनों भाइयों के प्रति आपका जो इतना सुदृढ़ अनुराग है तो आपके लिए कौन सा शुभकार्य शेष रह गया है । वे थोड़े ही दिनों में व्रज में आयेंगे और आप दोनों को बाबा और माँ कहकर बुलायेंगे । वे व्रज आने का आपको आश्वासन दे चुके हैं । वे अपनी बात सत्य करेंगे । आप दोनों परम सौभाग्यशाली हैं । वे तो सबों को समानदृष्टि से देखते हैं । उनके सब अपने हैं पराया कोई नहीं है । वे तो सन्तों की रक्षा करने के लिए पृथिवी पर अवतार लेते हैं । सारा जगत् उनका शरीर है । वे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं ।

इस तरह से उद्धवजी विस्तार के साथ नन्दजी से बातें कर ही रहे थे कि प्रातःकाल हो गया । गोपियाँ जग गयीं । उन लोगों ने दधिमन्थन का कार्य करना प्रारम्भ किया और श्रीभगवान् की लीलाओं का गायन भी ।

उदगायतीनामरविन्दलोचनं ग्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितः निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ।।
(भा० १०/४६/४६)

गोपियाँ दधिमन्थन काल में कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्रों का गान कर रही थीं । दधिमन्थन ध्वनि के साथ मिलकर उनका वह संगीत और अद्भुत हो गया । वह ध्वनि स्वर्गलोक तक पहुँच गयी। वह स्वर लहरी दिशाओं में फैलकर दिशाओ के अमङ्गल को नष्ट कर दी । प्रातःकाल गोपियों ने नन्द बाबा के दरवाजे पर खड़ा सुवर्ण के रथ को देखकर कहने लगीं, इस बार फिर वही अक्रूर आया है जो हमारे श्याम-सुन्दर को हमसे दूर ले गया । इस तरह से गोपियाँ कह रही थीं कि उद्धवजी नित्य-कृत्य से निवृत्त होकर आ गये ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
छियालिसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

सैंतालीसवाँ अध्याय

भ्रमरगीत

श्रीशुकदेवजी ने कहा– उन्होंने देखा कि उद्धवजी की आकृति भगवान् श्रीकृष्ण से विल्कुल मिलती-जुलती है । उनके कमल के समान नेत्र थे तथा वे पीताम्बर धारण किए हुए थे । उद्धवजी को देखकर गोपियों ने जानना चाहा कि ये कौन हैं ? यहाँ कैसे आये हैं ? इस तरह वे सबके-सब उद्धवजी को घेर कर खड़ी हो गयीं । उन सबों ने जब यह जाना कि ये भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर हमारे पास आये हैं तो उन सबों ने उद्धवजी को एकान्त में ले जाकर उन्हें आसन पर बैठाया उनका सत्कार किया और कहने लगीं–

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ।
भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ।।
अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ।
स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ।।

(भा० १०/४७/४-५)

हम लोग जानती हैं कि आप यदुनाथ के पार्षद हैं और उन्हीं का सन्देश लेकर यहाँ आये हैं । आपके स्वामी ने आपके अपने माता-पिता को सुख देने के लिए यहाँ भेजा है । अन्यथा हमें तो अब इस नन्दग्राम में गौओं के रहने की जगह में उनके स्मरण करने योग्य कोई भी वस्तु नहीं दिखायी देती है । अपने बान्धवों और माता-पिता के स्नेह का बन्धन तो बड़े-बड़े मुनिजन भी नहीं त्याग पाते हैं । दूसरों के साथ जो प्रेम होता है वह तो किसी न किसी स्वार्थ के लिए होता है । वह प्रेम नहीं प्रेम का स्वांग होता है । वेश्या जब देखती है कि मेरे यहाँ आने वाले पुरुष के पास धन नहीं है तो वह उसका सम्मान नहीं करती है । राजा को रक्षा करने में असमर्थ जानकर प्रजा उसका साथ छोड़ देती है । जब वृक्षों में फल नहीं रह जाता तो पक्षी वहाँ से उड़ जाते हैं । भोजन कर लेने के पश्चात् अतिथि भी चले जाते हैं ।

स्त्री के हृदय में कितना भी प्रेम हो जार पुरुष अपना काम बना लेने के पश्चात् उसकी ओर देखता भी नहीं है । गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रेम में तल्लीन थीं, वे विरह व्याकुल थीं अतएव किसके साथ क्या कहना चाहिए इस बात का भी उन्हें ख्याल नहीं रह गया था । चर्चा करते करते-करते वे एक बार रोने लगीं। उन सबों ने भगवान् की सारी लीलाओं का गान करना प्रारम्भ कर दिया । एक गोपी भगवान् के मिलन-लीला को याद कर रही थी उस समय उसने एक भौंरे को देखा। उसे लगा कि मुझे रूठी हुई जानकर मुझे मनाने के लिए श्रीकृष्ण ने इस भौंरे रूपी दूत को भेजा है । और वह गाने लगी–

मधुप कितवबन्धो मास्पृशंघ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमाला कुंकुमश्मश्रुभिर्नः ।
बहतु मधुपतिस्तन् मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ।।

(भा० १०/४७/१२)

मधुप तू तो कपटी का सखा है । अतएव तू भी कपट करने वाला है । तुम मेरे पैरों को मत छूओ । झूठे प्रणय करके मुझसे अनुनय विनय मत करो । मैं देख रही हूँ कि श्रीकृष्ण की जो बनमाला हमारी सौतों के वक्षस्थल के स्पर्श से मसली हुई है उसका पीला-पीला पराग तुम्हारी मूँछ पर भी लगा है । तुम स्वयं भी तो किसी पुष्प से वास्तविक प्रेम नहीं करते हो । अब श्रीकृष्ण मथुरा की ही मानिनियों को मनाने का काम करें । उनका यह कुंकुम रूपी कृपा प्रसाद जो यदुवंशियों की सभा में उपहास करने योग्य है, वे अपने ही पास रखें, उसको तुम्हारे माध्यम से यहाँ भेजने की क्या आवश्यकता है ? वे और तुम दोनों तो काले ही हो । उन्होंने भोली-भाली गोपियों को एक बार अपने अधरों का सुधा रस पिलाया और फिर हमें त्यागकर मथुरा चले गये। न जाने सुकुमारि लक्ष्मी उनके चरणों की सेवा कैसे करती हैं ? भ्रमर चितचोर श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन हम लोगों के समक्ष मत करो । उनको हम लोग अच्छी तरह से जानती हैं । अब तुम्हारी चाल नहीं चल सकती है । अब तुम मथुरा की मनिनियों के सामने उनके गुणों का वर्णन करो, यहाँ नहीं । इस तरह से गोपियों ने उलाहना भरे स्वर में ग्यारह श्लोकों में भ्रमर गीत गाया ।

उद्धवजी ने अनुभव किया कि गोपियाँ श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए लालायित हैं । उन्होंने उन्हें उनके प्रियतम का सन्देश सुनाया और कहने लगे– गोपियों ! तुम लोगों का जीवन धन्य हो गया है । तुमलोगों ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है। आप लोगों का पूजन संसार करेगा । आपकी भगवान् की भक्ति बड़े-बड़े ऋषियों के लिए भी आदर्श बनेगी । आपलोगों ने संसार के समस्त संबन्धों का परित्याग करके श्रीभगवान् को पति के रूप में वरण किया है, यह बड़े ही सौभाग्य की बात है । देवियों ! आपके प्रियतम ने आपके पास जो सन्देश भेजा है उसे आप लोग सुनें ।

श्रीभगवान् ने कहा– गोपियों मैं सम्पूर्ण जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण हूँ । मैं सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हूँ । मैं सदा आप लोगों के साथ हूँ । आत्मा तो माया और माया के कार्यों से भिन्न है। यह ज्ञान स्वरूप है तथा पूर्ण रूप से शुद्ध है । आपलोग समझें; यह सारा संसार स्वप्न की भाँति है, क्षणभंगुर है । इसलिए सांसारिक भोगों का परित्याग करके सदा मेरा चिन्तन करना चाहिए । जिस तरह सारी नदियाँ आकर समुद्र में ही मिलती हैं उसी तरह समस्त साधनों का एकमात्र लक्ष्य मेरी प्राप्ति ही है । यद्यपि मैं आप लोगों का सर्वस्व हूँ फिर भी आपलोगों से इतना दूर इसलिए रहता हूँ कि आपलोग निरन्तर हमारा चिन्तन करती रहो । ऐसा करके आप लोग सदा-सदा के लिए मुझे प्राप्त हो जाओगी ।

या मया क्रीडिता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज अस्थिताः ।
अलब्धरासा कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ।।
(भा० १०/४७/३७)

कल्याणियों ! जिस समय मैंने शरद् पूर्णिमा की रात्रि में रासक्रीड़ा की थी उस समय जो गोपियाँ स्वजनों के रोकने के कारण रास-क्रीड़ा में सम्मिलित नहीं हो पायी थीं, वे सब मेरी लीलाओं का स्मरण करके मुझे प्राप्त हो गयीं । श्रीभगवान् के सन्देश को सुनकर गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं और वे श्रीभगवान् की एक-एक लीला का स्मरण करने लगीं। गोपियों ने उद्धवजी से कहा– यह बड़ी अच्छी बात है कि पापी कंस मारा गया । भगवान् श्रीकृष्ण के बन्धु-बान्धव सकुशल और आनन्द पूर्वक हैं । किन्तु एक बात बतलाएँ कि जिस

तरह हम लोग श्रीकृष्ण से प्रेम करतीं थीं उसी प्रकार मथुरा की भी नारियाँ उनसे प्रेम करती है? इसके पश्चात् तो भिन्न-भिन्न गोपियों ने श्रीकृष्ण और उनके प्रेम के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार का मनोभाव प्रकट किया । गोपियों ने उद्धवजी को भगवान् के क्रीडास्थल को दिखाया, रासस्थली को दिखाया तथा उनको अपने मनोभावों के विषय में बतलाया । उन सबों ने कहा– हमारे तो एकमात्र जीवनधन श्रीकृष्ण हैं । वे अवश्य हमारा उद्धार करेंगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण के सन्देश को सुनकर गोपियों की विरह व्यथा कम हो गयी थी । अब वे उद्धवजी का बहुत सत्कार कर रही थीं । श्रीभगवान् की लीला कथाओं का अनुभव करते हुए उद्धवजी व्रज में कई महीने रह गये । वे गोपियों का श्रीभगवान् में प्रेम देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा गोपियों को नमस्कार करते हुए गाने लगे ।

एताः परं तनुभृतो भुविगोपबध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रुढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भुवि भियो मुनयो वयं च
किं व्रह्मजन्मभिरनन्तकथा रसस्य ।।
(भा० १०/४७/५८)

इस पृथिवी पर केवल गोपियों का ही शरीर धारण करना सफल है; क्योंकि ये सबके-सब सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के ही महाभावों में स्थित हैं । प्रेम की यह ऊँची स्थिति संसार भय से भयभीत केवल मुमुक्षु पुरुषों के ही लिए नहीं अपितु बड़े-बड़े मुनियों तथा हम भक्तजनों के लिए भी वाञ्छनीय है । अभी तक हमलोगों को इस महाभाव की प्रप्ति नहीं हो पायी है । जिस व्यक्ति को भगवान् श्रीकृष्ण के लीला कथा का रस मिल गया है उसे कुलीनता की या द्विजाति संस्कार की क्या आवश्कता है ? तथा जो श्रीभगवान् की कथा रस का रसिक नहीं है; उसे ब्रह्मा का भी जन्म प्राप्त करने से कया लाभ है ? इन वनवासी गोपियों का भी भगवान् श्रीकृष्ण में अनन्य प्रेम है । जैसे अन्जाने में भी अमृत पी लेने वाला व्यक्ति अमर हो जाता है । उसी तरह परमात्मा का स्वरूप को जाने बिना भी यदि कोई उनका भजन करता है तो वह उनकी कृपा का पात्र हो ही जाता है ।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

उद्धवजी कहते हैं कि मेरा यह सबसे बड़ा सौभाग्य होगा कि मैं इस वृन्दावन की कोई गुल्म अथवा लता बन जाऊँ । इससे मुझे इन गोपियों के चरणों की धूलि का निरन्तर सेवन करने का अवसर तो मिल जायेगा । इससे मैं धन्य हो जाऊँगा । जिन सम्बन्धों को छोड़ना बड़ा कठिन है इन गोपियों ने अपने उन समस्त बन्धनों तथा वैदिक मर्यादाओं का परित्याग कर दिया और श्रीभगवान् की पदवी को प्राप्त कर लिया । ये श्रीभगवान् में ही तन्मय हो गयीं, भगवान् का परम प्रेम प्राप्त कर लिया । श्रुतियाँ तो श्रीभगवान् की वाणी ही हैं किन्तु उन्हें भी आज तक श्रीभगवान् का परम प्रेम नहीं पाप्त हो सका । वे भी अब तक उन्हें ढूँढ ही रही हैं । गोपियों का परम कृतज्ञ बनकर उद्धवजी ने उनसे विदा लिया और रथ पर सवार हुए । जब उद्धवजी व्रज से बाहर आये तो नन्दजी इत्यादि गोप मथुराधिप के लिए उपहार समर्पित करके कहने लगे कि हम मोक्ष नहीं चाहते हैं हम यही चाहते हैं कि जब जहाँ कहीं भी हम रहें हमारा मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहे । हम भगवान् श्रीकृष्ण की ही भक्ति करते रहें । इसके पश्चात् उद्धवजी ने सबों से विदा लिया । वे मथुराधिप उग्रसेनजी को तो गोपों द्वारा प्रदत्त उपहार समर्पित किए और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी का उनके प्रति गोपियों के प्रेम की गाथा सुनाए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
सैतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का कुब्ज तथा अक्रूरजी के घर जाना

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा– भगवान् श्रीकृष्ण तो सब कुछ जानने वाले हैं । उन्हें कुब्जा की कामना की याद आयी और वे उसके घर गये । कुब्जा का घर अत्यन्त समृद्ध साधनों से सजा हुआ था । उसमें श्रृंगार रस को उद्दीपित करने वाले साधन भरे पड़े थे । धूप की सुगन्धि आ रही थी । कुब्जा ने देखा भगवान् श्रीकृष्ण उसके घर आ रहे हैं । वह सखियों के साथ उठ खड़ी हुई । श्रीभगवान् को बहुमूल्य आसन पर उसने बैठाया और उनकी पूजा की । कुब्जा ने उद्धवजी की भी पूजा की और उन्हें आसन दिया; किन्तु उन्होंने उसके दिए हुए आसन को हाथ से स्पर्श किया और अपने स्वामी के समक्ष आसन पर बैठना उचित न समझकर भूमि पर ही बैठ गये । इसके पश्चात् कुब्जा सज-धज कर श्रीभगवान् के समझ आयी । भगवान् ने उसका हाथ पकड़कर अपने साथ बैठा लिया । कुब्जा ने भगवान् का आलिंगन किया और भगवान् भी उसके साथ क्रीड़ा करने लगे । कुब्जा का सारा सन्ताप समाप्त हो गया । उसके हृदय को शान्ति मिल गयी थी । उसने श्रीभगवान् से कहा प्रभो ! आप यहीं कुछ दिन तक निवास करें और मेरे साथ क्रीड़ा करें । मैं आपका साथ नहीं छोड़ सकती। भगवान् ने उसको अभिलषित वर प्रदान किया । इसके पश्चात् वे उद्धवजी के साथ अपने घर लौट आये ।

इसके पश्चात् एक दिन श्रीभगवान् श्रीबलरामजी तथा उद्धवजी के साथ अक्रूरजी के घर गये । अक्रूरजी ने उन्हें दूर से आते हुए देख लिया था । वे आगे आये और श्रीभगवान् का अभिनंदन करके उनका अलिङ्गन किए । सब लोगों के बैठ जाने पर अक्रूरजी ने उन लोगों की पूजा की । इसके पश्चात् विनयावनत होकर उन्होंने श्रीभगवान् से कहा–

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ।
भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्रात् दुरन्ताच्च समेधितम् ।

युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ।
भवद्भ्यां न विना किञ्चित् परमस्ति न चापरम् ।।
(भा० १०/४८/१७-१८)

प्रभो ! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया । उसे मार कर आप दोनों ने इस यदुवंश को बहुत बड़े संकट से बचा लिया तथा इसे उन्नत एवं समृद्ध किया । आप दोनों जगत् के कारण और जगत् स्वरूप हैं । आप आदि पुरुष हैं । आपके अतिरिक्त कोई भी कारण अथवा कर्म नहीं है । आप इस सम्पूर्ण जगत् में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हैं । यह सारा जगत् आपका शरीर है और आप इसकी आत्मा हैं । आप ही जगत् की सृष्टि करते हैं; इसका पालन करते हैं और संहार करते हैं । इस तरह से अक्रूरजी ने श्रीभगवान् की विस्तार के साथ स्तुति की । उन्होंने कहा–

दिष्ट्या जनार्दनभवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम्।।
(भा० १०/४८/२७)

प्रभो बड़े-बड़े योगेश्वर देवेश्वर भी आपके स्वरूप को नहीं जान सकते हैं किन्तु मुझे आपका साक्षात् दर्शन हो गया है । यह मेरे परम सौभाग्य की बात है । प्रभो ! हम स्त्री, पुत्र, धन, स्वजन, गेह तथा देह आदि के मोह की रस्सी से बँधे हुए हैं । यह आपकी माया का खेल है । आप कृपा करके मेरे इस दृढ-बन्धन को काट दीजिए । इसके पश्चात् श्रीभगवान् उन्हें अपनी मधुर वाणी से मोहित करते हुए कहने लगे । अक्रूरजी आप हमारे हितोपदेशक और चाचा हैं । हम तो आपके बालक हैं । आप तो सन्त हैं तथा सेव्य हैं । अतएव देवताओं से भी बढ़कर हैं ।

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।।
(भा० १०/४८/३१)

केवल जल के तीर्थ ही तीर्थ नहीं है, केवल मिट्टी तथा पत्थर की बनी मूर्तियाँ ही देवता नही हैं, उनकी बहुत दिनों तक जब श्रद्धा पूर्वक सेवा की जाय तब वे पवित्र करते हैं । किन्तु सन्त पुरुष तो केवल देखकर ही किसी को पवित्र कर देते हैं । आप हमारे हितैषीं हैं; आप पाण्डवों का कुशल जानने के लिंए हस्तिनापुर जाइये । पाण्डु के मर

जाने के बाद उनको कुन्ती ने बड़े कष्ट से पाला है । धृतराष्ट्र राजा हैं। वे अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधन के वशवर्ती हैं अतएव वे अपने पुत्रों के समान उनके साथ व्यवहार नहीं कर सकते हैं । आपसे उनका समाचार जानकर मैं उनके सुखपूर्वक रहने की व्यवस्था करूँगा ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

उनचासवाँ अध्याय

अक्रूरजी का हस्तिनापुर गमन

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि– श्रीभगवान् श्रीकृष्ण का आदेश प्राप्त कर अक्रूरजी हस्तिनापुर गये और वहाँ धृतराष्ट्र भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाह्लीक, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य इत्यादि से भेट करके उन लोगों से उनका समाचार पूँछे । इसके पश्चात् धृतराष्ट्र का पाण्डवों के प्रति व्यवहार जानने के लिए कुछ दिन तक वे हस्तिनापुर में ही रुक गये । वहाँ रुककर उन्होंने जान लिया कि धृतराष्ट्र में आत्मबल नहीं है । इसीलिए उन्हें अपने दुर्योधन इत्यादि दुष्ट पुत्रों तथा शकुनी इत्यादि के कहने के अनुसार ही चलना पड़ता है । वे पाण्डवों के साथ अपने पुत्रों जैसा व्यवहार नहीं कर पाते हैं । दुर्योधन इत्यादि ने पाण्डवों के साथ अनेक प्रकार का अत्याचार किया; है वे वहाँ रहकर इन सारी बातों को वे जान गये । एक दिन अक्रूरजी कुन्ती से मिलने के लिए गये तो कुन्ती उनके पास बैठ गयी । उसे अपने मैके की याद आ गयी। कुन्ती ने कहा महाराज पाण्डु के मरने के पश्चात् तो मेरे बच्चे अनाथ हो गये हैं । कौरव इनकी विनम्रता, शस्त्र-कुशलता आदि को देखकर जलते हैं। अनेक प्रकार का उन सबों ने अत्याचार भी किया। किन्तु मैं क्या करूँ ? विवश हूँ । इस तरह बातें करती हुई कुन्ती को लगा कि उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हो गये और वे रोती हुई कहने लगीं–

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ।।

नान्यत् तव पदाम्भोजात् पश्यामि शरणं नृणाम् ।
विभ्यतां मृत्यु संसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ।।
(भा० १०/४९/११-१२)

भगवन् श्रीकृष्ण ! आप महायोगी हैं, सम्पूर्ण विश्व की आत्मा हैं तथा सम्पूर्ण विश्व को जीवन प्रदान करने वाले हैं । भगवन् मैं अपने पुत्रों के साथ दुःखी हूँ । आपके शरण में आयी हूँ । आप मेरी रक्षा कीजिए । प्रभो ! श्रीकृष्ण यह सारा संसार मृत्युमय है । आपके चरण तो संसार से मुक्ति दिलाने वाले हैं मैं देख रही हूँ कि जो लोग संसार से भयभीत हैं उनको अभय दिलाने वाला आपके चरणों को छोड़कर कोई भी दूसरा नहीं है । प्रभो ! आपको नमस्कार है । मेरी आप रक्षा करें।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि जिस समय कुन्तीजी इस प्रकार से रो रही थीं उस समय अक्रूरजी ने उन्हें उन पुत्रों के जन्मदाता देवताओं की याद दिलाया तथा उन्हें सान्त्वना प्रदान किया । इसके पश्चात् अक्रूरजी महाराज धृतराष्ट्र के पास आये और कहने लगे कि राजन् यह मानवशरीर तो क्षण-भंगुर है इससे यश एवं धन का अर्जन करना चाहिए । आपको अपने पुत्रों के प्रति पक्षपात नहीं करना चाहिए । आप राजा हैं आपके लिए कौरव और पाण्डव दोनों एक समान हैं । भेदभाव करने वाला राजा नरकगामी हो जाता है । इस पर धृतराष्ट्र ने कहा कि अक्रूरजी आपकी बातों को सुनकर तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है; किन्तु ये बातें मेरे हृदय में नहीं बैठती हैं । मैंने सुना है कि सर्वशक्तिमान श्रीभगवान् ने अवतार ग्रहण किया है । उनकी ही इच्छा के अनुसार संसार-चक्र चलता है । अतएव उनकी जैसी इच्छा होगी वैसा ही होगा ।

इस तरह अक्रूरजी राजा धृतराष्ट्र के अभिप्राय को जानकर मथुरा आये और पाण्डवों पर कौरवों द्वारा किए जाने वाले अत्याचार की कथा श्रीभगवान् को सुना डाले ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
पूर्वार्द्ध सम्पूर्ण हुआ ।

दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध

पचासवाँ अध्याय

जरासन्ध से युद्ध और द्वारका पुरी का निर्माण

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा– कंस की दो पत्नियाँ थीं– अस्ति तथा प्राप्ति । अपने पति के मरने के पश्चात् वे अपने पिता जरासंन्ध के राज्य में चली गयीं और अपना सारा कष्ट कह सुनाया । यह सुनकर जरासंध को बड़ा ही कष्ट हुआ । वह क्रोध से तिलमिला उठा और तेइस अक्षौहिणी की चतुरङ्गिणी सेना लेकर उसने मथुरा पुरी को घेर लिया । उसने मन में निश्चय किया कि मैं एक भी यदुवंशी को जीवित नहीं छोडूँगा । श्रीभगवान् ने देखा सभी मथुरा वासी डर गये हैं । उन्होंने सोचा यह अच्छा ही है कि इसने सभी पृथिवी के भार स्वरूप लोगों को इकट्ठा करके लाया है । मेरे अवतार का प्रयोजन भी पृथिवी के भार को हल्का करना है । इसलिए जरासंध को मारना ठीक नहीं । जरासंध जीवित रहेगा तो बार-बार पृथिवी को भारभूत राक्षसों को इकट्ठा करके लाता रहेगा ।

जिस समय श्रीभगवान् इस प्रकार से विचार कर रहे थे उसी समय आकाश से दो दिव्य रथ उतरे । उनमें युद्ध की सारी सामग्री भरी थी । श्रीभगवान् ने बलरामजी से कहा–

पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ।
एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ।।
यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात्स्वान् समुद्धर ।
एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ।।

(भा० १०/५०/१३-१४)

आप बड़े ही बलवान है । सम्पूर्ण यदुवंशी आपको ही अपना स्वामी मानते हैं । उन पर आज विपत्ति आयी है । देखिये यह आपका

रथ है तथा आपके प्रिय आयुध हल मूसल भी आ गये हैं । इस रथ पर सवार होकर आप शत्रुसेना का संहार करें तथा स्वजनों को इस विपत्ति से बचायें । प्रभो ! सज्जनों का कल्याण करने के ही लिए हम दोनों का अवतार हुआ है । इसके पश्चात् दोनों भाई रथ पर सवार होकर निकले । उनके पीछे एक छोटी से सेना भी थी । भगवान् ने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया । उसकी ध्वनि की सुनकर शत्रु की सेना घबरा गयी । भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर जरासंध ने कहा– तुम कमजोर और छोटे हो; अतएव मेरे साथ बलराम युद्ध करें । जरासंध की बातें सुनकर श्रीभगवान् ने कहा यदि शक्ति हो तो युद्ध करो । इसके पश्चात् जरासन्ध ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के रथ को तथा उनकी सेना को चारो ओर से ढंक लिया । विशाल सेना से ढँके भगवान् और बलरामजी का रथ भी नहीं दिखायी दे रहा था । भगवान् ने देखा कि हमारी सेना अत्यन्त दुःखी है । उस पर तीक्ष्ण आयुध का प्रहार शत्रु कर रहे हैं तब उन्होंने अपने शार्ङ्गर धनुष का टंकार किया।

इसके पश्चात् तो भगवान् इतनी तेजी से बाणों की वर्षा करने लगे कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । थोड़ी ही देर में श्रीभगवान् और बलरामजी ने जरासंध की सम्पूर्ण सेना को मार डाला । खून की नदियाँ बह चलीं । अन्त में अकेला जरासन्ध बच गया था । उसके रथ और आयुध विनष्ट हो गये थे । बलरामजी जब उसे वरुणपाश में बाँधने लगे तो श्रीभगवान् ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया । भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ने दया करके उसे जीवित छोड़ दिया । यह देखकर जरासंध को बड़ी ही लज्जा आयी कि श्रीकृष्ण और बलराम उसे जीवित छोड़ रहे हैं । उसने तपस्या करने का निश्चय किया; किन्तु बीच में उसके साथी राजाओं ने उसे समझाया कि यह तो दुर्भाग्यवश आपको पराजित होना पड़ा है । दुर्बल यदुवंशियों को तो आप बड़ी आसानी से पराजित कर सकते हैं । अतएव तपस्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है । इसके पश्चात् उदास जरासन्ध अपने देश मगध को चला गया ।

उस युद्ध में भगवान् की सेना का बाल भी बाँका नहीं हुआ और अथाह सागर के समान जरासन्ध की तेइस अक्षौहिणी की सेना विनष्ट हो गयी । उस समय सभी देवता श्रीभगवान् की प्रशंसा करते हुए उन पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे । जिस समय युद्ध में विजय प्राप्त कर

श्रीभगवान् मथुरा नगरी में प्रवेश कर रहे थे उस समय मथुरा नगरी सजा दी गयी थी । अनेक प्रकार के बाजे बजाये जा रहे थे । नारियाँ अपनी अटारियों से श्रीभगवान् के ऊपर फूल तथा लावा की वर्षा कर रही थीं । भगवान् युद्ध से अपार सम्पत्ति लाये थे । उस सारी सम्पति को उन्होंने मथुराधिपति के पास भेजवा दिया ।

इस प्रकार जरासन्ध सत्रह बार अपनी तेइस-तेइस अक्षौहिणी सेना को लेकर मथुरा पर आक्रमण किया । श्रीभगवान् की कृपा से यदुवंशी उसे प्रत्येक बार पराजित कर देते थे और वह उपेक्षा पूर्वक छोड़ दिये जाने पर अपने देश लौट जाता था । जब वह अठारहवीं बार आक्रमण करने वाला था तो उस समय नारदजी द्वारा भेजा हुआ कालयवन जरासन्ध के पक्ष में गया । कालयवन ने जब यह सुना कि यदुवंशी हमारे जैसे ही वीर हैं तो उसने भी तीन करोड़ म्लेच्छों की सेना लेकर मथुरा नगरी पर आक्रमण किया ।

जब श्रीभगवान् ने देखा कि कालयवन अपनी विशाल सेना लेकर हमारी नगरी को घेर रहा है तो उन्होंने बलरामजी से कहा इस बार तो हमारी सेना को दो-दो विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा । कालयवन आ गया है और जरासन्ध भी चार दिन में आ जायेगा । हम लोग यदि इस सबों से लड़ने में लग जायेंगे तब तो यह हमारी नगरी में प्रवेश करके यदुवंशियों को मारेगा तथा उन्हें बन्दी बनाकर अपने देश में ले जायेगा । अतएव हमलोग समुद्र में अभेद्य किला बनाकर वहीं पर अपनी प्रजा को रखकर तब इन सबों का वध करेंगे। यह सोचकर भगवान् ने विश्वकर्मा को आदेश दिया और रात्रि में ही समुद्र के भीतर बाहर योजन की द्वारका नगरी बनकर तैयार हो गयी। वह सुवर्ण की बनी नगरी थी । उसके सारे उपकरण दिव्य थे ।

श्रीभगवान् ने अपनी अचिन्त्य योगमाया की शक्ति से सभी यदुवंशियों को रातो-रात द्वारका नगरी में पहुँचा दिया । शेष प्रजा की रक्षा के लिए मथुरा में बलरामजी को छोड़कर श्रीभगवान् बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के गले में कमल की माला पहनकर अकेले मथुरा से बाहर निकले ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

एकावनवाँ अध्याय

कालयवन का विनाश तथा मुचुकुन्द की कथा

श्रीशुकदेव जी ने कहा कि जब श्रीभगवान् पूर्व दिशा से निकले तो ऐसा लगा कि जैसे पूर्व दिशा में चन्द्रोदय हो रहा हो । उनके श्याम शरीर पर पीताम्बर सुशोभित हो रहा था । हृदय पर कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही थी । उनकी लम्बी भुजाएँ, 'मकराकृति कुण्डल' कमल के सदृश मनोहर नेत्र तथा चार भुजाएँ थीं । कालयवन ने सोचा यही श्रीकृष्ण हैं । इन्हें ही नारदजी ने बतलाया है । ये बिना आयुध के हैं अतएव बिना आयुध के ही इनके साथ युद्ध करूँगा । कालयवन को देखते ही भगवान् भागने लगे और उनको पकड़ने की इच्छा से कालयवन भी उनके पीछे दौड़ने लगा । बार-बार कालयवन को लग रहा था कि अब मैंने श्रीकृष्ण को पकड़ा । इसतरह भगवान् कालयवन को पर्वत कन्दरा पर्यन्त भगाकर लाये । कालयवन ने कहा तुम यदुवंश में पैदा हुए हो । इसतरह से तुम्हारा भागना ठीक नहीं है । ऐसा कहने पर भी भगवान् उस पर्वत की कन्दरा में प्रवेश कर गये । कालयवन ने भी उस कन्दरा में प्रवेश किया तथा देखा कोई पीताम्बर ओढे सोया है । उसने सोचा कृष्ण ही यहाँ आकर सो गये हैं । उसने उस सोए हुए पुरुष को पैर से मारा । पैर के आघात से वे पुरुष जगे और चारो तरफ नेत्रों को खोलकर देखे तो सामने कालयवन था । उनके नेत्रों की क्रोधाग्नि से कालयवन जलकर भस्म हो गया ।

राजा परीक्षित् ने पूँछा कि भगवन् उस पर्वत की कन्दरा में सोए हुए महापुरुष कौन थे ? जिनके देखने मात्र से कालयवन भस्म हो गया? यह कालयवन कौन था ? तथा उसे कौन सी शक्ति प्राप्त थी? श्रीशुकदेवजी ने कहा कि पर्वत की कन्दरा में सोने वाले महापुरुष इक्ष्वाकुवंशीय राजा मान्धाता के पुत्र मुचकुन्द थे । वे महाबलवान थे। असुरों से भयभीत होकर देवताओं ने उनसे प्रार्थना की तो वे प्रसन्न

होकर दीर्घकाल तक देवताओं की रक्षा उनके सेनापति बनकर करते रहे जब देवताओं के सेनापति स्वामी कार्तिकेय हो गये तो देवताओं ने उनसे कहा राजन् आपने हमलोगों के लिए बहुत बड़ा त्याग किया है। अपना समृद्ध राज्य और परिवार छोड़ा है । अब आपके राज्य में आपके समय का कोई भी नहीं बचा है, सब कालकवलित हो गये हैं। अब आप विश्राम कीजिए । आप जो चाहें हमसे वरदान माँग लें हम मोक्ष को छोड़कर सब कुछ आपको दे सकते हैं । मोक्ष देना तो श्रीभगवान् के ही हाथ में हैं । राजा मुचकुन्द बहुत थके थे । उन्होंने सोने का ही वरदान माँगा । देवताओं ने कहा कि आपको सोते समय जो जगा देगा वह आपकी दृष्टि पड़ते ही जलकर भस्म हो ज़ायेगा ।

जब कालयवन भस्म हो गया तो भगवान् श्रीकृष्ण महाराज मुचकुन्द के समक्ष आये । उस समय श्रीभगवान् का अत्यन्त सुन्दर वेष था । पीताम्बर धारण किए हुए वे गले में वैजयन्ती की माला पहने हुए थे । भगवान् के वक्षस्थल पर श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभ मणि सुशोभित थी । मुचकुन्द जी श्रीभगवान् के सुन्दर श्रीविग्रह को देखकर आश्चर्य चकित हो गये और पूछे–

को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ।।
किंस्वित् तेजस्विनां तेजो भगवान् वा विभावसुः ।
सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालोऽपरोऽपि वा ।।
(भा० १०/५१/२८-२९)

प्रभो ! आप कौन हैं ? इस काण्टों से भरे धोर जंजाल में अपने कमल के समान कोमल पैरों से क्यों विचरण कर रहे हैं ? इस पर्वत की गुफा में पधारने का आपका क्या प्रयोजन हैं ? आप समस्त तेजस्वियों के तेजःस्वरूप अग्नि देव तो नहीं हैं ? क्या आप सूर्य, चन्द्रमा देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल तो नहीं हैं । मुझे तो लगता है कि आप साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं । आप अपना परिचय दें । मैं तो महाराज मान्धाता का पुत्र हूँ । युद्ध में बहुत थक गया था । इसलिए निर्जन वन में सो रहा था । एक व्यक्ति ने मुझे जगाया और वह अपने पापों के ही कारण विनष्ट हो गया । महाराज मुचुकुन्द की वाणी सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–

मुचकुन्दजी मेरे नाम और कर्म अनेक है । उनका पता कोई नहीं

लगा सकता । मेरे अनन्त जन्म हो चुके हैं । वर्तमाान में मैं ब्रह्माजी की पार्थना से प्रसन्न होकर पृथिवी का भार उतारने के लिए यदुवंश में अवतीर्ण हुआ हूँ । मैंने अनेक असुरों का विनाश किया । यह कालयवन था जो आपके देखते ही भस्म हो गया । मैं यहाँ आप पर कृपा करने के लिए आया हूँ । आपने पहले मेरी बहुत आराधना की है । आप जो चाहें वरदान माँग लें । मेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं है। इसके पश्चात् मुचकुन्दजी ने जान लिया कि श्रीभगवान् का यदुवंश में अवतार हो गया है । उन्होंने श्रीभगवान् को प्रणाम किया । और वे स्तुति करने लगे ।

विमोहितोऽयं जन ईश मायया,
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःख प्रभवेषु सज्जते,
गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ।।

(भा० १०/५१/४६)

भगवन् ! संसार के सभी प्राणी आपकी माया से मोहित हैं । वे आपसे पराङ्मुख होकर अनर्थ में ही फँसे रहते हैं । वे सुख प्राप्त करने के लिए धर गृहस्थी के झंझट में फँस जाते हैं । जो समस्त दुःखों का स्रोत है । इस तरह स्त्री पुरुष ठगे जाते हैं । इस भारत वर्ष नामक कर्म भूमि में मानव-जीवन प्राप्त करके आपकी आराधना अच्छी तरह से की जा सकती है । किन्तु अज्ञानी जीव भोगों को भोगने में ही अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देते हैं । आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की । मुझे आपने दर्शन दिया । प्रभो ! मैं विषयों को भोगते-भोगते ऊब चुका हूँ। कहीं भी मुझे शान्ति नहीं मिली । अब आप मुझे अपने शरण में ले लीजिए मैं आपके शरण में आया हूँ ।

श्रीभगवान् ने कहा– राजन् ! मैं आपको वरदान का प्रलोभन दे रहा था आपकी परीक्षा के लिए । आप अब निष्काम होकर इस पृथिवी पर विचरण करें । इस जन्म में की गयी हिंसाओं का पाप सब धुल जायेगा। अगले जन्म में तुम ब्राह्मण होओगे और मेरी आराधना से मुझे प्राप्त करोगे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
एकावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

बावनवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का द्वारका गमन, बलरामजी का विवाह तथा रुक्मिणीजी का सन्देश लेकर ब्राह्मण का श्रीभगवान् के पास आना

श्रीशुकदेवजी ने कहा– श्रीभगवान् का दर्शन करके मुचकुन्दजी उस कन्दरा से बाहर निकले तो देखे पृथिवी के मनुष्य, पशु, वृक्ष इत्यादि बहुत छोटे हो गये हैं । वे जान गये पृथिवी पर कलियुग आ रहा है वे वहाँ से चलकर भगवान् नारायण के आश्रम वदरिकाश्रम पहुँच गये। और तपस्यारत हो गये ।

उधर भगवान् भी पर्वत कन्दरा से निकलकर आये और कालयवन की सेना का संहार श्रीबलरामजी के साथ मिलकर किये । वे वहाँ से बहुत अधिक सम्पत्ति लेकर द्वारका की ओर चले । उसी समय अपनी सेना के साथ जरासन्ध भी आ गया । इस बार भगवान् जरासन्ध से लड़े नहीं बल्कि भागने लगे । दोनों भाई को भागते हुए देखकर जरासन्ध उनका पीछा रथ पर चढ़कर करने लगा । जरासन्ध को लगा हम से डरकर दोनों भाई भागते हुए बहुत थक गये है । भगवान् और बलराम जी प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ गये । जरासन्ध ने उन दोनों भाइयों को बहुत खोजवाया किन्तु पता नहीं चला । उसने उस पर्वत में चारो ओर से आग लगवा दी । पर्वत को जलते हुए देखकर भगवान् उस पर्वत के शिखर से पृथिवी पर कूद पड़े । श्रीभगवान् तथा बलरामजी को कोई भी देख नहीं सका और वे द्वारका में चले गये । जरासन्ध ने भी जान लिया कि दोनों भाई जलकर मर गये । वह भी अपनी सेना लौटाकर मगध देश चला गया ।

इसके बाद आनर्त देश के राजा रैवत ने अपनी पुत्री रेवतीजी का विवाह श्रीबलरामजी से कर दिया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने शिशुपाल आदि को परास्त करके विदर्भ देश की राजकुमारी रुक्मिणी

के साथ विवाह किया । रुकमिणीजी राजा भीष्मक की पुत्री तथा लक्ष्मीजी का अवतार थीं ।

राजा परीक्षित् ने पूँछा श्रीभगवान् ने रुक्मिणीजी का अपहरण करके राक्षस विधि से उनके साथ विवाह क्यों किया ? आप हमें श्रीभगवान् की इस लीला को सुनाइये ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि विदर्भ देश के राजा भीष्मक थे । उनके पाँच पुत्र थे– रुक्मी, रक्मरथ, रक्मवाहु, रुक्मकेश तथा रुक्ममाली। उनकी पुत्री का नाम रुक्मिणी था । रुक्मिणी ने जब भगवान् श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, पराक्रम इत्यादि का वर्णन सुना तो निश्चय कर लिया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही हमारे अनुरूप पति हैं । भगवान् श्रीकृष्ण भी समझते थे कि रुक्मिणी अद्वितीय सुन्दरी हैं और वे ही हमारी अनुरूप पत्नी हैं । अतएव उन्होंने निश्चय किया कि मुझे रुक्मिणाी से ही विवाह करना है । रुक्मिणी का बड़ा भाई रुक्मी श्रीकृष्ण से द्वेष रखता था और अपनी बहन का विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहता था ।

रुक्मिणी ने जब यह जाना कि रुक्मी मेरा विवाह शिशुपाल से करना चाहता है तो वे उदास हो गयीं और उन्होंने एक पत्र लिखकर एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को भगवान् के पास भेज दिया । ब्राह्मण देवता द्वारकापुरी में जाकर देखे कि श्रीभगवान् स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं । ब्राह्मण देवता को देखते ही श्रीभगवान् सिंहासन से उतरकर ब्राह्मण देवता को अपने आसन पर बैठाकर उनकी पूजा किये। जब ब्राह्मण देवता विश्राम कर चुके थे तो श्रीभगवान् उनके पास गये तथा अपने हाथों से उनके पैरों को दबाते हुए पूँछे– ब्राह्मण देवता आप हर प्रकार से सन्तुष्ट तो हैं ?

विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूतसृहृत्तमान् ।
निरहंकारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत् ।।

(भा० १०/५२/३३)

अपने आप प्राप्त वस्तुओं से सन्तुष्ट रहने वाले, मधुर स्वभाव वाले, समस्त प्राणियों के परम हितैषी, अहंकार रहित तथा शान्त ब्राह्मणों को मैं सिर से नमस्कार करता हूँ । ब्राह्मण देवता आप कहाँ से पधारे हैं ? और आपके आने का प्रयोजन क्या है ? यदि कोई गोपनीय बात न हो तो उसे आप अवश्य बतलाइये । आपकी हम

कौन सी सेवा करें ? भगवान् की बातों को सुनकर ब्राह्मण देवता ने रुक्मिणी का सन्देश सुनाया–

श्रुत्वा गुणान् भुवन सुन्दर शृणवतां ते,
निर्विश्य कर्णविवरैः हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं,
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ।।

(भा० १०/५२/३७)

त्रिभुवन सुन्दर ! जो सुनने वालों के श्रवणमार्ग से हृदय में प्रवेश करके प्रत्येक अंग के सन्ताप को हर लेते हैं, तथा अपने रूप सौन्दर्य को जो नेत्र वाले जीवों के नेत्रों के लिए सभी प्रकार के पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं, आपके उन गुणों को सुनकर मेरा अन्तःकरण लज्जा को छोड़कर आपमें ही प्रवेश कर रहा है । प्रभो ! आप शौर्य,वीर्य पराक्रम, सौन्दर्य, शील इत्यादि समस्त विषयों में अद्वितीय हैं । संसार के सभी प्राणी आपका दर्शन करके परम शान्ति का अनुभव करते हैं । आप ही बतलायें कि ऐसी कौन सी कुलवती, गुणवती तथा धैर्यवती कन्या होगी जो विवाह के योग्य समय आने पर आपको ही पति के रूप में वरण नहीं करेगी । प्रियतम आपको ही मैंने पति के रूप में वरण किया है । अतएव यहाँ आकर आप मुझे अपनी पत्नी के रूप में अवश्य स्वीकार करें । आप ऐसा करें कि शिशुपाल मेरा स्पर्श न कर सके । यदि मैंने अपने पूर्वजन्मों में कोई पुण्य किया है तो भगवान् श्रीकृष्ण मुझे पति रूप में अवश्य प्राप्त हों । कोई भी दूसरा पुरुष मेरा स्पर्श न कर सके । मेरे विवाह से एकदिन पूर्व गुप्त रूप से मेरे नगर में आ जायँ तथा शिशुपाल एवं जरासन्ध इत्यादि की सेना को मथकर राक्षस विधि से मेरा प्राणिग्रहण करें । विवाह से एक दिन पूर्व कन्य को जाने वाली कुमारी को शोभापात्र के साथ नगर के बाहर कुलदेवी गिरिजा देवी का पूजन करने जाना होता है । उसी समय आप हमारा हरण करें । यदि आप ऐसा नहीं कर सके तो मैं अपना प्राण त्याग दूँगी। ब्राह्मणा देवता ने कहा यही रहस्यात्मक सन्देश है । आप जैसा चाहें वैसा करें ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणी हरण

श्रीशुकदेवजी ने कहा– ब्राह्मण देवता के मुख से रुक्मिणी का सन्देश सुनकर श्रीभगवान् ने उनका हाथ पकड़कर हँसते हुए कहा– जिस तरह विदर्भ राजकुमारी मुझे चाहती है, उसी तरह मैं भी उसे चाहता हूँ । मैं जानता हूँ कि रुक्मी ने द्वेष वश मेरा विवाह रोक दिया है । किन्तु मैं युद्ध में सभी क्षत्रियों को परास्त करके राजकुमारी रुक्मिणी को अवश्य लाऊँगा । विवाह का नक्षत्र जानकर श्रीभगवान् ने दारुक से कहा कि तुम मेरा रथ तैयार करो । दारुक भी भगवान् के रथ में शैव्य, सुग्रीव, मेघपुरुष तथा बलाहक इन चार घोड़ों को जोड़कर शीघ्र रथ लाए । भगवान् श्रीकृष्ण पहले ब्राह्मण देवता को रथ पर बैठाकर रथ में बैठे और एक ही रात में द्वारका से विदर्भ देश पहुँच गये । महाराज भीष्मक रुक्मी के स्नेहवश रुक्मिणी का शिशुपाल के साथ विवाह की तैयारी में लगे थे । पूरा नगर सजाया गया था । चारो ओर छिड़काव हो रहा था । सम्पूर्ण नगर से धूप की सुगन्धि आ रही थी । ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और फिर स्वस्तिवाचन कराया गया । राजकुमारी को स्नान कराकर सभी अलंकारो से अलंकृत किया गया । राजा ने ब्राह्मणों को विविध प्रकार का दान दिया ।

इधर चेदिनरेश दमघोष ने भी अपने पुत्र शिशुपाल के विवाह का मङ्गल किया । उसके बाद वे अपनी चतुरङ्गिणी सेना सजाकर कुण्डीन पुर नगरी में बारत लेकर चले आये । महाराज भीष्मक ने सबों का स्वागत किया । शिशुपाल के साथ शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र इत्यादि अनेक राजा भी अपनी सेना के साथ आये थे । वे सब इसलिए आये थे कि कहीं किसी तरह श्रीकृष्ण रुक्मिणी का अपहरण न कर लें।

इधर जब बलरामजी ने यह जाना कि श्रीकृष्ण अकेले ही कुण्डीन पुरी रुक्मिणी का अपहरण करने गये है तो वे भी चतुरङ्गिणी सेना लेकर कुण्डीनपुरी के लिए शीघ्रता से प्रस्थान किए ।

इधर रुक्मिणीजी भी अत्यन्त चिन्तित थीं कि अब तक न तो भगवान् आये और न तो ब्राह्मण देवता ही लौटे । अब मेरे विवाह में केवल एक रात्रि की देर है । श्रीभगवान् तो मेरे शुद्ध प्रेम को जानते ही हैं । हो सकता है कि वे मुझमें कोई दोष देखे हों इसीलिए अभी तक यहाँ नहीं पधारे ।

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखा गौरी, रुद्राणी गिरिजा सती ।।

(भा० १०/५३/२५)

मेरे भाग्य ही मन्द हैं । विधाता और भगवान् शंकर भी मेरे अनुकूल नहीं जान पड़ते हैं । हो सकता है रूद्रपत्नी गिरिराज किशोरी पार्वतीजी भी मुझसे प्रसन्न न हों । श्रीभगवान् का ध्यान करती हुई रुक्मिणीजी का मन भर आया । उनके आँखों में आँसू भर गये । उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर ली । जब वे श्रीभगवान् का चिन्तन कर रही थीं उस समय उनकी वायी जंघा, वायीं भुजा तथा वायीं आँख फरकने लगे । इसके पश्चात् वे ब्राह्मण देवता रुक्मिणीजी के पास आये और बतलाये श्रीभगवान् आ गये हैं । इस समाचार को सुनकर रुक्मिणीजी समझ नहीं पायीं कि इस खुशी के बदलें में मैं ब्राह्मण देवता को क्या दूँ । मन ही मन अपार सम्पत्ति प्रदान करके भी वे सन्तुष्ट नहीं थीं । उन्होंने ब्राह्मण देवता को प्रणाम किया । राजा भीष्मक ने जब यह सुना कि श्रीकृष्ण जी हमारी पुत्री का विवाह देखने के लिए आये हैं तो राजा ने उनकी अगवानी बाजे-गाजे से की । राजा ने श्रीभगवान् की पूजा की और उन्हें उचित स्थान पर ठहराया । श्रीभगवान् के आगमन का सुनकर विदर्भ वासी लोगों ने मन भरकर उनका दर्शन किया । वे सब लोग कह रहे थे कि रुक्मिणी तो श्याम सुन्दर की ही पत्नी होने लायक थी ।

इधर रुक्मिणीजी गिरिजा देवी की पूजा करने के लिए राज भवन से निकल कर चलीं । श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान करके वे पैदल ही पार्वतीजी की पूजा करने के लिए चलीं । उनकी सखियाँ उन्हें चारो ओर से घेरे थीं । उनके पीछे अनेक सैनिक चल रहे थे। अनके प्रकार के बाजे बज रहे थे । देवी के मन्दिर में पहुँचकर रुक्मिणीजी ने श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान करते हुए पूजा की ।

और भगवान् श्रीकृष्ण के पति होने का वरदान माँगा । पूजा के पश्चात् अपनी एक सखी का हाथ पकड़कर वे मन्दिर से निकलीं ।

यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदार हास
व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः।
पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयती स्वशोभाम् ।
सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ,
प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा।
उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः
प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान् ददृशेऽच्युतं सा ।।

(भा० १०/५३/५३-५४)

रुक्मिणीजी उत्सव यात्रा के बहाने पैदल चलकर भगवान् श्रीकृष्ण पर अपना राशि-राशि सौन्दर्य निछावर कर रही थीं । रुक्मिणीजी को देखकर उनकी खुली मुसुकान तथा लजीली चितवन पर बड़े-बड़े वीर राजा इतने मोहित और बेहोश हो गये कि उनके हाथों से अस्त्र-शस्त्र छूटकर पृथिवी पर गिर पड़े तथा वे स्वयं भी अपने वाहनों से पृथिवी पर गिर पड़े । रुक्मिणीजी श्रीभगवान् के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं तथा कमल कली के समान कोमल पैरों को धीरे-धीरे आगे बढ़ा रही थीं । उन्होंने बायें हाथ की अंगुलियों से मुख पर लटके हुए बालों को हटाया तथा राजाओं की ओर लजीली चितवन से देखा । उसी समय उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हुए । वे रथ पर चढ़ना ही चाहती थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण सबों के देखते-देखते ही रुक्मिणी जी को उठा लिए और अपने रथ पर बैठा लिए तथा बलरामजी आदि यदुवंशियों के साथ द्वारका के लिए चल पड़े । श्रीभगवान् के इस पराक्रम को देखकर सभी दूसरे राजा अपने आप को धिक्कारने लगे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

चौवनवाँ अध्याय

राजाओं का पराजय तथा श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि सभी राजा क्रोध में भरकर अपने बाहनों पर चढ़कर तथा अस्त्र शस्त्र लेकर यदुवंशी सेना का पीछा करने लगे । जरासंध की सेना के सभी वीर धनुर्विद्या विशारद थे । वे सब यदुवंशियों पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके उस सेना को मानों ढंक दिये यह स्थिति देखकर रुक्मिणीजी ने भयभीत नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण की ओर लज्जापूर्वक देखा । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं है । अभी तुम्हारी सेना शत्रुओं को विनष्ट कर देगी। इसके बाद यदुवंशियों ने अपना युद्धकौशल दिखाते हुए शत्रुओं की सारी सेना को विनष्ट कर दिया । शिशुपाल तो अपनी भावी पत्नी का अपहरण जानकर मरणासन्न हो गया था । उससे जरासन्ध ने कहा कोई भी बात सदा अपने मन के ही अनुकूल हो यह संभव नहीं है । सब कुछ दैवाधीन है । श्रीकृष्ण ने तो मुझे सत्रह बार पराजित कर दिया मुझे केवल एक बार विजय मिली किन्तु मैं इसके लिए कभी भी शोक नहीं करता हूँ । यद्यपि हमलोग वीर सेना के सेनापति हैं किन्तु इस समय श्रीकृष्ण की छोटी सी सेना ने हमलोगों को परास्त कर दिया । कभी समय आयेगा जब हम भी शत्रु श्रीकृष्ण को परास्त कर देंगे । इसके बाद शिशुपाल भी अपने चेदिदेश को लौट गया ।

रुक्मिणी का बड़ा भाई रुक्मी ने जब सुना कि मेरी छोटी बहन का अपहरण श्रीकृष्ण ने कर लिया तो वह एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा करने लगा । क्रोध में भरकर रुक्मी कवच पहनकर तथा धनुष हाथ में लेकर सभी राजाओं से कहने लगा–

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यहृत्य च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ।।

(भा० १०/५४/२०)

मैं आप लोगों के समक्ष यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि श्रीकृष्ण को मारे बिना तथा रुक्मिणी को लौटाये बिना कुण्डिन पुरी में प्रवेश नहीं करुँगा । वह रथ पर सवार होकर सारथि से कहा जहाँ श्रीकृष्ण हो वहाँ मेरे रथ को ले चलो । आज मेरा युद्ध श्रीकृष्ण के ही साथ होगा। आज मैं श्रीकृष्ण को मारे बिना नहीं छोड़ सकता । उसने श्रीकृष्ण भगवान् को युद्ध करने के लिए ललकारा । उसने कहा जब तक मेरे बाणों से तुम मर नहीं जाते उससे पहले ही मेरी बहन को छोड़ दो । रुक्मी की बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कुराने लगे । इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने बाणों से रुक्मी के धनुष तथा उसके रथ के ध्वज को काट दिया । रुक्मी ने एक के बाद एक धनुष को ग्रहण किया और भगवान् ने सब को काट डाला । भगवान् ने रुक्मी के सभी अस्त्र शस्त्रों को काट डाला । इसके पश्चात् रुक्मी हाथ में तलवार लेकर भगवान् पर झपटा तो भगवान् ने अपने बाणों से उसके ढाल को खण्ड-खण्ड कर दिया और हाथ में तीव्र कृपाण ले लिया। रुक्मिणीजी ने देखा अब श्रीभगवान् रुक्मी को मार डालेंगे तो वे भगवान् के पैरों पर गिर पड़ी और कहने लगीं– भगवन् आप परम बलवान् हैं आप मेरे भाई को मत मारिए ।

श्रीरुक्मिणीजी ने जब श्रीभगवान् का पैर पकड़ लिया था और वे घबरा गयी थीं तो यह देखकर श्रीभगवान् ने रुक्मी को मारने का मन बदल दिया, फिर भी रुक्मी श्रीभगवान् के अनिष्ट की चेष्टा से विरत नहीं हुआ तो भगवान् ने उसे अपने दुपट्टे से बाँध दिया उसकी दाढ़ी मूछ कई जगह से मूंडकर उसे कुरूप बना दिया । तब तक यादव वीरों ने उसकी सेना को भी विनष्ट कर दिया । श्रीबलरामजी ने जब रुक्मी को अधमरा अवस्था में देखा तो उसे बन्धन से खोल दिया और श्रीकृष्ण भगवान् से कहा– हे कृष्ण तुमने अपने सम्बन्धी को कुरुप बनाया यह अच्छा काम नहीं है । इसके पश्चात् श्रीबलरामजी ने अपने भाई को कुरुप बनाने के कारण दुःखी रुक्मिणीजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण दोनों को समझाया बुझाया ।

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को बतलाया कि श्रीबलरामजी के द्वारा समझाये जाने के पश्चात् श्रीरुक्मिणीजी का मन शान्त हुआ। उधर रुक्मी और उसकी सेना परास्त हो चुकी थी । वे लोग वहीं पर एक

भोजकट नामक नगरी बसाये और वहीं रहने लगे, फिरकर कुण्डिन पुरी में नहीं गये ।

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त राजाओं को परास्त करके तथा रुक्मिणीजी का अपहरण करके उन्हें द्वारका ले जाकर विधिपूर्वक उनका पाणिग्रहण किये । उस समय द्वारका में महोत्सव मनाया गया। सम्पूर्ण द्वारका नगरी सजायी गयी । सब लोगों ने विभिन्न प्रकार के उत्सव मनाये तथा रुक्मिणी एवं भगवान् श्रीकृष्ण के विवाह को देखकर अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव किए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह पाँचवे दिन की साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा सम्पूर्ण हुई।

साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा

के

छठे दिन की कथा

पृष्ठ ६४५ से ७९० तक

(श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽहनि वाचयेद् ध्रुवम्)

(दसवें स्कन्ध के पच्चपनवें अध्याय से लेकर
ग्यारहवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय तक)

पचपनवाँ अध्याय

प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर का वध

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि भगवान् शंकर ने क्रोध करके कामदेव को जला दिया । कामदेव ने पुनः शरीर धारण करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण को अपना आश्रय बनाया । वे काम ही भगवान् श्रीकृष्ण के प्रथम पुत्र के रूप में श्रीरुक्मिणीजी के गर्भ से पद्मुम्न के रूप में अवतीर्ण हुए । उनमें सौन्दर्य, पराक्रम तथा शील आदि समस्त सद्गुण विद्यमान थे । शम्बरासुर जानता था कि पद्मुम्न मेरे शत्रु हैं । अपना वेष बदलकर वह सूतिका गृह से ही प्रद्युम्न को चुरा ले गया और उन्हें समुद्र में फेंक दिया । उस बालक को एक मत्स्य निगल गया और उस मत्स्य को मछुआरों ने जाल में फँसाया तथा शम्बरासुर के रसोई घर में उसे दे दिया । भोजन बनाने वालों ने जब उस मत्स्य को कुल्हाड़ी से काटा तो उसके पेट में उस दिव्य बालक को पाया । रसोइयों ने उस बालक को मायावती को दे दिया । वह मायावती उस दिव्य बालक को पालने लगी । मायावती पहले की काम कीं पत्नी रति थी । वह कामदेव के शरीर धारण करने की प्रतीक्षा कर रही थी । तथा शाम्बरासुर के यहाँ भोजन बनाती थी । नारदजी ने आकर मायावती को बतला दिया कि ये भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र तथा तुम्हारे पति कामदेव हैं । अब तो उस बालक का पोषण वह प्रेम पूर्वक करने लगी और थोड़े ही दिन में प्रद्युम्न युवक हो गये । उनका ऐसा सौन्दर्य था कि उसे देखकर नारियों के मन में शृंगार का भाव आ जाता था । रति भी भगवान् प्रद्युम्न के साथ अपनी काम-भावना को अभिव्यक्त करती थी। प्रद्युम्न जी ने कहा– माँ तुम्हारी बुद्धि कामिनी जैसी मैं देखता हूँ। यह मातृभाव के विपरीत है ।

रति ने कहा– प्रभो ! आप भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र हैं और पहले जन्म के कामदेव है । मैं आपकी अधिकृता पत्नी हूँ । यह शम्बरासुर जब आप दस दिन के थे उसी समय आपको सूतिका गृह से चुरा लाया और समुद्र में फेंक दिया । इस तरह से उसने प्रद्युम्नजी

को सारा वृत्तान्त बतलाया । उसने कहा कि यह शम्बरासुर सैकड़ों प्रकार की माया जानता है । इसे जीतना आसान नहीं है । आपकी माता अपके वियोग में व्याकुल हैं तथा निरन्तर आपकी चिन्ता करती रहती हैं । यह कहकर उसने प्रद्युम्नजी को महामाया नाम की विद्या सिखाया । यह महामाया विद्या ऐसी है जो समस्त मायाओं का विनाश कर देती है ।

इसके पश्चात् शम्बरासुर के समक्ष जाकर प्रद्युम्नजी ने उसे युद्ध करने के लिए ललकारा । प्रद्युम्नजी की बातों से क्रुद्ध होकर शम्बासुर हाथ में गदा लेकर युद्ध करने के लिए निकला । उसने प्रद्युम्नजी पर गदा का प्रहार किया । प्रद्युम्नजी ने अपनी गदा के प्रहार से उसकी गदा को गिरा दिया और उस पर अपनी गदा का प्रहार किया । यह देखकर शम्बरासुर माया के बल से आकाश में जाकर उन पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगा । इसके पश्चात् पद्युम्नजी ने समस्त मायाओं का विनाश करने वाली महामाया को अपनाकर उसकी सारी मायाओं को काट दिया और अन्त में तीक्ष्ण तलवार से शम्बरासुर का सिर उसके धड़ से अलग कर दिया । देवताओं ने प्रद्युम्नजी पर पुष्पों की वर्षा की और उनकी स्तुति की । इसके पश्चात् प्रद्युम्नजी अपनी पत्नी के साथ आकाश मार्ग से रुक्मिणीजी के अन्तःपुर में प्रवेश किये । गौरवर्ण की अपनी पत्नी के साथ पीताम्बर धारी प्रद्युम्नजी की ऐसी शोभा होती थी जैसे श्याम मेघ के साथ विद्युत् विद्यमान हो । उस अन्तःपुर में अनके नारियाँ थी । उन सबों ने समझा भगवान् श्रीकृष्ण आ गये और सब सकुचाकर इधर-उधर चली गयीं । बाद में उन सबों ने जाना कि ये भगवान् श्रीकृष्ण नहीं है । उसी समय वहाँ पर रुक्मिणीजी आयीं और इस नयी दम्पति को देखकर उनके मन में पुत्र वात्सल्य की भावना जग गयी । उन्हें अपने पुत्र प्रद्युम्न की याद आ रही थी । वे अनुमान लगा रही थीं कि हो सकता है कि ये प्रद्युम्न ही हो । भगवान् तो सब कुछ जानते थे किन्तु चुप लगाये थे । नारदजी ने आकर सारा वृत्तान्त बतलाया । इसके पश्चात् वसुदेव जी, देवकीजी, बलरामजी इत्यादि ने उस नवीन दम्पती का सत्कार किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का पचपवनाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

छप्पनवाँ अध्याय

स्यमन्तक मणि की कथा तथा भगवान् श्रीकृष्ण का जाम्बवती तथा सत्यभामा के साथ विवाह

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि सत्राजित ने भगवान् श्रीकृष्ण को झूठा कलंक लगाया था । उस दोष का मार्जन करने के लिए उसने स्यमन्तक मणि के साथ सत्यभामा नामक अपनी पुत्री का विवाह श्रीभगवान् से कर दिया । सत्राजित की कथा का वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी ने कहा कि वह सूर्य का बड़ा भक्त था । भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर उसे स्यमन्तक मणि प्रदान किए । उस मणि को पहन कर सत्राजित सूर्य के समान चमकने लगा । एक दिन उस मणि को धारण करके सत्राजित द्वारका आया । उसकी चमक को देखकर लोगों ने समझा साक्षात् सूर्य भगवान् भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए आ रहे हैं । उन लोगों ने इसकी सूचना श्रीभगवान् को दी । यह सुनकर श्रीभगवान् हंसने लगे और बोले यह सत्राजित आ रहा है, भगवान् सूर्य नहीं । स्यमन्तक मणि के कारण वह इतना चमक रहा है । इसके पश्चात् सत्राजित अपने समृद्ध घर में चला गया । ब्राह्मणों ने उस मणि को एक देव मन्दिर में स्थापित कर दिया । वह मणि प्रतिदिन आठ भर सुवर्ण दिया करती थी । वह मणि जहाँ पूजित होकर रहती थी वहाँ दुर्भिक्ष, ग्रहपीड़ा, महामारी इत्यादि नहीं होते थे । एक बार भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्राजित से स्यमन्तक मणि को राजा उग्रसेन को दे देने के लिए कहा, किन्तु उसने श्रीभगवान् की आज्ञा का उल्लंघन कर दिया ।

एक दिन सत्राजित का छोटा भाई प्रसेनजित अपने गले में उस मणि को बाँधकर जंगल में शिकार खेलने गया । घोर जंगल में एक सिंह ने घोड़े के साथ प्रसेनजित को मार दिया और उस मणि को ले लिया । उस मणि के लिए ऋक्षराज जम्बवान् ने उस सिंह को मार डाला और मणि को अपनी पुत्री को खेलने के लिए दे दिया।

प्रसेनजित के न लौटने पर सत्राजित् ने कहा कि हो सकता है कि मणि के लिए श्रीकृष्ण मेरे भाई को मार डाले हों । जब भगवान् ने सुना कि यह कलंक मुझ पर लग रहा है तो वे द्वारका के कुछ सभ्य पुरुषों को लेकर प्रसेनजित को खोजने चले । घोर जंगल में लोगों ने देखा कि प्रसेनजित और उसके घोड़े को कोई सिंह मार डाला है । आगे जाकर लोगों ने देखा कि उस सिंह को कोई ऋक्ष मार डाला है । श्रीभगवान् लोगों को गुफा के द्वार पर रखकर अकेले ही उस अंधेरी गुफा में प्रवेश किए । वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि स्यमन्तक मणि को बच्चों का खिलौना बना दिया गया है । वे उस मणि को लेना चाहते थे बच्चों की धाय उन अपरिचित मनुष्य को देखकर जोर से चिल्ला पड़ी । उसे सुनकर ऋक्षराज वहाँ दौड़कर आ गये और क्रोध में भरकर भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगे । विभिन्न प्रकार से श्रीभगवान् और जाम्बवान् का अट्ठाइस दिनों तक अविराम युद्ध चलता रहा । अन्त में भगवान् के घूसों की मार से जाम्बवान् का शरीर पस्त हो गया था । उनका उत्साह जब समाप्त हो गया तो उन्होंने कहा–

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ।।
(भा० १०/५६/२६)

प्रभो ! मैं जान गया कि आप ही सभी प्राणियों के स्वामी, रक्षक पुराण पुरुष भगवान् विष्णु हैं । आप ही सबके प्राण, इन्द्रिय, बल, मनोवल और शरीर बल हैं । आप सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा हैं तथा सर्वत्र सत्ता रूप से विराजमान हैं । आप ही सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा हैं ।

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षै
र्वर्त्मादिशत् क्षुभितनक्रतिमिङ्गलोऽब्धिः ।
सेतुःकृतः स्ववश उज्ज्वलिता च लंका
रक्षः शिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ।।
(भा० १०/५६/२८)

प्रभो ! आपने श्रीरामवतार में अपने नेत्रों में थोड़ा सा क्रोध का भाव भरकर जब तीव्र दृष्टि से समुद्र को देखा था तो समुद्र के बड़े-बड़े घड़ियाल तथा मगरमच्छ क्षुब्ध हो गये थे । समुद्र ने आपको मार्ग

प्रदान कर दिया था । आपने समुद्र के ऊपर सुन्दर सेतु का निर्माण किया जिससे आपके यश का विस्तार हुआ तथा लंका विध्वस्त हो गयी । आपके तीक्ष्ण बाणों से राक्षसों के सिर कटकर पृथिवी पर गिर पड़े । जाम्बवान् की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने अपने कृपार्द्र हाथों को जाम्बवान्जी के शरीर पर फेरा और उनके शरीर की पीड़ा समाप्त हो गयी । श्रीभगवान् के आने का प्रयोजन जानकर जाम्बवान्जी ने अपनी पुत्री जाम्बवती तथा स्यमन्तक मणि दोनों को श्रीभगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया ।

जो लोग द्वारका से श्रीभगवान् के साथ आये थे गुफा द्वार पर बारह दिन तक भगवान् की प्रतीक्षा करके द्वारका लौट गये और सत्राजित् को बुरा भला कहने लगे । वे श्रीभगवान् की प्राप्ति के लिए दुर्गाजी की आराधना करने लगे । उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण जाम्बवती तथा स्यमन्मक मणि को लेकर लौटे । उन्हें देखकर सब लोग प्रसन्न हो गये ।

श्रीभगवान् सत्राजित को महाराजा उग्रसेन के समक्ष राज सभा में मणि प्राप्ति की सारी कथा सुनाकर मणि उसे प्रदान कर दिये । सत्राजित ने मणि तो ले ली किन्तु उसका सिर लज्जा से झुक गया था। वह उदास हो गया तथा श्रीभगवान् से डर भी गया था । वह सोचता रहा कि मैं क्या करूँ ? अपने दोष का मार्जन कैसे करूँ ? उसने बहुत विचार करके अपनी रूप तथा गुण सम्पन्न पुत्री सत्यभामा को तथा स्यमन्तक मणि को श्रीभगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया । श्रीभगवान् ने विधि पूर्वक सत्यभामा का पाणिग्रहण किया । श्रीभगवान् ने कहा– यह मणि आपके पास ही रहना चाहिए आप मुझे उस मणि का फल प्रदान कर दिया कीजिए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सत्तावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा शतधन्वा का उद्धार और अक्रूरजी को द्वारका बुलाना

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि श्रीभगवान् यद्यपि जानते थे कि लाक्षागृह की आग से पाण्डवों का बाल भी बाँका नहीं हुआ है, फिर भी लोक व्यवहार निभाने के लिए वे श्रीबलरामजी के साथ हस्तिनापुर गये, सबों से मिले और अपनी संवेदना प्रकट किए। भगवान् श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर जाने पर अक्रूर तथा कृतवर्मा को अवसर मिला। उन लोगों ने शतधन्वा से कहा– सत्राजित ने अपनी पुत्री का विवाह हम लोगों से करने के लिये कहा था किन्तु उसने उसे श्रीकृष्ण को दे दिया अतएव तुम सत्राजित को मार डालो। शतधन्वा उन लोगों की बात में आकर सत्राजित को सोते समय मार डाला और मणि को लेकर भाग गया। सत्यभामाजी अपने पिता के शोक में बेहोश हो गयीं। फिर उन्होंने अपने पिता का शव तेल में रखवा दिया और स्वयं हस्तिनापुर जाकर श्रीभगवान् को यह समाचार सुनायीं। यद्यपि सर्वज्ञ भगवान् यह जानते थे फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी मानव जैसी लीला करते हुए आखों में आँसू भरकर विलाप करने लगे। वे शतधन्वा को मारकर मणि को छीनना चाहे तो डरकर शतधन्वा ने कृतवर्मा से सहायता माँगी, किन्तु कृतवर्मा ने उसे जबाब दे दिया। इसके बाद शतधन्वा श्रीअक्रूरजी के पास गया और उनसे सहायता माँगी; किन्तु अक्रूरजी ने भी शतधन्वा को निराश कर दिया। इसके पश्चात् शतधन्वा ने स्यमन्तक मणि को अक्रूरजी के पास रख दिया और निरन्तर चार सौ कोस तक दौड़ने वाले तीव्रमागी घोड़े से अपनी जान बचाने के लिए भागा। श्रीभगवान् और बलरामजी ने रथारूढ़ होकर उसका पीछा किया। मिथिला के सन्निकट जाकर शतधन्वा का घोड़ा गिर पड़ा तो वह पैदल भागने लगा। भगवान् ने भी पैदल ही उसका पीछा किया और अपने तीव्र चक्र से उसका सिर काट दिया।

इसके पश्चात् वे उसके कपड़ों में ढूँढकर भी स्यमन्तक मणि को जब नहीं पाये तो बलरामजी से कहे कि शतधन्वा को व्यर्थ ही मारा; मणि उसके पास नहीं है ।

श्रीबलरामजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि तुम द्वारका में ही जाकर मणि का पता लगाओ; मैं अपने परम मित्र विदेहराज से मिलने जा रहा हूँ । बलरामजी को आये हुए देखकर विदेहराज ने उनका स्वागत किया । बलरामजी कई वर्षों तक मिथिला पुरी में ही रहे । वहीं पर उन्होंने अपने प्रिय शिष्य धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन को गदा युद्ध की शिक्षा दी । भगवान् ने द्वारका लौटकर सत्यभामाजी को बतलाया कि शतधन्वा तो मारा गया किन्तु मणि उसके पास नहीं मिली । इसके पश्चात् उन्होंने सत्राजित् का और्ध्व दैहिक कर्म सम्पन्न करवाया ।

कृतवर्मा और अक्रूर ने जब सुना कि भगवान् ने शतधन्वा को मार डाला है तो वे द्वारका से भाग गये । उस समय द्वारका में लोगों को कुछ अधिव्याधि का सामना करना पड़ा । लोगों ने कहा कि एक बार काशी के राज्य में अवर्षण हो गया था तो उन्होंने अक्रूर के पिता श्वफल्क को बुलाकर अपनी पुत्री गान्दिनी से व्याह दिया तो उस राज्य में वर्षा हुई । उन्हीं के पुत्र अक्रूरजी है । वे यदि द्वारका में आ जायँ तो सबों का कष्ट समाप्त हो जाय । भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी का पता लगाया । अक्रूरजी के आने पर श्रीभगवान् ने कहा अक्रूरजी हम जानते हैं कि शतधन्वा ने स्यमन्तक मणि को आपके ही पास रखा है। मैं यह भी चाहता हूँ कि मणि आपके ही पास रहे । क्योंकि आप व्रतनिष्ट हैं । दूसरे के लिए उस मणि को रखना भी कठिन है। किन्तु उस मणि को आप दिखाकर बलरामजी, सत्यभामा, जाम्बवती इत्यादि के सन्देह को दूर कर दीजिए । उस मणि के ही प्रभाव से आप ऐसे यज्ञों को लगातार कर रहे हैं जिनसे वेदियाँ सुवर्ण की बनती हैं । बहुत समझाने के पश्चात् अक्रूरजी ने उस मणि को दिखा दिया और सब लोगों का सन्देह समाप्त हो गया ।

जो व्यक्ति इस स्यमन्तकोपाख्यान को सुनता अथवा स्मरण करता है उसके समस्त कलंको का मार्जन हो जाता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न विवाहों की कथा

जब यह पता चल गया कि पाण्डव लाक्षागृह में जले नहीं है, और वे लौटकर इन्द्रप्रस्थ आ गये हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकि तथा अन्य यदुवंशियों के साथ पाण्डवों से मिलने के लिए इन्द्रप्रस्थ गये। पाण्डवों को बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर तथा भीम को प्रणाम किया अर्जुन को गले लगाया तथा नकुल एवं सहदेव का प्रणाम स्वीकार किया। फिर सात्यकि एवं श्रीकृष्ण भगवान् एक ही आसन पर बैठ गये। नवविवाहिता द्रौपदी भी भगवान् श्रीकृष्ण से मिलीं। इसके बाद भगवान् कुन्तीजी से मिलने गये। कुन्तीजी ने अपनी सारी कष्ट की गाथा सुनाया। भगवन्! आप तो भेदभाव से रहित हैं इसीलिए आप हमलोगों से मिलने के लिए यहाँ आए; हमारा बड़ा ही सौभाग्य है। युधिष्ठिरजी के आग्रह से भगवान् बरसात के चार महिनों तक इन्द्रप्रस्थ में ही रह गए। एक दिन अर्जुन गाण्डीव धनुष लेकर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ आखेट खेलने के लिए वन में गये तथा अनेक मेध्य पशुओं का शिकार करके उन्हें महाराज युधिष्ठिर के पास भेजवा दिया। शिकार करते-करते अर्जुन थक गये थे। भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन यमुनाजी में हाथ पैर धोकर जल पीए। उन लोगों की दृष्टि एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या पर गयी जो यमुना के तट में तपस्यारत थी। श्रीभगवान् की आज्ञा पाकर अर्जुन उसके पास गए तथा उसके तपस्यारत होने का प्रयोजन तथा उसका परिचय पूछे। उस सुन्दरी ने बतलाया कि मैं सूर्य पुत्री कालिन्दी हूँ। भगवान् विष्णु को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रही हूँ। जब तक भगवान् का दर्शन नहीं हो जाता है तब तक यहीं तपस्या करूँगी। अर्जुन ने आकर भगवान् को सारी बात बतलाया। भगवान् रथ पर चढ़ाकर कालिन्दी को युधिष्ठिर के यहाँ लाये। इसके बाद पाण्डवों के आग्रह पर

भगवान् ने विश्वकर्मा को प्रेरित करके उनके रहने के लिए एक सुन्दर भवन बनवा दिया । यहीं पर रहकर भगवान् अग्निदेव को खाण्डववन दिलाने के लिए श्रीभगवान् को अर्जुन का सारथि बनना पड़ा । प्रसन्न होकर अग्निदेव ने अर्जुन को गाण्डीव धनुष, दो अक्षय तुणीर, एक रथ तथा चार श्वेत घोड़ों को प्रदान किया । अर्जुन ने मय दानव को जलने से बचा दिया था, इसलिए उसने प्रसन्न होकर अर्जुन को एक ऐसी सभा प्रदान की जिससे जल में स्थल तथा स्थल में जल की भ्रांति हो जाती थी । इसके पश्चात् भगवान् द्वारका आये और शुभ मुहूर्त में कालिन्दी का पाणिग्रहण किये ।

उज्जैन के राजा विन्द तथा अनुविन्द की पुत्री मित्रविन्दा ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपना पति बनाना चाहा तो उसके पिता ने उसे रोक दिया; क्योंकि वह दुर्योधन का अनुयायी था । श्रीभगवान् ने सभी राजाओं के समक्ष मित्रविन्दा का हरण कर लिया ।

कोसल देश के राजा नग्नजित की पुत्री सत्या अत्यन्त सुन्दरी थी। राजा ने प्रतिज्ञा की थी कि जो अकेला पुरुष हमारे दुर्दान्त तथा तीक्ष्ण सींग वाले सात बैलों को अकेले पकड़कर बाँध देगा । सत्या का उसी के साथ विवाह होगा । किसी के ऐसा नहीं कर पाने के कारण सत्या का विवाह नहीं हो पाता था । भगवान् भी अपनी सेना के साथ कोसल आए । राजा ने श्रीकृष्ण का सत्कार किया । और–

वरं विलोक्याभिमतं समागतं,
नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ।
भूयादयं मे पति, राशिषोऽमलाः,
करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ।।
यत्पादपंकजरजः शिरसा विभर्ति,
श्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः ।
लीलातनूः स्वकृतसेतु पुरीप्सयेशः,
कालेदधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ।

(भा० १०/५८/३६-३७)

राजा नग्नजित् की पुत्री सत्या ने देखा कि मेरे चिर अभिलषित रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं तो उसने मन ही मन अभिलाषा की कि यदि मैंने व्रत नियम का पालन करके पति रूप से

इनका ही चिन्तन किया है, तो ये मेरे पति बनकर मेरी अभिलाषा पूर्ण करें । सत्या मन ही मन सोच रही थी लक्ष्मीजी, ब्रह्माजी, शंकरजी तथा बड़े-बड़े लोकपाल जिनके पदपद्म पराग को अपने सिर पर धारण करते हैं, जो अपनी बनायी मर्यादा का पालन करने के लिए समय-समय पर अनेक अवतारों को धारण करते हैं, वे प्रभु मेरे किस व्रत तथा नियम से प्रसन्न हो सकते है ? वे तो अपनी कृपा से ही प्रसन्न हो सकते हैं ।

राजा नग्नजित् ने भगवान् की पूजा करके उनके पधारने का प्रयोजन पूछा तो श्रीभगवान् ने बतलाया कि वे सत्या का पाणिग्रहण करना चाहते हैं । राजा ने कहा कि मैं अपनी प्रतिज्ञा में बँधा हूँ । जो मेरे इन सात बैलों को बलपूर्वक पकड़कर बाँध देगा उसी के साथ सत्या का विवाह होगा । श्रीभगवान् ने खेल-खेल में सात रूप धारण करके उन सातों बैलों को बलपूर्वक बाँध दिया और उन्हें खिलौने के समान घसीटने लगे । राजा ने सत्या का विवाह श्रीकृष्ण के साथ कर दिया। राजा नग्नजीत ने विपुल मात्रा में दहेज दिया और रथ पर चढ़ाकर नग्नजीत और भगवान् को द्वारका भेज दिया । जो राजा उन बैलों को बाँध नहीं पाये थे वे जब भगवान् श्रीकृष्ण के इस विजय को सुने तो वे भगवान् श्रीकृष्ण पर आक्रमण कर दिये । उस समय अर्जुन अपना गाण्डीव उठाकर उन समस्त राजाओं को विनष्ट दिये । फिर भगवान् द्वारका सत्या के साथ आये और गृहस्थोचित विहार करने लगे।

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी बुआ श्रुतकीर्ति की पुत्री भद्रा से विवाह किया । उन्होंने मद्र प्रदेश के राजा की पुत्री लक्ष्मणा का स्वयम्बर से हरण किया और उससे विवाह किया । श्रीभगवान् ने भौमासुर को मारकर उसके बंदीगृह में बन्द सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों से विवाह किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
अठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उनसठवाँ अध्याय

भौमासुर का वध तथा सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का विवाह

राजा परीक्षित् ने पूँछा– भौमासुर क्यों सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों को बंदी बना रखा था ? श्रीभगवान् ने उसे कैसे मारा ? श्रीशुकदेव जी ने कहा– भौमासुर ने वरुण का छत्र, माता अदिति का कुण्डल तथा देवतओं का मणि पर्वत नामक स्थान छीन लिया । इन्द्र ने आकर भौमासुर की सारी करतूतों को सुनाया तो भगवान् गरुड़ पर सत्यभामाजी के साथ सवार होकर उसकी नगरी प्राग्ज्योगतिष् पुर में आये । भौमासुर की नगरी में प्रवेश करना कठिन था । उसकी नगरी के चारो ओर पहाड़ के किले थे । उसके बाद शस्त्रों का धेरा था । फिर जल भरी खाईं थी । उसके बाद क्रमशः वायु तथा बिजली की चहार दिवारी थी । फिर मुर दैत्य के नगर के चारो ओर दस हजार फँदे थे। भगवान् ने अपनी गदा के प्रहार से पहाड़ों को तोड़ दिया । बाणों से शस्त्रों के घेरे को विनष्ट कर दिया । चक्र से जल, अग्नि एवं वायु के घेरे को नष्ट कर दिया । फिर तलवार से मुर दैत्य के फंदे को काटकर पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि से वीरों के हृदय को विर्दीण कर दिए । उस ध्वनि को सुनकर मुर दैत्य जगा । अब तक वह जल में सो रहा था। उसके पाँच मुख थे । उसका प्रलय कालीन सूर्य के समान भयंकर रूप था । वह त्रिशूल लेकर भगवान् की ओर झपटा तथा गरुड़ के ऊपर त्रिशूल का प्रहार किया; किन्तु श्रीभगवान् ने अपने बाण के प्रहार से त्रिशूल को तीन टुकड़ों में तोड़ दिया और मुर दैत्य के मुख को बाणों से भर दिया । वह श्रीभगवान् पर गदा का प्रहार किया किन्तु भगवान् ने अपनी गदा के प्रहार से उनकी गदा को चूर-चूर कर दिया और उसके पाँचों सिरों को चक्रे से काट दिया । मरा हुआ वह राक्षस जल में गिर पड़ा ।

मुर दैत्य के मरने के बाद उसके सात पुत्रों को सेनापति बनाकर भौमासुर ने सेना के साथ भेजा किन्तु भगवान् ने उन सबों को अपने बाणों के प्रहार से विनष्ट कर दिया । इसके पश्चात् जब भौमासुर ने देखा कि श्रीकृष्ण भगवान् हमारी सेना को मार डाले तो वह विशाल हाथियों की सेना लेकर भगवान् के साथ युद्ध करने के लिए आया । उसने देखा कि भगवान् अपनी पत्नी के साथ अकाश में गरुड़ पर सवार हैं । वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने भगवान् के ऊपर शतघ्नी नामक शक्ति का प्रहार किया तथा उसके सभी सैनिक भी भगवान् पर अपने अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करने लगे; किन्तु श्रीभगवान् अपने बाणों से उन सबों के अस्त्र-शस्त्रों को काटकर भौमासुर के सैनिकों का विनाश करने लगे । गरुड़जी ने अपने पंखों के प्रहार से भौमासुर के समस्त हाथियों को भयभीत कर दिया । वे सब के सब भाग गये । इसके बाद अकेला भौमासुर बच गया । उसने गरुड़ के ऊपर भयंकर शक्ति का प्रहार किया; किन्तु गरुड़जी उससे थोड़ा सा भी विचलित नहीं हुए । इसके बाद उसने श्रीभगवान् को मारने के लिए त्रिशूल उठाया; किन्तु उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने भौमासुर का सिर चक्र से काट दिया। यह देखकर सभी असुर हाय-हाय करने लगे तथा ऋषियों ने भगवान् श्रीकृष्ण का जय-जयकार मनाया । इसके बाद पृथिवी देवी आकर भगवान् के गले में वैजयन्ती की बनमाला पहनायीं । इसके पश्चात् उन्होंने अदितिदेवी का कुण्डल, वरुण का छत्र तथा एक महामणि श्रीभगवान् को उन्होंने समर्पित किया । इसके बाद पृथिवी देवी ने श्रीभगवान् की स्तुति की । अपनी स्तुति का उपसंहार करते हुए उन्होंने कहा–

तस्यात्मजोऽयं तव पादपंकजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत्पालयैनं कुरु हस्तपंकजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ।।

(भा० १०/५९/३१)

शरणागत-भयभंजन प्रभो ! यह भौमासुर का पुत्र भगदत्त है । इसको मैं आपके शरण में ले आयी हूँ । यह अत्यन्त भयभीत है आप इसकी रक्षा करें । इसके सिर पर आप सम्पूर्ण संसार के संताप को विनष्ट करने वाले अपने हाथों को रख दीजिए । पृथिवी देवी की प्रार्थना को सुनकर भगवान् ने भगदत्त को अभय प्रदान किया और वे भौमासुर के भवन में प्रवेश किए ।

तत्र राजन्यकन्यानां षटसहस्राधिकायुतम् ।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ।।
तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ।।
(भा० १०/५९/३३-३४)

वहाँ जाकर श्रीभगवान् ने देखा कि भौमासुर ने बलपूर्वक राजाओं से सोलह हजार राजकुमारियों को छीनकर अपने यहाँ रख छोड़ा था । जब उन राजकुमारियों ने अन्तःपुर में आये हुए नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण को देखा तब वे मोहित हो गयीं और उन्होंने उनकी अहैतुकी कृपा तथा अपना सौभाग्य समझकर भगवान् को मन ही मन अपने पति के रूप में वरण कर लिया । श्रीभगवान् ने भी उन समस्त राजकुमारियों को सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाकर तथा पालकी में बैठाकर द्वारका भेज दिया । वहाँ से श्रीभगवान् ने अतुल सम्पत्ति के साथ-साथ चार दाँत वाले चौसठ हाथियों को भी द्वारका भेजा ।

इसके बाद भगवान् इन्द्र की पुरी अमरावती गये । वहाँ इन्द्र ने उनकी पूजा की और श्रीभगवान् ने अदिति माता को उनका कुण्डल लौटाया । वहाँ से चलते समय श्रीभगवान् सत्यभामाजी की प्रेरणा से इन्द्रदि देवता को पराजित कर कल्पवृक्ष को उखाड़कर गरुड़ पर रख लिया और लाकर सत्यभामाजी के बगीचे में लगा दिया ।

इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने एक ही मुहूर्त में अलग-अलग भवन में अलग-अलग रूप धारण कर सभी राजकुमारियों का पाणिग्रहण किया । श्रीभगवान् अपनी सभी पत्नियों का समान रूप से समादर करते थे । वे सब-के-सब लक्ष्मी जी का अंश थी । वे सब श्रीभगवान् की सेवा भाव विभोर होकर किया करती थीं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण रुक्मिणी संवाद

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा– श्रीभगवान् तो सम्पूर्ण जगत् के रक्षक एवं परम पिता हैं । वे एक बार श्रीरुक्मिणीजी के पलंग पर बैठे हुए थे और रुक्मिणीजी अपनी सखियों के साथ उनकी सेवा में लगी थीं । श्रीरुक्मिणीजी का भवन तो समस्त सुखद सामग्रियों से समृद्ध था । सुगन्धित पुष्पों की माला चारो ओर लटक रही थी । उपवन में लगे पारिजात पुष्प की सुगन्धि लिए हुए वायु चल रही थी; रुक्मिणीजी अपने हाथ में सुन्दर चँवर लेकर श्रीभगवान् को चँवर झल रही थीं । रुक्मिणीजी की शोभा ऐसी थी कि श्रीभगवान् के मानसिक प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी । श्रीभगवान् ने अनुभव किया कि रुक्मिणीजी तो हमारी अनन्य प्रेयसी हैं । उन्होंने बड़े ही प्रेम से मुस्कुराते हुए श्रीरुक्मिणी जी से कहा– रुक्मिणीजी आपके पिता तो आपका विवाह ऐश्वर्य सम्पन्न, उदार तथा सुन्दर पुरुषों से करना चाहते थे । उन्होंने आपको शिशुपाल को देने का वाग्दान भी दे दिया था । वे राजा इतने सम्पन्न थे कि उनसे मेरी तुलना नहीं हो सकती । न जाने क्यों तुमने मेरा ही वरण किया । जरासंध से डरकर हमने समुद्र में अपनी नगरी बसायी है । हम सिंहासन के अधिकार से भी वंचित हैं। हम लौकिक व्यवहार का भी ठीक-ठाक पालन नहीं करते हैं और न तो स्त्रियों को अनुनय विनय द्वारा आकृष्ट करना ही जानते हैं । हम तो अकिञ्चन हैं और अकिञ्चनों के प्रिय हैं। इसीलिए अपने को धनी समझने वाले लोग हमसे प्रेम नहीं करते हैं । मनुष्य को चाहिए कि अपने समान धन और कुल वालों से विवाह संबन्ध करे । हम तो तुम्हारे पिता के समान नहीं थे । तुम्हारे सामने भिक्षुओं ने मेरी प्रशंसा कर दी और तुमने मेरा वरण कर लिया । यदि तुम चाहो तो अब भी अपने अनुकूल शिशुपाल, शाल्व इत्यादि राजाओं में से किसी को भी

अपना पति बना सकती हो मेरा इसमे कोई भी विरोध नहीं होगा । हम स्त्री, सन्तान, धन इत्यादि के लोलुप नहीं हैं ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि रुक्मिणीजी को यह अभिमान था कि मैं ही श्रीभगवान् की प्रियतमा हूँ । इसी गर्व को दूर करने लिए भगवान् ने ऐसी बात कहा था । रुक्मिणीजी ने श्रीभगवान् की कभी भी ऐसी अप्रिय वाणी नहीं सुनी थीं । वे भीतर से डर गयीं उनके आँखों से आँसू बहने लगा । वे चिन्तामग्न हो गयीं और एकाएक बेहोश होकर पृथिवी पर गिर गयीं तथा उनके हाथ से चँवर छूट गया । यह देखकर श्रीभगवान् का हृदय करुणा से भर गया । और–

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ।
केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना ।।
प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ।
आश्लिष्य बाहुना राजनन्यविषयां सतीम् ।।

(भा० १०/६०/२६-२७)

चार भुजाओं वाले वे भगवान् उसी समय पलंग से उतर पड़े । श्री रुक्मिणीजी के खुले हुए केशों को बाँधकर अपने शीतल कर कमलों से उनका मुँह पोछे । श्रीभगवान् ने उनके नेत्रों के आँसू तथा आँसू से भींगे हुए स्तनों को पोंछ दिए तथा अपने में अनन्य भाव रखने वाली रुक्मिणीजी को बाँहों में भरकर अपनी छाती से लगा लिए । उन्होंने हृदय की प्रौढ़ि को न जानने वाली रुक्मिणीजी को सान्त्वना प्रदान किया । उन्होंने कहा कि मैंने तो तुम्हारी बातों को सुनने के लिए इस तरह की बातें कहा था । मैं जानता हूँ कि तुम मेरी एकमात्र परायणा हो । गार्हस्थ में तो सारा समय काम धंधों में ही बीत जाता है । थोड़े समय अर्द्धांगिनी की परिहासमयी वाणी को सुनना भी जरुरी है । अब रुक्मिणी जी ने जान लिया कि श्रीभगवान् ने हँसी किया था तो वे मुस्कुराने लगीं और बोलीं–

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह
यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः ।
क्वाहं गुण प्रकृतिरज्ञगृहीत पादा ।।

(भा० १०/६०/३४)

भगवन् आपने ठीक ही कहा है कि ऐश्वर्य आदि अनन्त गुणों से युक्त आपके अनुरूप मैं नहीं हूँ । आपकी समानता मैं किसी भी प्रकार नहीं कर सकती हूँ । आप अपनी अखण्ड महिमा में स्थित हैं । ब्रह्मा आदि देवता आपकी सेवा करते हैं और कहाँ मैं तीनों गुणों के अनुसार स्वभाव वाली हूँ । हमारी सेवा तो कामनाओं के पीछे भटकने वाली अज्ञानी जीव ही करते हैं । अतएव आप के समान मैं कैसे हो सकती हूँ । आप तीनों गुणों से ऊपर उठकर अन्तःकरण रूपी समुद्र में छिपे हुए हैं; यह वास्तविकता ही हैं । इस प्रकार से श्रीरुक्मिणीजी ने श्रीभगवान् के समस्त बातों का युक्ति-युक्त भक्तिभाव पूर्ण शास्त्रोचित उत्तर विस्तार के साथ देकर उनसे प्रार्थना किया–

अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग,
आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्त दृष्टेः ।
यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोतिमात्रो
मामीक्षसे तदु ह नः परमानुकम्पा ।।
(भा० १०/६०/४६)

कमल नयन आप आत्माराम हैं । मैं सुन्दरी अथवा गुणवती हूँ इन बातों पर आपकी दृष्टि नहीं जाती है । अतएव आपका उदासीन रहना स्वाभाविक ही है । फिर भी आपके चरण कमलों में मेरा सुदृढ़ अनुराग हो यही मेरी अभिलाषा है । जब आप संसार की अभिवृद्धि के लिए उत्कट रजोगुण स्वीकार करके मेरी ओर देखते हैं तो वह भी आपका परम अनुग्रह ही है ।

श्रीरुक्मिणीजी की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने कहा कि तुम्हारी इन्हीं बातों को सुनने के लिए मैंने ऐसा कहा था । तुमने मेरी बातों की जो व्याख्या की है वह अक्षरशः सत्य है । तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो और तुम्हारा मेरे प्रति अनन्य प्रेम है, यह मैं जानता हूँ । तुम्हारा प्रेम तथा पातिव्रत्य भी मैं अच्छी तरह से जानता हूँ ।

मां प्राप्य मानिन्यपवर्ग सम्पदम्
वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम् ।
ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां
मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ।।
(भा० १०/६०/५३)

मानिनि प्रिये ! मैं मोक्ष तथा सम्पूर्ण सम्पदाओं का स्वामी हूँ । मुझको भी प्राप्त करके जो लोग लौकिक भोग के साधन सामग्रियों को ही प्राप्त करने की कामना करते हैं तथा मेरी भक्ति नहीं चाहते वे महा अभागे हैं । क्योंकि विषय का सुख तो नरक में तथा नरक के ही समान शूकर आदि योनियों में भी प्राप्त होता है । किन्तु इससे उन्हें नरक में नहीं जाना पड़ता है । तुमने मेरी निरन्तर सेवा की है । इससे कर्मों के बन्धन टूटते हैं । तुमने दूत के द्वारा गुप्त सन्देश भेजा था उस समय मेरे पहुँचने में देर देखा तो तुम्हे सारा संसार सूना प्रतीत होने लगा था और अपना शरीर केवल मेरे ही योग्य जानकर मेरे न मिलने पर तुमने अपना शरीर त्याग का संकल्प कर लिया था । तुम्हारे इस सर्वोच्च प्रेम का हम स्वागत करते हैं । इसके पश्चात् श्रीभगवान् श्रीरुक्मिणीजी तथा अपनी अन्य पत्नियों के साथ गार्हस्थ मर्यादा का पालन करते रहे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

एकसठवाँ अध्याय

श्रीभगवान् की सन्तति का वर्णन तथा अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का मारा जाना

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित से कहा कि श्रीभगवान् की प्रत्येक पत्नियों के गर्भ से दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए । वे सब-के-सब रूप तथा बल आदि समस्त गुणों में अपने पिता के ही समान थे । सभी पत्नियाँ मानती थीं कि मैं ही श्रीभगवान् की सर्वाधिक प्रियतमा हूँ । अतएव श्रीभगवान् हमारे भवन को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते हैं । वास्तविकता यह है कि वे अपने प्रियतम श्रीभगवान् को तत्त्वतः जानती ही नहीं थीं । वे सर्वदा भगवान् के सौन्दर्य पूर्ण मुखकमल आदि को देखकर सदा मोहित रहती थीं । वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के चित्त का आकर्षण करने में सदा विफल रहती थीं । वे सर्वदा भगवान् की सेवा में लीन रहती थी ।

भगवान् श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ थी । उनके पुत्रों के नाम क्रमशः इस प्रकार है । प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, चारुगुप्त,भद्रचारु, चारुचान्द, विचारु एवं चारु ये दस पुत्र रुक्मिणी के थे । भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान, चन्द्रभानु, बृहदभानु, अतिभानु, श्रीभानु तथा प्रतिभानु ये सत्यभामाजी के दस पुत्र थे । जाम्बवतीजी के पुत्रों का नाम था– साम्ब, सुमित्र, पुरुजित् , शतजित्, सहस्त्रजित विजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविड और क्रतु । इसी तरह नग्नजीती सत्या के दस पुत्र वीर, चन्द्र, अश्वसेन इत्यादि थे । श्रुति, कवि इत्यादि कालिन्दी के दस पुत्र थे । लक्ष्मणाजी के पुत्रों का नाम प्रघोष, गात्रवान् इत्यादि था । मित्रविन्दाजी के दस पुत्रों का नाम था- वृक, हर्ष, अनिल इत्यादि । संग्रामजित इत्यादि दस पुत्र भद्राजी के थे।

रुक्मिणीजी के पुत्र प्रद्युम्नजी की दो पत्नियाँ थी मायावती तथा रुक्मवती । रुक्मवती के पुत्र अनिरुद्धजी थे । रुक्मवती रुक्मी की पुत्री थी । रुक्मवती ने स्वयम्बर में प्रद्युम्नजी को वरमाला पहना दी । अकेले ही प्रद्युम्नजी ने समस्त राजाओं को पराजित करके रुक्मवती को लाये । रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए रुक्मी ने रुक्मवती का विवाह प्रद्युम्न से कर दिया । रुक्मिणीजी की एक पुत्री चारुमती थी । उसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र बली से हुआ । रुक्मी ने रुक्मिणी के पौत्र अनिरुद्ध के साथ अपनी पौत्री रोचना का विवाह कर दिया । अनिरुद्ध के विवाह में श्रीकृष्ण, बलरामजी इत्यादि भी गये थे । राजाओं ने रुक्मी से कहा कि तुम चौसर खेलकर बलरामजी को जीत लो । बलरामजी को चौसर खेलने का बड़ा शौक था; किन्तु वे खेलने में निपुण नहीं थे । रुक्मी ने ऐसा ही किया और बलरामजी को जीत लिया । बलरामजी के हार जाने पर कलिङ्ग नरेश ने उन्हें दाँत दिखाकर चिढ़ाया यह बलरामजी से बर्दास्त नहीं हुआ । इसके बाद रुक्मी ने एक लाख मुहरों का दाव लगाया और उसे बलरामजी ने जीत लिया । उसके बाद बलरामजी ने दस करोड मुहर का दाव लगाया और वे जीत गये । किन्तु रुक्मी कहने लगा कि मैं ही जीता हूँ और कलिङ्ग नरेश आदि ने उसी का समर्थन कर दिया । किन्तु आकाशवाणी हो गयी कि बलरामजी जीते हैं । इस आकाशवाणी का तिरस्कार करके सभी रुक्मी के साथ बलरामजी की हंसी करने लगे । उससे बलरामजी रुष्ट हो गये

और अपनी गदा के एक ही प्रहार में रुक्मी को मार डाले । फिर उन्होनें कलिङ्ग नरेश का दाँत तोड़ दिया । इसके बाद सभी यदुवंशी रोचना को लेकर द्वारका चले आये ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बासठवाँ अध्याय

उषा और अनिरुद्ध का मिलन

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि महात्मा बलि के सौ पुत्र थे । उनमें बड़े पुत्र का नाम बाण था । वह भगवन् शंकर का भक्त तथा उदार था। उसकी प्रतिज्ञा अटल होती थी । वह शोणित पुर नामक नगरी का राजा था । भगवान् शंकर की कृपा से इन्द्र इत्यादि देवता उसके यहाँ नौकर के समान काम करते थे । उसकी एक हजार भुजाएँ थीं । एक बार भगवान् शंकर जब ताण्डव नृत्य कर रहे थे तब उसने अपने एक हजार हाथों से अनेक प्रकार के बाजों को बजाया । उससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने कहा तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर माँग लो । बाणासुर ने कहा भगवान् आप हमारी रक्षा करते हुए यहीं निवास करें ।

एक दिन बाणासुर ने भगवान् शंकर के चरणों में सिर से प्रणाम करके कहा– भगवन् आपने मुझे एक हजार भुजाएँ दी हैं । वे अब भार स्वरूप हो रही हैं । मैं किससे युद्ध करूँ । आपको छोड़कर कोई योद्धा नहीं दिखाई दे रहा है । मैंने दिग्गजों से लड़ना चाहा तो वे भाग गये । मैं किससे युद्ध करूँ । भगवान् शंकर ने कहा दुष्ट जब तेरी ध्वजा टूटकर गिर जायेगी तो उस समय मेरे ही समान योद्धा लड़कर तुम्हारा धमंड चूर-चूर कर देगा । यह सुनकर बाणासुर घर लौट गया और ध्वजा टूटने की प्रतीक्षा करने लगा ।

बाणासुर की कुमारी कन्या का नाम ऊषा था । उसने एक दिन स्वप्न में अनिरुद्ध को देखा और स्वप्न में ही उन्हें देखकर जब जगी

तो बोल उठी प्राणप्यारे तुम कहाँ हो । जब उसने देखा कि वह सखियों के बीच में बैठी है तो वह लज्जित हो गयी । बाणासुर के मन्त्री का नाम कुम्भाण्ड था । उसकी पुत्री का नाम चित्रलेखा था । ऊषा से चित्रलेखा ने कौतूहलवशात् पूँछा राजकुमारी तुम किसे ढूँढ रही हो । उषा ने चित्रलेखा से कहा–

दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ।
पीतवासा बृहद्वाहुः योषितां हृदयं गमः ।।
तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाधरं मधु ।
क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां बृजिनार्णवे ।।

(भा० १०/६२/१६-१७)

मैंने स्वप्न में एक श्याम वर्ण के पुरुष को देखा है । उसके नेत्र कमल के समान थे । पिताम्बर धारी तथा लम्बी भुजाओं वाला वह पुरुष स्त्रियों के चित्त को चुराने वाला था । उसने अपने अधरों का मधु मुझे पिलाया और मैं उसे पीकर तृप्त भी नहीं हुई कि वह मुझे दुःख सागर में डालकर न जाने कहाँ चला गया । मैं तरसती ही रह गयी । मैं उसे ढूँढ रही हूँ ।

चित्रलेखा ने कहा यदि तुम अपने प्राणबल्लभ को पहचान सकी और वह पुरुष यदि त्रिलोक में होगा तो मैं उसे तुम्हारे पास अवश्य लाऊँगी । इसके पश्चात् वह देव, किन्नर, गन्धर्व आदि के चित्र बनाने के पश्चात् यदुवंशियों का चित्र बनाने लगी । तथा जब उसने अनिरुद्धजी का चित्र बनाया तो ऊषा उस चित्र को देखकर लज्जा से लाल हो गयी और कहा ये ही हमारे प्राणबल्लभ हैं । चित्रलेखा योगिनी थी । वह आकाश मार्ग से रात्रि में द्वारका में जाकर पलंग पर सोए अनिरुद्धजी को उठाकर शोणित पुर लायी और उषा अनिरुद्ध का मिलन करा दिया ।

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना ।
दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्रद्युम्निना समम् ।।

(भा १०/६२/२४)

अपने परम सुन्दर प्राण प्रियतम को पाकर उसका मुख आनन्द से प्रफुल्लित हो गया । वह अपने महल में अनिरुद्धजी के साथ बिहार करने लगी । उसका महल इतना सुरक्षित था कि उसकी ओर कोई भी पुरुष जा नहीं सकता था । उन दोनों का प्रेम निरन्तर बढ़ता गया ।

उषा हर प्रकार से अनिरुद्ध का सत्कार करती थी । वे उस कन्या के साथ बहुत दिन तक वहीं बिहार करते रहे । उन्हें इस बात का भी पता नहीं था कि मुझे यहाँ आये कितने दिन हो गये ।

अनिरुद्ध के संबन्ध से उषा में ऐसे लक्षण आ गये थे कि कोई भी देखकर यह समझ सकता था कि अब यह कुमारी नहीं है । पहरेदारों ने उसे देखकर समझ लिया कि ऊषा का किसी न किसी पुरुष से सम्बन्ध अवश्य है । उन सबों ने इसकी सूचना बाणासुर को दी ।

बाणासुर ने जब अपनी पुत्री ऊषा के दूषित होने का समाचार सुना तो उसे बड़ा कष्ट हुआ । वह ऊषा के महल में गया तो देखा—

कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ।
बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा, स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ।।
दिव्यन्तमक्षैः प्रिययाभिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुंकुमस्रजम् ।
बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिाकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ।।

(भा० १०/६२/३१-३२)

अनिरुद्धजी कामावतार प्रद्युम्नजी के पुत्र थे । त्रिभुवन में उनके जैसा सुन्दर और कोई नहीं था । उनका वर्ण श्याम था, पीताम्बर धारण किये थे; उनके नेत्र कमल दल के समान थे । भुजाएँ लम्बी थीं और मुखपर काली घुंघराली अलकें लटकी थीं । कानों में कुण्डल चमक रहे थे । तथा मुख पर मुस्कुराहट विखर रही थी । उस समय अनिरुद्धजी सज-धज कर बैठी हुई ऊषा के साथ पासा खेल रहे थे। उनके गले में वासन्ती बेला के पुष्पों का हार सुशोभित हो रहा था । उस हार में ऊषा के अंग का सम्पर्क होने से उसके वक्षःस्थल का केशर लगा हुआ था । उन्हें ऊषा के सामने ही बैठा देखकर बाणासुर चकित हो गया । अनिरुद्धजी ने देखा कि बाणासुर बहुत सैनिक लेकर उनको पकड़ना चाहता है तो उन्होंने एक लोहे का परिध उठा लिया । उसी से वे बाणासुर के सैनिकों का विनाश करने लगे । अन्त में बाणासुर ने उन्हें नागपाश में बाँध लिया । उनको बाँधा हुआ जानकर ऊषा को बड़ा ही कष्ट हुआ ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध
का बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तिरसठवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के साथ बाणासुर का युद्ध

श्रीशुकदेवजी ने कहा– बरसात के चार महीने बीत गये; किन्तु अनिरुद्धजी का कहीं पता नहीं चला । जब लोगों ने नारदजी के मुख से सुना कि अनिरुद्धजी बाणासुर के गृह में कैद हैं; तो सभी यदुवंशी बारह अक्षौहिणी सेना को लेकर आये और चारो ओर से शोणितपुर को घेर लिये । जब बाणासुर ने यह जाना कि यदुवंशियों की सेना नगर के परकोटों, सिंहद्वारों तथा उपवनों इत्यादि को विनष्ट कर रही है तो वह भी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगर के बाहर लड़ने के लिए निकल पड़ा ।

बाणार्थे भगवान् रुद्रो ससुतैः प्रमथैर्वृतः ।
आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ।।
आसीत् सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
कृष्णशंकरयोः राजन् प्रद्युम्नगुहयोरपि ।।
(भा० १०/६३/६-७)

बाणासुर की ओर से साक्षात् भगवान् शिव नन्दी नामक वृषभ पर सवार होकर अपने पुत्र कार्तिकेय तथा गणों के साथ युद्ध भूमि में आये और भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी से युद्ध किए । राजन् वह युद्ध अत्यन्त भयंकर था । उसे देखकर रोंगंट खड़े हो जाते थे । भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् शिव से तथा प्रद्युम्नजी का कार्तिकेयजी से युद्ध होने लगा । बाणासुर से सात्यकि तथा बाणासुर के पुत्र से साम्ब युद्ध करने लगे । इस युद्ध को देखने के लिए ब्रह्माजी इत्यादि देव गण, मुनिगण, सिद्ध एवं चारण भी आये । भगवान् श्रीकृष्ण ने बाणों की वर्षा करके भगवान् शिव के गण, भूत, प्रेत, पिशाच इत्यादि को भगा दिया । भगवान् शंकर जिन-जिन अस्त्रों का प्रयोग करते भगवान् श्रीकृष्ण उसके विरोधी अस्त्र से उसे शान्त कर दिया करते थे । भगवान्

श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र से, वायव्यास्त्र को पर्वतास्त्र से, आग्नेयास्त्र को पार्जन्यास्त्र से तथा पाशुपतास्त्र को वैष्णावस्त्र से शान्त कर दिया तथा जृम्भाणास्त्र का प्रयोग करके उन्होंने शंकरजी को मोहित कर दिया और बाणासुर की सेना को विनष्ट करने लगे । बाणासुर ने देखा कि उसकी सेना भाग रही है तो बाणासुर सात्यकि को छोड़कर रथ पर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्ण पर टूट पड़ा तथा एक ही साथ पाँच सौ धनुष पर दो-दो बाण चढाया किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण एक ही साथ उसके सभी धनुष काट दिए उसके सारथि, रथ तथा घोड़ों को भी मार दिए ।

तन्माता कोटारानाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ।
पुरोऽवस्तथे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ।।
(भा० १०/६३/२०)

उस समय बाणासुर की माता कोटरा अपने पुत्र के प्राण की रक्षा करने के लिए बाल खोलकर तथा नंगी होकर भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष आकर खड़ी हो गयी । उसे सामने देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपना मुख पीछे कर लिए और बाणासुर भी अपनी नगरी में प्रवेश कर गया । उधर भूतों के भग जाने पर तीन सिर तथा तीन पैरों वाला शंकर ज्वर भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा । उसी समय वैष्णव ज्वर उस पर टूट पड़ा । वैष्णव ज्वर के तेज से पीड़ित होकर शंकर ज्वर चिल्लाने लगा और श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहने लगा ।

तप्तोऽहंते तेजसा दुःसहेन, शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ।
तावत्तापो देहिनां तेंऽघ्रिमूलं, नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः ।।
(भा० १०/६३/२८)

प्रभो ! आपके शान्त, उग्र तथा अत्यन्त भयानक दुःसह तेज ज्वर से मैं अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ । भगवन् देहधारी जीवों को तब तक ही संताप रहता है, जब तक वे आशा के फँदे में फँसकर आपके चरण कमलों को शरण रूप से नहीं अपनाते हैं । श्रीभगवान् ने उस त्रिशारा ज्वर को अभय प्रदान करते हुए कहा कि जो कोई भी हम दोनों के संवाद का स्मरण करेगा उसे तुम्हारा भय नहीं होगा । इसके पश्चात् वह माहेश्वर ज्वर प्रणाम करके चला गया । उधर बाणासुर भी दूसरे रथ पर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए आ गया और

श्रीभगवान् पर वाणों की वर्षा करने लगा । श्रीभगवान् भी उसकी भुजाओं को चक्र से काटने लगे । बाणासुर की कटती हुई भुजाओं को देखकर भगवान् शंकर श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ।

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योति गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ।।
(भा १०/६३/३४)

प्रभो ! आप वेद मन्त्रों में छिपे हुए वेदों के तात्पर्य स्वरूप परम ज्योति परब्रह्म हैं । शुद्ध हृदय वाले महात्मागण आपके आकाश के समान सर्वव्यापक तथा निर्मल रूप का साक्षात्कार करते हैं । सारा जगत् आपका शरीर है तथा आप सम्पूर्ण जगत् में आत्मारूप से विद्यमान हैं । आपकी माया से मोहित होकर सभी जीव देह तथा गेह में आसक्त होकर अनेक प्रकार के कष्टों का अनुभव करते रहते हैं तथा सकल कष्ट निवारक आपके चरणों को शरण रूप से नहीं अपनाते हैं। ऐसे जीव सचमुच में आत्मवंचक एवं आत्मघाती हैं । अपने बारह श्लोकों की स्तुति का उपसंहार करते हुए भगवान् शंकर ने कहा–

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती, मयाभयं दत्तममुष्य देव ।
सम्पाद्यतां तद्भवतः प्रसादो, यथाहि ते दैत्यपतौ प्रसादः ।।
(भा० १०/६३/४५)

प्रभो ! यह बाणासुर मेरा परम प्रिय कृपापात्र तथा सेवक है । मैंने इसे अभय प्रदान किया है । प्रभो ! जिस प्रकार आपकी कृपा दैत्य राज प्रह्लाद पर है उसी तरह इस पर भी आप कृपा करें । यह सुन भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा आपकी इच्छा के ही अनुसार मैं भी इसे अभय प्रदान कर रहा हूँ । यह दैत्यराज बलि का पुत्र है । मैंने प्रह्लाद को वरदान दिया था कि मैं तुम्हारे वंश वालों का वध नहीं करूँगा । इसका अभिमान दूर करने के लिए इसकी भुजाओं को मैंने काट दिया । अब इसकी चार भुजाएँ बची हैं । यह अजर-अमर होकर आपके पार्षदों में मुख्य होगा ।

इसके पश्चात् बाणासुर ने श्रीभगवान् को प्रणाम किया तथा ऊषा एवं अनिरुद्ध को रथ में बैठाकर श्रीभगवान् के पास लाया । श्रीभगवान् भी भगवान् शंकर से विदा माँगकर अनिरुद्ध एवं ऊषा के साथ द्वारका

आये । द्वारकापुरी में उत्सव मनाया जा रहा था । श्रीभगवान् अपनी राजधानी में प्रवेश किए । जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर भगवान् शंकर एवं भगवान् श्रीकृष्ण के युद्ध एवं उनके विजय का स्मरण करता है उसका पराजय नहीं होता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौसठवाँ अध्याय

राजा नृग की कथा

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि एक दिन साम्ब, चारुभानु आदि यदुवंशी राजकुमार घूमने के लिए उपवन में गए । बहुत देर तक खेल-खेलते हुए उन सबों को प्यास लगी । जल खोजते हुए वे एक कुएँ के पास गये । उसमें जल नहीं था किन्तु उसमें एक विशालकाय पर्वत के समान गिरगिट गिर पड़ा था । उन बालकों ने उसे कुएँ से बाहर निकालने का बड़ा प्रयास किया किन्तु नहीं निकाल पाए । उन सबों ने यह बात भगवान् श्रीकृष्ण से कहा । भगवान् ने अपने बाएँ हाथ से बिना प्रयास के ही उसे बाहर पकड़कर खींच लिया । भगवान् के करकमल के स्पर्श मात्र से वह अपना गिरगिट (कृकलास) का शरीर छोड़कर स्वर्गीय देवता के रूप में परिणत हो गया । उसका शरीर सुवर्ण के समान चमक रहा था । सिर पर किरीट विराजमान था । यद्यपि श्रीभगवान् सब कुछ जानते थे फिर भी उन्होंने उस पुरुष से पूछा—

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा, सम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ।
आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो, यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम्।।
(भा० १०/६४/८)

कल्याणमूर्ते ! आपको किस तरह के कर्म के फलस्वरूप इस योनि में आना पड़ा । वस्तुतः आप इस योनि के योग्य नहीं है । हम आपका वृत्तान्त जानना चाहते हैं, यदि आप उचित समझें तो हम लोगों

को अपना परिचय दें । यह सुनकर उस पुरुष ने अपना सिर झुकाकर श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम किया और कहने लगा–

प्रभो ! मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग हूँ । दानियों की गणना के प्रसंग में मेरा नाम अवश्य गिना जाता है । आप तो सर्वज्ञ हैं किन्तु आपकी आज्ञा के अनुसार मैं कह रहा हूँ । आकाश में जितने तारे हैं, पृथिवी पर जितने धूलिकण हैं; उतनी गायों को सजाकर मैंने ब्राह्मणों को दान दिया है । एक दिन संयोगवशात् जिस गाय को मैंने पहले दूसरे ब्रह्मण को दान दिया था वह गाय आकर मेरी गायों में मिल गयी । दूसरे दिन उस गाय को दूसरे ब्राह्मण को दान दिया । उस गाय को ले जाते हुए देखकर पहले ब्राह्मण ने कहा कि यह तो मेरी गाय है और दोनों आपस में विवाद करते हुए मेरे पास आये । पहले ब्राह्मण ने कहा– राजन् यह तो मेरी गाय है । आप तो दान दी हुई वस्तु का अपहरण करने वाले हैं । मैंने ब्राह्मण से कहा कि आप इस गाय को मुझे दे दें और इसके बदले में मुझसे एक लाख गाएँ ले लें । किन्तु ब्राह्मण नहीं माना और वहाँ से चला गया । इसके बाद मेरी मृत्यु हो गयी और यमदूत मुझे यमलोक ले गए । वहाँ पर यमराज ने कहा आपका पुण्य तो अनन्त है अतएव थोड़े से पाप का फल भोग लें और मैं अपने उसी पाप के फलस्वरूप गिरगिट होकर कुएँ में गिर पड़ा आज आपकी कृपा से मेरा उद्धार हो गया । श्रीभगवान् की स्तुति करने के पश्चात् राजा नृग तो देवलोक चले गए और श्रीभगवान् ने अपने युदवंशियों से कहा–

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ।
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वर मानिनाम् ।।
नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।
ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ।।

(भा० १०/६४/३२-३३)

जो लोग अग्नि के समान तेजस्वी हैं वे भी ब्रह्मणों का अल्यल्प धन हड़पकर नहीं पचा सकते हैं और जो लोग अभिमानवश झूठ-मूठ अपने को लोगों का स्वामी समझते हैं वे राजा उसे क्या पचा पायेंगे। मैं हलाहल विष को विष नहीं मानता हूँ क्योंकि उसकी चिकित्सा संभव है । वास्तविक विष तो ब्राह्मणों का धन है जिसकी कोई भी चिकित्सा

नहीं है । विष केवल खाने वाले को मारता है किन्तु ब्राह्मणों का धन तो खाने वाले के साथ-साथ उसके वंश को भी विनष्ट कर देता है । जो राजा ब्राह्मणों के धन को अपना लेता है उसे कुम्भीपाक जैसे नरक में जाना पड़ता है ।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।
षष्ठिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जयते कृमिः ।।
न मे ब्रह्मधनं भूयाद् यद् गृद्ध्वाल्पायुषो नराः ।
पराजिताश्चयुता राज्याद् भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ।।
(भा० १०/६४/३९-४०)

जो मनुष्य स्वयं दी हुई अथवा दूसरों की दी हुई ब्राह्मणों की जीविका के साधन का हरण कर लेतां है वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है । अतएव मैं चाहता हूँ कि ब्राह्मणों का धन भूलकर भी मेरे कोष में न आए । जो लोग ब्राह्मणों के धन को प्राप्त करना चाहते हैं वे इस जन्म में तो अल्पायु हो जाते हैं उनका राज्य शत्रु छीन लेते हैं और वे पराजित हो जाते हैं तथा मृत्यु के पश्चात् वे लोग दूसरों को कष्ट देने वाले सर्प ही होते हैं । अतएव यदि कोई ब्राह्मण अपकार भी करे तो आपलोग उसे नमस्कार ही करें उससे द्वेष न करें । मैं तो बड़ी ही सावधानी के साथ तीनों कालों में ब्राह्मणों को नमस्कार किया करता हूँ । आप लोग भी ऐसा ही किया करें । जो व्यक्ति मेरी इस आज्ञा का उलंघन करेगा उसे मैं कभी भी क्षमा नहीं करूँगा । इस प्रकार से द्वारकावासियों को यह अत्यन्त पवित्र उपदेश देकर श्रीभगवान् अपने महल में चले गए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
चौसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पैंसठवा अध्याय

श्रीबलरामजी का व्रजगमन

श्रीशुकदेवजी ने कहा– राजन् श्रीबलरामजी के मन में इच्छा थी कि मैं नन्दव्रज में जाकर वहाँ के लोगों से मिल आऊँ । वे रथ पर सवार होकर नन्दंव्रज आए । उन्हें अपने बीच आए हुए देखकर नन्दव्रज के लोग उनसे बड़े प्रेम से मिले । बलरामजी ने माता यशोदा और नन्दजी को प्रणाम किया और आशीर्वाद ग्रहण किया । इसके बाद वे अपने समवयस्कों के साथ बड़े प्रेम से मिले । जब बलरामजी शान्ति पूर्वक बैठ गए तो समस्त ग्वाल-बाल उनके पास आए । ये ग्वाल-बाल भगवान् श्रीकृष्ण के लिए अपना सब कुछ त्याग रखे थे । उन सबों ने श्रीबलरामजी से पूछा–

क्वचिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते ।
क्वचित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ।।

(भा० १०/६५/७)

बलरामजी हमारे बान्धव वसुदेव जी इत्यादि कुशल पूर्वक हैं न? अब आप लोग अपनी स्त्री, पुत्रों आदि के साथ रहते हैं क्या ? कभी आप लोगों को हमारी याद आती है ? आपलोगों ने पापी कंस को मार कर अपने सुहृद् संबन्धियों को कष्ट से बचा लिया । आपलोग अनेक शत्रुओं को मारकर अब सुरक्षित किले में निवास करते है यह भी बड़ी प्रसन्नता की बात है । गोपियाँ श्रीबलरामजी के प्रेम भरे चितवन से मानों कृतकृत्य हो गयीं । उन सबों ने हँसते हुए पूँछा कि क्या नगरनारियों के प्राण श्रीकृष्ण कुशलपूर्वक तो हैं ? क्या वे माता यशोदा का दर्शन करने के लिए कभी नन्दव्रज आयेंगे ? क्या उनको कभी हमारी भी याद आती है ? हमने श्रीकृष्ण के लिए सारा संसार छोड़ दिया वे श्रीकृष्ण हम लोगों को छोड़कर परदेश चले गए । कोई भी स्त्री

उनकी मीठी-मीठी बातों पर विश्वास कर लेगी । वे कहा करते थे– तुम लोगों के उपकार का बदला हम नहीं चुका सकते ।

कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो
वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः।
गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दर-
स्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ।।

(भा० १०/६५/१३)

एक गोपी ने कहा– बलरामजी हम तो गाँव की गवाँर गोपियाँ हैं, उनकी बातों में आ गयीं, किन्तु नगर की नारियाँ तो चतुर होती हैं वे तो चञ्चल एवं कृतघ्न कृष्ण की बातों में नहीं फँस सकती हैं । दूसरी गोपी ने कहा नहीं सखी । श्रीकृष्ण बात बनाने में अत्यन्त चतुर हैं । वे अत्यन्त मीठी-मीठी बातें बनाते हैं । उनकी सुन्दर एवं प्रेमपूर्ण मुस्कान तथा चितवन से नगर की नारियाँ भी काम के आवेश में उन्मत्त हो जाती होंगी तथा श्रीकृष्ण की बातों में फँसकर अपने को निछावर कर देती होंगीं । इसके पश्चात् तीसरी गोपी ने कहा–

कि नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ।
यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ।।

(भा० १०/६५/१४)

गोपियों इस प्रकार से श्रीकृष्ण की चर्चा करने से कौन सा लाभ है ? कोई दूसरी चर्चा चलाओ । यदि श्रीकृष्ण का हमलोगों के बिना समय बीत जाता है तो हमलोगों का भी उनके बिना समय बीत जायेगा। इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में अनेक प्रकार की बातें करती हुई गोपियाँ प्रेम विह्वल होकर रोने लगीं । श्रीबलरामजी ने श्रीकृष्ण के सन्देश को सुनाकर गोपियों को सन्त्वना प्रदान किया । वे बसन्त के दो महीने चैत्र एवं वैशाख नन्दव्रज में ही बिताए । वे गोपियों के प्रेम की अभिवृद्धि करते थे । वे चाँदनी रात में जब गोपियों के साथ यमुना के तट में बिहार कर रहे थे तो वरुण देव ने वहाँ पर वारुणी देवी को पर प्रेषित किया । वायु के साथ मधुर सुगन्ध का अनुभव करके बलरामजी वहाँ आये और वारूणी का पान किए । मदमत्त बलरामजी ने यमुना को जलक्रीड़ा करने के लिए आह्वान किया तो यमुना देवी ने सोचा इस समय ये मदमत्त है और यह सोचकर उनकी आज्ञा का

उन्होंने उल्लंघन कर दिया । यमुना को अपनी आज्ञा का उल्लंघन करते देखकर बलरामजी ने उनको अपने आयुध हल के अग्रभाग से खींचते हुए कहा–

पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽहुता ।
नेष्ये त्वां लांगलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ।।
(भा० १०/६५/२४)

पापिनि यमुने ! मेरे बुलाने पर भी तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके यहाँ नहीं आ रही है । तुम मेरा अपमान कर रही हो ? मैं अभी अपने हल के अग्र भाग से खण्ड-खण्ड करके तुम्हें स्वेच्छाचार का दण्ड दे रहा हूँ । बलरामजी के क्रोध से भयभीत होकर यमुना उनके चरणों पर गिर पड़ी और प्रार्थना करने लगीं कि प्रभो ! आप तो सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले हैं मेरी गलती माफ करें । बलरामजी ने यमुनाजी को क्षमा कर दिया । उन्होंने कई रात्रियों की बनी हुई उस रात्रि में गोपियों के साथ जलक्रीड़ा किया । जब बलरामजी यमुनाजी से बाहर निकले तो लक्ष्मीजी ने उन्हें हार पहना दिया । अनेक अलंकारों से अलंकृत बलरामजी की उस समय अत्यन्त शोभा हो रही थी । यमुनाजी आज भी बलरामजी के द्वारा खींचे हुई मार्ग से ही बहा करती हैं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छियासठवाँ अध्याय

पौण्ड्रक तथा काशिराज का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने कहा– जिस समय बलरामजी नन्दव्रज में गए हुए थे उसी समय करुष देश के अज्ञानी राजा पौण्ड्रक ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास एक दूत भेजकर कहलाया कि भगवान् वासुदेव मैं हूँ आप नहीं । इसका कारण यह था कि चापलूस लोग पौण्ड्रक से यह कहा करते थे कि वासुदेव तो आप ही हैं । इसीलिए पौण्ड्रक भी अपने

को वासुदेव मानने लगा था । जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका में विद्यमान थे; उसी समय वह दूत द्वारका की राजसभा में आया और भगवान् श्रीकृष्ण को पौण्ड्रक का सन्देश सुनाया ।

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापराः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ।।
यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ।
त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद् देहि ममाहवम् ।।

(भा० १०/६६/५-६)

एक मात्र मैं ही वासुदेव हूँ । मुझसे भिन्न दूसरा कोई वासुदेव नहीं है । प्राणियों पर कृपा करने के लिए मैंने ही अवतार ग्रहण किया है, तुम झूठ-मुठ का अपना नाम वासुदेव रख लिए हो, अब उसे छोड़ दो । यदुवंशी तुमने मूर्खतावश मेरे चिह्नों को धारण कर लिया है । उन्हें छोड़कर तुम मेरे शरणागत हो जाओ । यदि तुम्हें मेरी बात स्वीकार न हो तो मुझसे युद्ध करो । दूत की बातों को सुनकर सब लोग हँसने लगे । इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने उस दूत से कहा कि तुम अपने स्वामी से जाकर कह देना कि मैं अपना अस्त्र-शस्त्र तुम पर छोड़ूँगा । इससे तुम्हारा विनाश हो जायेगा । यह कहकर श्रीभगवान् दूत को लौटा दिए तथा स्वयम् काशी पर आक्रमण कर दिए । पौण्ड्रक तथा उसके मित्र दोनों अपनी-अपनी विशेष सेना लेकर भगवान् से युद्ध करने के लिए चल दिए । श्रीभगवान् ने उन दोनों की सेना को विनष्ट करके अन्त में पौण्ड्रक से कहा-- कि आज मैं तुम पर अपने अस्त्र-शस्त्र को छोड़ रहा हूँ । आज यदि तुम्हारे साथ युद्ध करने में मैं समर्थ नहीं हुआ तब मैं तुम्हारे शरण में आऊँगा । यह कहकर श्रीभगवान् ने अपने तीक्ष्ण बाणों से पौण्ड्रक के रथ को तोड़-फोड़ दिया और चक्र से पौण्ड्रक तथा काशीराज दोनों का सिर काट दिया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् द्वारका लौट गये सिद्धजन श्रीभगवान् के यश का गान कर रहे थे ।

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ।
बिभ्राणश्च हरे राजन् स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ।।

(भा० १०/६६/२४)

पौण्ड्रक वैर भाव से रात-दिन भगवान् का चिन्तन किया करता था, इससे उसके समस्त बन्धन टूट गये थे, और वह श्रीभगवान् के सारुप्य को प्राप्त कर लिया । इधर लोगों ने काशी द्वार पर काशिराज

के कुण्डल किरीटमण्डित कटे हुए सिर को देखकर सोचा कि न जाने यह किसका सिर है । जब उन लोगों ने यह जाना कि यह सिर राजा का ही है तो वे विलाप करने लगे ।

इधर काशिराज के पुत्र सुदक्षिण ने अपने पिता के और्ध्वदैहिक क्रिया को सम्पन्न करके सोचा कि मैं अपने पिता को मारने वाले व्यक्ति श्रीकृष्ण का विनाश करके रहूँगा । वह अपने पुरोहित इत्यादि के साथ भगवान् शिव की आराधना करने लगा । भगवान् शंकर ने कहा कि तुम दक्षिणाग्नि की आराधना करो । उससे निकले हुए पुरुष का प्रयोग यदि किसी ब्राह्मण द्रोही पर करोगे तो तुम उसका विनाश कर दोगे। इसके पश्चात् सुदक्षिण अपने पुराहितों को लेकर दक्षिणाग्नि की आराधना अभिचार विधि से करने लगा । अनुष्ठान की समाप्ति हो जाने पर उस अग्नि से भीषण अग्नि प्रकट हुआ । उसका विशाल एवं भयंकर शरीर था । वह अपने मुख के दोनों कोनों को अपनी चंञ्चल जीभ से चाट रहा था । वह शीघ्रता से द्वारका की ओर चला । द्वारका के लोग उस भयंकर अग्नि की मूर्ति को देखे तो डर गये और अपने गृहों में प्रवेश कर गये और भगवान् से अपनी रक्षा की भीख माँगने लगे। श्रीभगवान् उस समय चौसर खेल रहे थे । वे जान गये कि यह माहेश्वरी कृत्या है । उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र को उस कृत्या का मर्दन करने के लिए आदेश दिया । श्रीसुदर्शन चक्र ने उस कृत्या को परास्त कर दिया । वह कृत्या पेरास्त होकर लौटी तथा काशिराज के पुत्र सुदक्षिण को भस्म कर दी । उस समय काशी अत्यन्त समृद्ध नगरी थी। चक्रराज अपने प्रलयकालीन सूर्य के समान तेज के द्वारा उस काशी नगरी को जलाकर भस्म कर दिये । उसके पश्चात् वे लौटकर भगवान् श्रीकृष्ण के पास चले आये ।

य एतच्छ्रावयेन् मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ।
समाहितो वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
(भा० १०/६६/४३)

जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के उस पराक्रम को किसी को सुनाता अथवा स्वयं श्रवण करता है, उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध
का छियासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सड़सठवाँ अध्याय

द्विविद का उद्धार

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से कहा– प्रभों ! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि इसके पश्चात् श्रीभगवान् श्रीकृष्ण ने तथा बलरामजी ने कौन-कौन सा कार्य किया ? श्रीशुकदेवजी ने कहा कि भौमासुर का मित्र तथा मैन्द का भाई एक दिविद नाम का अत्यन्त पराक्रमी वानर था । उसने जब यह सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण ने भौमासुर का वध कर दिया तो उसने राष्ट्र में विप्लव करने का मन में ठान लिया । वह ग्रामों तथा नगरों में आग लगाकर जला देनें का कार्य करने लगा । वह कभी आनर्त देशों के नगरों पर पर्वत पटकर चूर-चूर कर देता था । भौमासुर को मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण आनर्त देश में ही रहते थे । उस वानर में दस हजार हाथियों का बल था । कभी वह आनर्त देश की स्त्रियों और पुरुषों को ले जाकर पर्वत की गुफाओं में बन्द कर देता था और उन्हें मार देता था । इस तरह से वह अनेक प्रकार का उत्पात करने लगा। एक बार वह संगीत की ध्वनि सुनकर रैवतक पर्वत पर गया ।

तत्राऽपश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमलिनम् ।
सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ।।

(भा० १०/६७/९)

वहाँ पर उसने देखा कि यदुवंश शिरोमणि श्रीबलरामजी मनोहर युवतियों के समुदाय में विद्यमान हैं । उनके प्रत्येक अंग सुन्दर एवं दर्शनीय थे । उनके वक्षःस्थल पर कमल की माला लटक रही थी । वे मधुपान करके सुन्दर संगीत गा रहे थे । उनके नेत्र आनन्दोन्माद से विह्वल हो रहे थे । उस समय वे मदमत्त गजराज के समान सुशोभित हो रहे थे । उसी समय वह वानर वहाँ आया और किलकारी मारकर हँसने लगा । स्त्रियाँ भी यह देखकर हँसने लगी । वह वानर बलरामजी

के सामने ही उन स्त्रियों की अनेक प्रकार से अवहेलना करने लगा। उस वानर की उस अभ्रद चेष्टा को देखकर बलरामजी ने उसकी ओर एक पत्थर फेंका; किन्तु वह वानर उस पत्थर से अपने को बचा लिया और बलरामजी के सामने से ही मधु कलश को उठाकर तोड़ दिया और स्त्रियों का वस्त्र भी फाड़ दिया। उस द्विविद वानर को अनेक प्रकार का उत्पात मचाते देखकर बलरामजी क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अपना अस्त्र हल और मुसल उठा लिया। वह द्रिवदि वानर भी एक पेड़ को उखाड़कर श्रीबलरामजी पर चलाया, किन्तु बलरामजी पहले ही उस वृक्ष को पकड़ लिए। उन्होंने अपने मूसल के प्रहार से द्विविद का सिर फाड़ दिया। किन्तु अपने सिर के फटने की परवाह न करके द्विविद बलरामजी पर वृक्षो से प्रहार करने लगा। श्रीबलरामजी भी उसके द्वारा फेंके गये वृक्षों को अपने मूसल के प्रहार से चूर-चूर कर देते थे। इस तरह वह सारा वन निवृक्ष हो गया। इसके बाद वह बलराम के ऊपर पर्वत की चट्टानें फेंकने लगा। अन्त में श्रीबलरामजी की छाती में उसने अपने मुक्के से प्रहार किया। बलरामजी भी उसकी गर्दन पकड़कर उसे पृथिवी पर पटक दिए और उस द्विविद वानर का प्राणान्त हो गया। श्रीबलरामजी के इस कार्य को देखकर–

जय शब्दो नमः शब्दः साधु सध्विति चाम्बरे।
सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत् कुसुमवर्षिणाम् ॥

(भा० १०/६७/२७)

देवता लोग आकाश में बलरामजी की जय-जयकार मनाने लगे। सिद्ध लोग उनके इस कर्म को साधु-साधु कहने लगे। तथा देवता, सिद्ध तथा मुनीन्द्र उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा करने लगे। इसके पश्चात् बलरामजी द्वारका पुरी में लौट आये। सब लोगों ने उनके इस कार्य का समर्थन किया।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

अड़सठवाँ अध्याय

कौरवों पर बलरामजी का कोप तथा साम्ब का विवाह

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा– जाम्बवती नन्द साम्बजी प्रख्यात वीर थे । वे स्वयम्बर में स्थित दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा का हरण कर लिए । यह देखकर कौरवों में बड़ा रोष फैल गया । उन सबों ने साम्ब को बन्दी बनाकर लक्ष्मणा को लौटा लाने का निर्णय किया। राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर कर्ण इत्यादि छह वीर रथों पर सवार होकर साम्ब का पीछा करते हुए उन्हें रुककर युद्ध करने के लिए ललकारे । श्रीसाम्ब भी धनुष लेकर उन छहों महारथियों से अकेले युद्ध करने के लिए तैयार हो गए । कौरवों के द्वारा किए जाने वाले बाण प्रहार से रुष्ट होकर उन्होंने अपने धनुष का टंकार किया और अपना हस्तलाधव प्रदर्शित करते हुए कर्ण आदि छहों महारथियों पर छह-छह बाणों का प्रहार करके उनके घोड़े, रथ तथा सारथियों को विनष्ट करते हुए समस्त रथियों को भी घायल कर दिये । इसके बाद सभी रथी एक ही साथ उनपर बाणों की वर्षा करने लगे । जिससे साम्ब निरस्त्र हो गए। बड़ी कठिनाई से सभी रथियों ने मिलकर उन्हे बन्दी बनाया और लक्ष्मणा को लौटा लाए । इस कार्य से वे प्रसन्न थे तथा अपनी विजय का अनुभव कर रहे थे ।

उसी समय नारदजी ने यह सारा समाचार यदुवंशियों को जाकर सुनाया और सभी यदुवंशी कौरवों पर आक्रमण करने की तैयारी करंने लगे । उस समय बलरामजी ने यदुवंशियों से कहा– कौरव अपने संबन्धी हैं । उनसे कलह करना ठीक नहीं है मैं जाकर उन्हें समझा देता हूँ । यह कहकर वे हस्तिनापुर आये और स्वयं हस्तिनापुर के एक उपवन में ठहरकर उद्धवजी को कौरवों का अभिप्राय जानने के लिए उनकी सभा में भेजे । उद्धवजी ने कौरवों को श्रीबलरामजी के आगमन का समाचार जाकर सुनाया तो सभी उनसे मिले और उनका स्वागत

सत्कार किए । कुशल प्रश्न के पश्चात् श्रीबलरामजी ने कौरवों से कहा कि महाराज उग्रसेन ने आप लोगों को यह आदेश दिया है कि–

यद् यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ।
आबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ।।
(भा० १०/६८/२२)

मैं जानता हूँ कि तुम कई लोगों ने मिलकर अधर्म के द्वारा धार्मिक साम्ब को बन्दी बना लिया है । यह सब कुछ हम इसलिए सहन करते हैं कि हम सम्बन्धियों में परस्पर में फूट न हो । अतएव तुमलोग साम्ब तथा उसकी नववधू लक्ष्मणा को हमारे यहाँ शीघ्र ले आओ । श्रीबलरामजी की इस तरह की बातें सुनकर कौरव क्रुद्ध हो गए और बोले कि हम लोगों ने ही यदुवंशियों को राज्य तथा राज्यचिह्न प्रदान किया था । ये यादव तो पैरों की जूती हैं वे आज हमारे सिर पर चढ़ रहे हैं । ये यदुवंशी आज हम पर ही हुक्म चलाने लगे । इस तरह से गर्व भरी बातें कहकर कौरव चले गए ।

कौरवों द्वारा किए गए इस तरह के अभद्र व्यवहार को देखकर बलरामजी अत्यन्त ही क्रुद्ध गए । उन्होंने कहा अब तो इन कौरवों को दण्ड देना ही है ।

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मनिनाम् ।
असम्बद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ।।
अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ।
गृहित्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ।।
(भा० १०/६८/३९-४०)

ये कौरव ऐश्वर्य से उन्मत्त, अभिमानी तथा पागल हो गए हैं । इनकी प्रत्येक बातें असम्बद्ध एवं कटुता पूर्ण हैं । मैं इनका प्रशासन करने में समर्थ हूँ । इनको दण्डित करके ही ठीक किया जा सकता है। इनकी बातों को कैसे सहा जा सकता है ? आज मैं सम्पूर्ण पृथिवी को कौरव विहीन बना दूँगा । इस तरह की बातें कहते-कहते बलरामजी क्रोध से ऐसे भर गए मानों वे त्रैलोक्य को भस्म कर देंगे और वे अपना आयुध हल लेकर खड़े हो गए । उन्होंने अपने हल के अग्र भाग से हस्तिनापुर को पृथिवी से उखाड़ दिया और उसे गंगा में डुबो देने के लिए घसीटने लगे । उस समय सारा हस्तिनापुर डगमगाने लगा ।

कौरवों ने देखा सम्पूर्ण हस्तिनापुर गंगा में गिर रहा है । वे तुरत साम्ब तथा लक्ष्मणा को रथ पर बैठाये तथा बलरामजी से अपने प्राणों की भीख माँगने लगे । कौरवों ने हाथ जोड़कर बलरामजी से कहा–

राम रामा खिलाधार प्रभावं न विदाम ते ।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ।।
(भा० १०/६८/४४)

श्रीबलरामजी आप तो सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं हम अज्ञानी हैं आपके प्रभाव को नहीं जानते हैं, अतएव आप हमारे अपराधों को क्षमा करें । आप तो सर्वशक्तिमान् हैं । आप अनन्त स्वरूप हैं । सम्पूर्ण पृथिवी को अपने सिर पर धारण करते हैं । प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत् आप ही में लीन हो जाता है । हम आप की शरण में हैं, आपको नमस्कार करते हैं, आप हमारे अपराध को क्षमा करें ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि कौरवों को भयभीत तथा शरणागत देखकर बलरामजी ने उन्हें अभय प्रदान किया । दुर्योधन ने भी अपनी प्रिय पुत्री लक्ष्मणा को अनेक प्रकार का दहेज दिया । इसके बाद वे लक्ष्मणा तथा साम्ब के साथ द्वारकापुरी आए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उनहत्तरवाँ अध्याय

नारदजी का श्रीभगवान् के गार्हस्थ्य का दर्शन

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को बतलाया कि जब नारदजी ने यह सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण ने भौमासुर के यहाँ से लाकर सोलह हजार राजकुमारियों का अलग-अलग महल में उन सबों का एक ही मुहूर्त में पाणिग्रहण किया तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ । वे अपनी उत्सुकता से प्रेरित होकर श्रीभगवान् की लीलाओं का दर्शन करने के लिए श्रीद्वारका पुरी में आये । उस समय द्वारकापुरी के सरोवरों के

स्वच्छ जल में अनेक प्रकार के कमल विकसित थे । उनमें अनके प्रकार के हंस इत्यादि पक्षी कलरव कर रहे थे ।

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ।
महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ।।

(भा० १०/६९/५)

उन्होंने देखा कि द्वारका पुरी में स्फाटिक मणि एवं चाँदी के नव लाख भवन थे । उन भवनों के फर्शों में मरकत मणियाँ एवं सुवर्ण लगाये गये थे । वह पुरी अनेक प्रकार की सामग्रियों से सुशोभित थी। राजपथ अत्यन्त चौड़े थे । सर्वत्र सौन्दर्य ही प्रतीत हो रहा था । इस प्रकार की द्वारका पुरी में श्रीभगवान् का अन्तःपुर बड़ा ही मनोहर था। लगता था उसके निर्माण में विश्वकर्मा ने अपनी सम्पूर्ण कलाओं का उपयोग कर दिया । उस अन्तःपुर में सोलह हजार से अधिक भवन विद्यमान थे । उन भवनों में से एक भवन में देवर्षि नारदजी प्रवेश किए। उस भवन की शोभा तो अवर्णनीय थी । सम्पूर्ण भोग्य सामग्री से समलंकृत था वह भवन । दास दासियाँ भी सुवर्ण एवं रत्नों के अलंकारों से सुशोभित हो रहे थे । वहाँ के सब लोग अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे । अनेक रत्न प्रदीप जगमगा रहे थे । गवाक्षमार्ग से धूप की सुगन्धि भरा धूम निकल रहा था । उसे देखकर मेघ के भ्रम से छज्जों पर बैठे मयूर के जोड़े कलरव करते हुए नृत्य कर रहे थे । नारदजी ने देखा– कि उस भवन की स्वामिनी श्रीरुक्मिणीजी अपने हाथ से ही श्रीभगवान् की चमर सेवा कर रही हैं । आये हुए नारदजी को देखकर श्रीभगवान् पलंग से उठ खड़े हुए और नारदजी को सिर से प्रणाम करके उन्हें आसन पर बैठाकर उनका सविधि पूजन किए ।

तस्यावनिज्यचरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना
बिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतांपति र्हि ।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनामयुक्तम् ।
तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ।।

(भा० १०/६९/१५)

निस्सन्देह श्रीभगवान् श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं और उनके चरणों का धोवन सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करने वाला है । फिर भी श्रीभगवान् भक्तवत्सल तथा आदर्श भक्तों के स्वामी हैं । श्रीभगवान् का एक

असाधारण नाम है ब्रह्मण्यदेव है, क्योंकि वे ब्राह्मणों को अपना आराध्य मानते हैं । अतएव उनका यह नाम उनके गुणों के अनुरुप है। इसीलिए श्रीभगवान् ने नारदजी के चरण धोए और उनका चरणामृत वे अपने सिर पर चढ़ा लिए । इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने नारदजी से पूछा, प्रभो ! मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ? इसके पश्चात् नारदजी ने श्रीभगवान् की प्रंशसा की और कहा जगद्गुरु आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि मेरे मन में आपके चरणों की भक्ति सर्वदा बनी रहे ।

इसके पश्चात् नारदजी श्रीभगवान् के दूसरे भवन में गये जहाँ वे अपनी पत्नी के साथ चौसर खेल रहे थे । नारदजी को देखकर श्रीभगवान् ने नारदजी को प्रणाम किया और उनकी अर्चना की तथा सेवा का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की । श्रीभगवान् के यहाँ से चलकर नारदजी श्रीभगवान् के तीसरे महल में गये । वहाँ पर उन्होंने देखा कि श्रीभगवान् अपने बच्चों से स्नेह कर रहे हैं वहाँ से दूसरे महल में जब नारदजी गये तो वहाँ पर उन्होंने देखा कि श्रीभगवान् स्नान करने की तैयारी कर रहे हैं । अन्यत्र श्रीभगवान् नारदजी को होम करते हुए मिले तो कहीं पर यज्ञशिष्ट अन्न का भोजन करते हुए मिले । किसी पत्नी के घर में वे सन्ध्या करते हुए मिले तो किसी भवन में मौन होकर गायत्री जप करते हुए मिले । कहीं पर वे ब्राह्मणों को गोदान कर रहे हैं तो कहीं पर पुराण श्रवण कर रहे थे । कहीं पर वे बलरामजी के साथ विद्यमान हैं तो कहीं पर अपने पुत्रों का विवाह उनके सदृश कन्याओं के साथ कर रहे हैं ।

इस प्रकार से सर्वत्र भिन्न-भिन्न श्रीभगवान् की लीलाओं का अनुभव करके श्रीनारदजी ने उनसे मुस्कुराते हुए कहा–

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ।
योगेश्वरात्मन् निर्भाता भगवत्पादनिषेवया ।।
(भा० १०/६९/३८)

हे योगेश्वर ! हे आत्म देव ! आपकी माया बड़े-बड़े मायावियों के लिए भी अगम्य है, किन्तु हम आपकी योगमाया का रहस्य जानते हैं, क्योंकि आपके चरण कमलों की सेवा करने से वह स्वयं ही हमारे समक्ष प्रकट हो गयी है । प्रभो ! आप मुझे आज्ञा दें कि मैं सर्वत्र

आपकी लीलाओं का गान करता हुआ विचरण किया करूँ । श्रीभगवान् ने कहा– महर्षि ! मैं धर्म का उपदेश कर्ता हूँ, उसका पालन करने वाला हूँ तथा अनुष्ठान करने वाला हूँ । मेरी योगमाया को देखकर आपको मोहित नहीं होना चाहिए ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि भगवान् तो एक थे किन्तु नारदजी ने उन्हें उनकी अलग-अलग पत्नियों के घर में अलग-अलग देखे । श्रीभगवान् गार्हस्थ्य के श्रेष्ठ धर्म का आचरण कर रहे थे । श्रीभगवान् ने द्वारका में नारदजी का बहुत अधिक सम्मान किया और ᷾दजी श्रीभगवान् का प्रेमपूर्वक स्मरण करते हुए चले गये ।

एवं मनुष्यपदवीदमनुवर्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ।
रेमेऽङ्गषोडशसहस्रवराङ्गनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ।।
(भा० १०/६९/४४)

सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए श्रीभगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न माया का आश्रयण ग्रहण करते हैं तथा मनुष्यों के समान लीला करते हैं । द्वारकापुरी में सोलह हजार श्रेष्ठ रमणियाँ अपनी लज्जापूर्ण तथा सौहार्द पूर्ण चितवन से अवलोकन करती हुई श्रीभगवान् की सेवा करती थीं और वे उन सबों के साथ विहार करते थे । भगवान् श्रीकृष्ण ने इस लोक में जिन लीलाओं को किया उन लीलाओं को दूसरा कोई नहीं कर सकता है । श्रीभगवान् ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार के कारण हैं । उनकी लीलाओं का कीर्तन, श्रवण, स्मरण एवं अनुमोदन करने वाले व्यक्ति के मन में भगवद् भक्ति का उदय हो जाता है और वह मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सत्तरवाँ अध्याय

श्रीभगवान् की दिनचर्या एवं जरासंध के बंदी राजाओं का श्रीभगवान् के पास दूत भेजना

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि प्रातःकाल की बेला आते ही पक्षीगण अपने मधुर कलरव के शब्दों से भगवान् श्रीकृष्ण को जगाने लगते थे। इसलिए अपनी जिन पत्नियों के गले में हाथ डालकर श्रीभगवान् सोते रहते थे वे पत्नियाँ प्रातःकाल इन पक्षियों के स्वर को सुनकर व्याकुल हो जाती थीं । प्रातःकाल शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी चलने लगती थी । श्रीरुक्मिणीजी को तो यह ब्रह्ममुहूर्त का आगमन असह्य हो जाता था क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर अपने शुद्ध स्वरूप का ध्यान करने लगते थे और उनका रोम-रोम प्रफुल्लित होने लगता था । इसके पश्चात् वे निर्मल जल से स्नान करते थे तथा वस्त्र धारण करके सन्ध्या-वन्दन, गायत्री जप एवं होम करते थे । वे बड़े ही सावधानी के साथ देवर्षि-पितृतर्पण इत्यादि का कार्य सम्पादित करते थे । वे प्रतिदिन तेरह हजार चौरासी गायों को समलंकृत करके ब्राह्मणों को दान देते थे । फिर वे भोजनादि कृत्य करके अपने को अलंकृत करते थे । फिर अपना मुख दर्पण एवं घी में देखते थे । ब्राह्मणों को प्रणाम करके तदनन्तर सब लोगों की कमनाएँ पूर्ण करने का कार्य करते थे । फिर वे उद्धव एवं सात्यकि के साथ अपने रनिवास में जाते जहाँ उनकी पत्नियाँ अपने सलज्ज नेत्रों से देखते हुए उनकी अगवानी करती थीं । फिर वे अपनी सुधर्मा नामक सभा में जाते थे । उस सभा में बैठने वाले लोग कभी भी षडूर्मियों (भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा एवं मृत्यु) से बाधित नहीं होते थे । सुधर्मा सभा में यदुवंशीय वीरों से घिरे भगवान् श्रीकृष्ण की शोभा तारों के बीच में विद्यमान चन्द्रमा के समान होती थी । उस समय विदूषक लोग हास्य करते थे, नर्तकियाँ नृत्य करती थीं, वाद्यों की ध्वनि से सम्पूर्ण वातावरण प्रमोदमय हो जाता था। विद्वान् ब्राह्मण वेदमन्त्रों की व्याख्या श्रीभगवान् को सुनाते थे ।

तत्रैकः पुरुषो राजनागतोऽपूर्वदर्शनः ।
विज्ञापितो भगवते प्रतीहरैः प्रवेशितः ।।
(भा० १०/७०/२२)

एक दिन द्वारकापुरी के राजसभा के द्वार पर एक अपरिचित व्यक्ति आया । उसके आने की सूचना द्वारपालों ने श्रीभगवान् को दी और भगवान् का आदेश प्राप्त कर उसे सभा में प्रवेश कराया । उसने हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से निवेदन किया कि जरासन्ध के दिग्विजय के समय जिन राजाओं ने अपना सिर उसके समक्ष नहीं झुकाया उन राजाओं को जरासंध ने वंदी बना लिया और ऐसे राजाओं की संख्या बीस हजार है । वे राजा अत्यन्त दुःखी हैं । उन समस्त राजाओं ने श्रीभगवान् के यहाँ सन्देश भेजा था कि भगवन्–

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्नजयभञ्जन ।
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ।।
(भा० १०/७०/२५)

प्रभो ! भगवन् ! श्रीकृष्ण ! आप मन एवं वाणी के अगोचर हैं। जो जीव आपकी शरण में आते हैं, उनके समस्त भयों को आप विनष्ट कर देते हैं । प्रभो ! हमारी भेद बुद्धि मिटी नहीं है । हम जन्म एवं मृत्यु स्वरूप संसार चक्र से भयभीत होकर आपके शरण में आये हैं । प्रभो! आप तो अज्ञानी एवं अहंकारी जीवों का विनाश कलारूप धारण करके किया करते हैं । हमें जरासन्ध अनेक प्रकार से कष्ट दे रहा है । हम कर्म के बन्धन में है । अब आपके शरणागत हो गये हैं आप हमारी रक्षा अवश्य करेंगे यह हमारा विश्ववास है ।

तन्नो भवान् प्रणतशोकहरांध्रियुग्मो,
बद्धान् वियुंक्ष्व मगधाह्वय कर्मपाशात् ।
यो भूभुजोऽयुतमतंगजवीर्यमेको
विभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवावीः ।।
(भा० १०/७०/२९)

प्रभो ! आपके चरण कमल शरणागत जीवों के समस्त शोक एवं मोह को विनष्ट कर देने वाले हैं । अतएव आप कृपा करके हम लोगों को जरासन्ध रूपी कर्म के बन्धन से छुड़ा दीजिए । यह अकेले ही दस हजार हाथियों के बल से सम्पन्न है । यह उसी प्रकार से हम लोगों को

बन्दी बनाये हुए है जिस प्रकार कोई सिंह भेड़ों को चारो ओर से घेर कर रखता है । प्रभो ! आपने उसे सत्रह बार परास्त किया किन्तु उसने एकबार आप को जीत लिया । आप अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं और यह आपने हारने का अभिनय किया था । वह जानता है कि हमलोग आपके भक्त हैं; अतएव वह अब हमलोगों को और अधिक सता रहा है।

इस प्रकार से जरासन्ध के बन्दी राजाओं की प्रार्थना सुनकर दूत ने कहा कि वे सब राजा आपका दर्शन करना चाह रहे हैं । जिस समय राजाओं का दूत भगवान् श्रीकृष्ण से राजाओं का सन्देश सुना रहा था उसी समय श्रीभगवान् की सभा में देवर्षि नारदजी पधारे । श्रीभगवान् ने नारदजी की समर्चा की और उनसे प्रार्थना करते हुए पाण्डवों का समाचार पूँछा ।

नारदजी ने कहा प्रभो ! आपकी माया अचिन्त्य है । आपकी माया को बड़े-बड़े मायावी भी नहीं जान पाते हैं । आप यद्यपि सर्वज्ञ हैं फिर भी इस समय अनजान से बनकर हमसे यह जानना चाहते हैं कि पाण्डव क्या करना चाहते हैं तो मै आपको सुना रहा हूँ–

यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः ।
पारमेष्ठ्यकामो नृपतिः तद्भवाननुमोदताम् ।।
तस्मिन् देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुरादयः ।
दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ।।

(भा० १०/७०/४१-४२)

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर को वह सुख इस लोक में ही प्राप्त है जो सुख किसी को ब्रह्मलोक में प्राप्त हो सकता है, फिर भी वे ब्रह्मलोक की प्राप्ति की कामना से राजसूय नामक श्रेष्ठ यज्ञ के द्वारा आपकी आराधना करना चाहते हैं । आप कृपा करके उनकी इस अभिलाषा का अनुमोदन करें । प्रभो ! यज्ञ में आपका दर्शन करने के लिए बड़े-बड़े देवता एवं यशस्वी राजसमूह भी एकत्रित होंगे । प्रभो! आपका ध्यान करने मात्र से अन्त्यज भी प्रवित्र हो जाता है । जिसको आपका दर्शन प्राप्त हो जाता है, उसके विषय में क्या कहना है ? प्रभो! आप का निर्मल यश सर्वत्र व्याप्त है अतएव आप उस यज्ञ में पधारें ।

समस्त यदुवंशी चाहते थे कि सर्वप्रथम जरासन्ध पर आक्रमण

करके उसे जीत लिया जाय अतएव उन्हें नारदजी की बात पसंद नही आयी । तब मुस्कुराते हुए श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा– उद्धवजी आप तो हमारे मित्र एवं दोनों नेत्र है । अतएव आप बतलाइये कि इस समय क्या किया जाय ? श्रीभगवान् की आज्ञा प्राप्त कर उद्धवजी ने कहना प्रारम्भ किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

एकहत्तरवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान

श्रीशुकदेवजी श्रीभगवान् के अभिप्राय को जानते थे और देवर्षि नारद एवं सभासदों की बात भी सुन चुके थे । अतएव वे कहने लगे–

यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्तव ।
कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ।।
यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ।
अतो जरासुतजयो उभयार्थो मतो मम ।।
(भा० १०/७१/२-३)

उद्धवजी ने कहा भगवन् देवर्षि नारदजी ने कहा है कि आपको अपने फुफेरे भाई पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होकर उनकी सहायता करनी चाहिए यह बात ठीक है और यह भी उचित है कि शरणागतों की रक्षा करनी चाहिए । इस प्रकार से जब हम विचार करते हैं तो स्पष्ट है कि राजसूय यज्ञ तो वही कर सकता है जो दसो दिशाओं पर विजय प्राप्त कर लिया हो । और ऐसा करने से जरासंध का वध तथा पाण्डवों के यज्ञ की रक्षा दोनों ही हो जायेंगे । ऐसा करने से जरासंध पर हमारी विजय भी हो जायेगी तथा राजाओं की कारागार से मुक्ति हो जाने पर आपका यश भी बढ़ेगा । वह दस हजार हाथियों के समान बलवान् है । उसके साथ भीम ही युद्ध करने में समर्थ हैं । आपकी उपस्थिति में भीम उसका वध कर सकेंगे यह मेरा विश्वास है। जरासन्ध ब्राह्मणभक्त है । ब्राह्मण के वेष में भीम उसके समक्ष युद्ध की

याचना करें और आपकी उपस्थिति में वे आपकी ही शक्ति से उसे मारें यही उचित होगा । फिर उसके कैद में विद्यमान राजा जब मुक्त हो जायेंगे तो उनकी पत्नियाँ आपका यशोगान करेंगी । इन सारी बातों को दृष्टि पथ में रखकर आपको पहले पाण्डवों के यज्ञ में ही जाना चाहिए ।

उद्धवजी की बातें बिल्कुल युक्ति-युक्त थीं सबों ने उनका समर्थन किया । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवजी आदि गुरुजनों से आज्ञा प्राप्त करके दारुक तथा जैत्र आदि सेवकों को इन्द्रप्रस्थ जाने की तैयारी करने का आदेश दिए । इसके पश्चात् महाराज उग्रसेन की आज्ञा प्राप्त करके भगवान् अपनी रानियों; उनके पुत्रों तथा समानों को आगे भेजकर स्वयं गरुड़ध्वज रथ पर सवार हुए । श्रीभगवान् के पीछे विशाल सेना चली । इस समय अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे थे । भगवान् की रुक्मिणी आदि पत्नियाँ अपने पुत्रों के साथ सज-धजकर पालकी तथा रथ आदि साधनों से भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे चल पड़ीं । सब के पीछे श्रीभगवान् की पैदल सेना चल रही थी । श्रीभगवान् की विशाल सेना अनेक प्रकार के ध्वजों एवं पताकों से सुशोभित हो रही थी । श्रीभगवान् ने देवर्षि नारदजी को प्रेषित करने के पश्चात् राजाओं के दूतों को भी उनके पास भेज कर कहवा दिया कि आप लोग भयभीत न हों मैं जरासंध का विनाश कर दूँगा ।

भगवान् श्रीकृष्ण अपने पूरे समाज के साथ अनेक देशों, पर्वतों, नदियों इत्यादि को पार करके इन्द्रप्रस्थ पहुँच गए । अपने सम्पूर्ण समाज के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन को सुनकर महाराज युधिष्ठिर को बड़ी ही प्रसन्नता हुई । वे आचार्यों तथा स्वजनों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की अगवानी करने के लिए नगर से बाहर आये । अनेक प्रकार के मंगल गीत गाये जाने लगे और ब्राह्मणों ने वेदघोष किया । बहुत दिनों के पश्चात् पधारे हुए भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर राजा युधिष्ठिर ने प्रेमपूर्वक उनका बार-बार आलिङ्गन किया ।

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ।
लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृत लोकविभ्रमः ।।
(भा० १०/७१/२६)

भगवान् श्रीकृष्ण का श्रीविग्रह लक्ष्मीजी का पवित्र निवास स्थल है । महाराज युधिष्ठिर अपनी दोनों भुजाओं से उसका आलिङ्गन करके

समस्त पाप-तापों से मुक्त हो गए । वे सर्वात्मना आनन्द सागर में निमग्न हो रहे थे । उनकी आँखों में प्रेमाश्रु भर गये । उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो रहा था । उस समय उन्हें इस सम्पूर्ण प्रपञ्च की कोई भी स्मृति न थी । इसके पश्चात् क्रमशः श्रीभगवान् का आलिङ्गन भीम, नकुल, एवं सहदेव किए और आनन्द का अनुभव किए । उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने कुरुवृद्धों का समुचित सत्कार किया । तदनन्तर सूतमागध एवं बन्दीजनों ने भगवान् की स्तुति की । सबों के साथ भगवान् इन्द्रप्रस्थ नगर में प्रवेश किए । उस समय सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा कर रहे थे ।

उस समय सम्पूर्ण इन्द्रप्रस्थ अनेक प्रकार से सजाया गया था । जगह-जगह पर सुवर्ण के कलश जल भरकर रखे गये थे । वन्दनवार और पताकाएँ टाँग दी गयी थीं । सब लोग भगवान् और उनकी पत्नियों को देखने के लिए राजमार्गों पर आ गये थे । आये हुए भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर अन्तःपुर की नारियाँ उनसे प्रेमपूर्वक मिलीं।

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ।
प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात् सस्नुषा परिषस्वजे ।।

(भा० १०/७१/३९)

जब कुन्ती ने अपने त्रिभुवनपति भतीजे भगवान् श्रीकृष्ण को देखा तो उनका हृदय प्रेम से भर गया । वे पलंग से उठकर अपनी पुत्रवधू द्रौपदी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के पास आयीं और उन्हें गले से लगा लीं । भगवान् श्रीकृष्ण को वे अपने भवन में लायीं । भगवान् ने अपने समस्त गुरुजनों को प्रणाम किया और द्रौपदी तथा सुभद्रा ने श्रीभगवान् का अभिवादन किया । द्रौपदी ने भगवान् श्रीकृष्ण की समस्त पत्नियों का सम्मान किया । धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके पूरे समाज के रहने की सुखद व्यवस्था की । खाण्डव वन प्रदाह के समय जिस मय नामक दानव को भगवान् ने बचा दिया था उसने महाराज युधिष्ठिर के लिए एक दिव्य सभा का निर्माण कर दिया था । महाराज युधिष्ठिर की प्रसन्नता के लिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ बिहार करते हुए कई महीने इन्द्रप्रस्थ में ही रहे।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बहत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवों के राजसूय यज्ञ का आयोजन तथा जरासन्ध का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि एक दिन जब भगवान् श्रीकृष्ण; सभी पुरवासी तथा सभी पाण्डव सभा मे समासीन थे तो महाराज युधिष्ठिर ने कहा कि भगवन् मैं राजसूय यज्ञ के द्वारा आपकी विभूतियों की अर्चना करना चाहता हूँ; मेरे इस संकल्प को आप पूरा करें ।

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति
ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्ग,
माशासते यदि त आशीष ईश नान्ये ।।
तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्दं,
सेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः ।
ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां,
निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृञ्जयानाम् ।।
(भा० १०/७२/४-५)

हे कमलनाभ ! प्रभो ! आपके चरणकमल की पादुकाएँ समस्त अमङ्गलों का नाश करती हैं । उनकी निरन्तर सेवा, ध्यान तथा स्तवन करने वाले लोग स्वभावतः पवित्रात्मा हैं । ऐसे लोग भवसागर से मुक्त हो जाते हैं । आपके भक्तों की समस्त सांसारिक अभिलाषाएँ भी पूर्ण हो जाती हैं । आपके चरण-शरण से विमुख रहने वाले लोगों की न तो सांसारिक अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं और न तो उन्हें मुक्ति ही मिलती है । हे देवाधिदेव ! मैं चाहता हूँ कि संसारी लोग आपके चरणों की सेवा करने का प्रभाव देखें । प्रभो ! कुरुवंशियों एवं सृञ्जयवंशियों में जो आपकी सेवा करते हैं और जो नहीं करते हैं; उनमें होने वाले अन्तर को दिखा दें ।

महाराज युधिष्ठर की बातों को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि धर्मराज ! आपका यह निश्चय उत्तम है और हमसबों को अभीष्ट भी हैं । आपके अनुज देवतुल्य पराक्रम से सम्पन्न हैं । आपकी भक्ति भावना से तो मैं आपका वशवर्ती बन गया हूँ । अपने ऐश्वर्य के प्रभाव से कोई भी मुझे अपने वश में नहीं कर सकता है । इस समय कोई देवता भी अपका तिरस्कार नहीं कर सकता किसी राजा की क्या शक्ति है कि वह आपका तिरस्कार करे ? अतएव आप दिग्विजय करके इस यज्ञ को आप अवश्य करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अपने अनुजों को सेना के साथ भिन्न-भिन्न दिशाओं में विजय प्राप्त करने के लिए प्रेषित किया । श्रीभगवान् ने पाण्डवों में अपनी शक्ति भर दी । वे सभी भाई सभी दिशाओं से विजय प्राप्त करके लौट आये और राजा युधिष्ठिर को प्रभूत धन सम्पत्ति प्रदान किये । महाराज युधिष्ठिर ने जब यह जाना कि अब तक जरासन्ध पर विजय नहीं प्राप्त किया जा सका हैं तो वे चिन्तित हो गये । भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को वही उपाय बतलाया जो उद्धवजी ने बतलाया था । भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण तीन ब्राह्मण के वेष में जरासन्ध के यहाँ गये और कहे–

राजन् विद्धातिथीन् प्राप्तान् अर्थिनो दूरमागतान् ।
तन्नः प्रयच्छभद्रं ते यद्वयं कामयामहे ।।
(भा० १०/७२/१८)

राजन् आपका कल्याण हो । हम बहुत दूर से आये हुए आपके अतिथि हैं । हम यहाँ किसी विशेष प्रयोजन से आये हुए हैं । हम जो चाहते हैं वह हमें आप प्रदान करें । आप यशस्वी और उदार हैं । आप याचकों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं । अतएव हमें विश्वास है कि आप हमें निराश नहीं करेंगे ।

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को बतलाया कि उन लोगों के शरीर पर धनुषबाण के चिह्न को देखकर जरासन्ध जान गया था कि ये लोग ब्राह्मण नहीं हैं । फिर भी उसने विचार किया कि यदि ये लोग मेरे सामने याचक बनकर आये है तो मैं इन लोगों को अवश्य दान दूँगा। इस तरह से विचार करने के पश्चात् उसने उन तीनों अतिथियों से

कहा– ब्राह्मण ! आपलोग अपने मनोऽनुकल वस्तु हमसे माँग लें । यदि आप लोग चाहें तो मैं आप लोगों को अपना सिर भी दे सकता हूँ। जरासन्ध की बातों को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–

युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे ।
युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः ।।
(भा० १०/७१/२८)

राजन् हम अन्न चाहने वाले ब्राह्मण नहीं है । हम क्षत्रिय हैं । हम युद्ध के लिए आपके पास आये हैं । आप चाहें तो हमलोगों से द्वन्द-युद्ध करें । ये पाण्डु पुत्र अर्जुन और भीम हैं, और मैं श्रीकृष्ण हूँ। उनकी बातों को सुनकर जरासन्ध जोर से हँसा और कहा– यदि ऐसी बात है तो मैं द्वन्द्व युद्ध करूँगा । यह कहकर उसने कहा– कृष्ण तुम तो मुझसे डरकर समुद्र की शरण ले लिए थे; अतएव मैं तुमसे नहीं युद्ध करूँगा । अर्जुन कमजोर और मुझसे कम अवस्थाओं के हैं अतएव मैं भीम से ही युद्ध करूँगा । यह कहकर उसने एक भयंकर गदा भीम को देकर दूसरी गदा स्वयं लेकर मैदान में निकल आया । भीम तथा जरासन्ध दोनों का भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया । दोनों एक दूसरे पर भयंकर गदा का प्रहार करने लगे । जब दोनों की गदा टकारकर चूर-चूर हो गयीं तो दोनो मल्ल युद्ध करने लगे । किन्तु दोनों के उत्साह में किसी प्रकार की कमी नहीं थी । दोनों दिन भर परस्पर में शत्रु के समान युद्ध करते थे और रात्रि में मित्र के समान एक साथ निवास करते थे। इस तरह दोनों के युद्ध करते सत्ताइस दिन बीत गये।

अट्ठाइसवें दिन भीम ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा– भगवन् मैं जरासन्ध को पराजित नहीं कर सकता हूँ । तो भगवान् ने जरासन्ध के जन्म की कथा सुनायी और अपनी शक्ति का संचार भीम के शरीर में कर दिया । युद्ध के समय भगवान् ने वृक्ष की एक डाली तोड़ ली और उसको बीच से चीरकर अलग-अलग फेंक दिया । भीम श्रीभगवान् के अभिप्राय को समझ गये । उन्होंने जरासन्ध को पृथ्वी पर पटक कर उसके एक पैर को पैरों से दबाकर उसके दूसरे पैर को दोनों हाथ से पकड़कर ऐसा खीचा की उसके शरीर के आधे-आधे दो टुकड़े हो गये। जरासन्ध की मृत्यु हो जाने पर वहाँ की प्रजा हाय-हाय करने लगी ।

और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने भीम का आलिङ्गन करके भीम का सम्मान किया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को वहाँ के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया तथा जरासन्ध के कारागार में बन्द राजाओं को मुक्त किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तिहत्तरवाँ अध्याय

जरासन्ध के कारागार में बन्द राजाओं को विदा करके भगवान् का इन्द्रप्रस्थ आगमन

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि जरासन्ध ने बीस हजार आठ सौ राजाओं को पकड़ कर पहाड़ों की घाटी में एक किले के भीतर बन्द कर दिया था । श्रीभगवान् ने उन सभी राजाओं को जब जरासन्ध के कारागार से मुक्त किया तो उनके वस्त्र मैले हो गये थे । भूख के मारे उनके प्राण छटपटा रहे थे । उन सबों का शरीर सूख गया था । जब वे सभी राजा बाहर निकले तो उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन किया । श्रीभगवान् की चार भुजाएँ थी । पीताम्बरधारी श्रीभगवान् का श्याम सलोना रूप समस्त अलंकारों से अलंकृत था । श्रीभगवान् का दर्शन करते ही उन राजाओं के पाप-ताप विनष्ट हो गये । राजाओं ने श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे–

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ।
प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोरसंसृतेः ।।
(भा० १०/७३/८)

देव देवेश्वर ! आप शरणागत जीवों के समस्त कष्टों को विनष्ट करने वाले हैं । प्रभो ! आपने हमें जरासन्ध के कारागार से मुक्त तो कर ही दिया । हम संसार का कटु अनुभव कर चुके हैं । अब आप हमें इस संसार के बन्धन से मुक्त करने की कृपा करें । हम आपको

नमस्कार करते हैं । हम आपके शरणागत हैं । जरासन्ध ने हमें कारागार में डालकर जो कष्ट दिया उसमें जरासन्ध का कोई दोष नहीं। उसमें तो हमारे पूर्वकृत कर्म ही कारण हैं ।

वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टय जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः ।
ध्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः ।।
(भा० १०/७३/१२)

प्रभो ! पहले हमलोग धन सम्पत्ति के नशे में मदमत्त थे । इस पृथिवी को जीत लेने की होड़ में हम अपनी ही प्रजा का नाश करते रहते थे । हमलोग इतने मदमत्त और कूरता से भर गये थे कि अपने समक्ष ही मृत्यु रूप से खड़े आपकी कोई भी परवाह नहीं करते थे । प्रभो ! यह काल भी आपका शरीर है । उसकी गति को कोई भी नहीं पहचान पाता है । जब उसने हमलोगों को श्रीहीन बना दिया तो आपके दर्शन हम लोगों को प्राप्त हुए । अब हम आपके चरण कमलों को याद करते हैं । प्रभो ! आप हमलोगों पर ऐसी कृपा करें कि हम कभी भी आपको भूल न सकें । प्रभो ! हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं ।

राजाओं की प्रार्थना को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे कहा– राजाओं ! आप लोगों की आज से मुझ में भक्ति बनी रहेगी । आप मुझे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा समझें । धन का मद तो सबको अन्धा बना ही देता है । हैहय, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर आदि धन के मद से मत्त थे ;अतएव इनलोगों का विनाश हो गया । अब आप लोग अपने-अपने राज्यों में जायँ और मेरा चिन्तन करते हुए राज्य करें ।

इस प्रकार से श्रीभगवान् ने राजाओं को आश्वासन देकर उन्हें प्रेषित किया । उन्होंने सहदेव के हाथ से राजाओं को राजोचित वस्त्र आभूषण तथा मालाओं से सम्मानित करवाया । सबके-सब राजा सम्मानित तथा वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर रथों पर सवार होकर अपनी-अपनी राजधानियों में चले गये । अपनी-अपनी राजधानियों में जाकर राजाओं ने अपनी प्रजाओं को भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा की कथा सुनायी और श्रीभगवान् की आज्ञा के ही अनुसार वे सब अपना राज्य संचालन करने लगे ।

इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्ध के पुत्र सहदेव से

सम्मानित होकर भीमसेन तथा अर्जुन के साथ इन्द्रपस्थ के लिए प्रस्थान किये । इन्द्रप्रस्थ के सन्निकट आकर सबों ने अपना विजय शंख बजाया । यह सुनकर समस्त प्रजाओं को यह ज्ञात हो गया कि जरासन्ध मारा गया और अब महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ करने का संकल्प प्रायः पूरा ही हो गया । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने वह सारी कथा सुनायी जो जो उपाय जरासन्ध को मारने के लिए करना पड़ा था । भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर महाराज युधिष्ठिर को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उनकी आखों से प्रसन्नता के आँसू निकल आये। वे कुछ बोल न सके ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौहत्तरवाँ अध्याय

श्रीभगवान् की अग्रपूजा और शिशुपाल का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को बतलाया कि जरासन्ध का वध सुनकर महाराज युधिष्ठिर को बड़ी प्रसन्नता हुई । और वे श्रीभगवान् से कहने लगे–

ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ।
बहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवाऽनुशासनम् ।।
स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ।
धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ।।
(भा० १०/७४/२-३)

प्रभो ! भगवन् श्रीकृष्ण आप त्रैलोक्य के स्वामी ! ब्रह्मा एवं शंकर इत्यादि भी आपकी आज्ञा प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं और उसे प्राप्त करके शिरोधार्य करते हैं । हे कमलनयन प्रभो ! हम दीन हैं और अपने को ईश मानते हैं । और आप हम लोगों की आज्ञा का पालन भी करते हैं । यह आपका अभिनय मात्र है । संसार में वे

ही लोग अहंकार एवं ममकार से ग्रस्त होते हैं जो आपके भक्त नहीं हैं। आपके भक्तों में इस प्रकार की भेदबुद्धि नहीं होती है ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की और वेदवादी ऋत्विजों तथा आचार्यों का यज्ञकार्य करने के लिए वरण किया । युधिष्ठिर के यज्ञ के सदस्य व्यास, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, वसिष्ठ इत्यादि महर्षि थे । युधिष्ठिर ने इस यज्ञ में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य विदुर तथा दुर्योधन इत्यादि को भी आहूत किया । उस राजसूय यज्ञ को देखने के लिए सभी राजा, उनके मन्त्री तथा समस्त प्रजाएँ भी आयीं ।

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः ।
कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम् ।।
(भा० १०/७४/१२)

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि सभी समागत ब्राह्मणों ने यज्ञ भूमि को सुवर्ण के हल से जुतवाया और शास्त्रानुसार महाराज युधिष्ठिर को यज्ञदीक्षा में प्रवेश कराया । महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सभी पात्र सुवर्ण के बने हुए थे । सभी देवता तथा सभी राजागण भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुए थे । सब लोगों ने यह सामान्य रूप से स्वीकार किया कि महाराज युधिष्ठिर उसी प्रकार से यज्ञ को करने के अधिकारी हैं जिस प्रकार वरुण इस यज्ञ को किये थे । राजा युधिष्ठिर ने सोमाभिषवण करने के पश्चात् यज्ञ के समस्त सदस्यों का सम्मान किया तथा उनसे संभावित गलतियों के लिए क्षमा प्रार्थना किया । उसके पश्चात् सब लोगों ने इस बात पर विचार किया कि इस यज्ञ में किस सदस्य की अग्रपूजा की जाय ? किसी निर्णय को नहीं होते देखकर सहदेव ने कहा–

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान् सात्त्वतां पतिः ।
एष हि देवताः सर्वा देशकालधनादयः ।।
(भा० १०/७४/१९)

यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त सदस्यों में श्रेष्ठ हैं और अग्रपूजा के योग्य पात्र हैं । क्योंकि ये ही समस्त देवताओं के रूप में हैं तथा समस्त धन, काल इत्यादि भगवान् श्रीकृष्ण के ही स्वरूप हैं । यह सम्पूर्ण जगत् श्रीकृष्ण स्वरूप हैं, सभी यज्ञ भी

श्रीकृष्ण स्वरूप हैं । वे ही अग्नि, आहुति तथा मन्त्र स्वरूप हैं । भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से मनुष्य समस्त पुरुषार्थों का सम्पादन करता है । उस यज्ञ में उपस्थित सभी सदस्यों ने सहदेव की बातों का अनुमोदन किया । युधिष्ठिर ने जब समस्त सदस्यों का अभिप्राय जान लिया तो उन्हें सहदेवजी की बातों को सुनकर बड़ी ही प्रसन्नता हुई और वे आनन्द मग्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण की सविधि पूजा करने लगे । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के पैरों को धोकर उनका चरणोदक अपने सिर पर रख लिया । उस समय सब लोग युधिष्ठिर का जय-जयकार मना रहे थे । आकाश से पुष्प की वर्षा हो रही थी ।

उसी सभा में शिशुपाल अपने आसन पर बैठा हुआ भगवान् के गुणों को सुन रहा था । जब उससे वर्दास्त नहीं हुआ तो वह अपने आसन से उठकर खड़ा हो गया और सबों के समक्ष भगवान् श्रीकृष्ण को उद्देश्य बनाकर अनेक प्रकार की कटु बातें कहने लगा । उसने कहा कि इस सभा में अनेक ज्ञान सम्पन्न महापुरुष भीष्म, द्रोण इत्यादि उपस्थित हैं; उनकी अग्रपूजा न करके आपलोगों ने जो श्रीकृष्ण को अग्रपूजा के योग्य समझा यह अत्यन्त अनुचित है ।

सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ।
यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ।।
वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मवहिष्कृतः ।
स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ।।
(भा० १०/७४/३४-३५)

यज्ञ के विषय में जानकार सदस्पतियों को छोड़कर यह कुलकलंक गोपाल अग्रपूजा का अधिकारी कैसे हो सकता है । क्या कौआ यज्ञ के पुरोडाश का अधिकारी होता है । इसका न तो कोई वर्ण है, न आश्रम; इसका उत्तम कुल भी नहीं है । यह लौकिक एवं वैदिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करके मनमाना आचरण करता है । यह समस्त गुणों से रहित है । इसकी अग्रपूजा कैसे की जा सकती हैं । यह पवित्र मथुरा पुरी का परित्याग करके समुद्र के भीतर किला बनाकर रहता है । जब यह अपने किले से बाहर निकलता है तो प्रजाओं को सताने का ही कार्य करता है ।

शिशुपाल की उस तरह की बातें श्रीभगवान् चुपचाप सुन रहे थे

किन्तु बहुत से भगवद् भक्तों को उसकी बात सहन नहीं हुई तो वे सभा से उठकर बाहर चले गये । यादवों एवं सृञ्जयवंशियों ने शिशुपाल के विरुद्ध हाथ में अस्त्र-शस्त्र धारण कर लिया । शिशुपाल ने भी अपने हाथ में तलवार और ढाल उठा लिया । वह निर्भीक बना हुआ था और भगवान् श्रीकृष्ण के पक्षपाती राजाओं को ललकारने लगा । यह देखकर भगवान् उठकर खड़े हो गये और राजाओं को शान्त किए तथा अपने ऊपर तलवार लेकर झपटते हुए शिशुपाल को देखकर चक्र से उसका सिर काट दिये । शिशुपाल के मरते ही उसके पक्षपाती उस सभा से उठकर भाग गये । उसी समय शिशुपाल के शरीर से एक ज्योति निकली और भगवान् श्रीकृष्ण में ही लीन हो गयी । शिशुपाल की सद्गति होने के पश्चात् महराज युधिष्ठिर ने सभी ब्राह्मणों को पुष्कल दक्षिणा प्रदान की और यज्ञान्त स्नान किया ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि इसप्रकार से श्रीभगवान् ने महाराज युधिष्ठिर का यज्ञ सम्पन कराया और उसके पश्चात् भी कुछ महीनों तक वे इन्द्रप्रस्थ में ही निवास किए । इसके पश्चात् युधिष्ठिर के न चाहने पर भी उन्होंने आज्ञा ली और अपने सम्पूर्ण समाज के साथ श्रीभगवान् द्वारका चले आये । जो व्यक्ति श्रीभगवान् के इस चरित्र का श्रवण करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पचहत्तरवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञ की सम्पूर्णता और दुर्योधन का आगमन

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से कहा– कि महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ से सभी महर्षि इत्यादि तो प्रसन्न थे एक दुर्योधन को इससे प्रसन्नता नहीं थी । इसका कारण हमें बतलाएँ । श्रीशुकदेवजी ने कहा कि महाराज युधिष्ठिर धर्मात्मा थे । जितने लोग उस राजसूय यज्ञ में आए थे वे सब-के-सब प्रसन्नतापूर्वक कार्य कर रहे थे । भीम रसोई घर

का कार्य देखते थे, दुर्योधन कोषाध्यक्ष थे, सहदेव समागतों का सत्कार करते थे, नकुल सभी सामग्रियों को एकत्रित करते थे । अर्जुन गुरुजनों की सेवा करते थे । भगवान् श्रीकृष्ण अतिथियों का पैर धोने का कार्य करते थे । द्रौपदी भोजन परसने का काम करती थीं; कर्ण दान देने का काम करते थे । इस तरह सब-के-सब लोग अपने स्वरूपानुरूप कार्य में लगे थे ।

समागत सभी ब्राह्मणों को महाराज युधिष्ठिर पुष्कल दक्षिणा प्रदान करके सन्तुष्ट कर चुके थे । शिशुपाल की ज्योति श्रीभगवान् के चरणों में लीन हो चुकी थी । सबके अन्त में महाराज युधिष्ठिर गंगाजी में यज्ञान्त स्नान करने के लिए गये । उस समय अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे । नर्तकियाँ नृत्य करती थीं । पूर्ण समारोह के साथ महाराज युधिष्ठिर यज्ञान्त स्नान करने गये । उनके आगे-आगे वैदिक विद्वान् वेदपाठ करते हुए चल रहे थे । देवता, ऋषि, गन्धर्व इत्यादि आकाश से पुष्पों की वर्षा कर रहे थे । सम्पूर्ण इन्द्रप्रस्थ के नर-नारी वस्त्राभूषणों तथा अलंकारों से सजे-धजे थे । उस उत्सव को देखने के लिए विमानों पर चढ़कर देवियाँ भी आकाश में आ गयी थीं। शिविकाओं पर सवार होकर सैनिकों की सुरक्षा में इन्द्रप्रस्थ की राजमहिलायें भी चल रही थीं । अनेक प्रकार के रंग लोगों पर डाले जा रहे थे । रमणियाँ भी पिचकारियों में रंग भरकर अपने देवरों आदि पर डाल रही थीं ।

स सम्राड् रथमारुढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ।
व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ।।
(भा० १०/७५/१८)

चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिर द्रौपदी आदि रानियों के साथ सुन्दर घोड़े से युक्त एवं सुवर्ण के हारों से समलंकृत रथ पर सवार होकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों स्वयं राजसूय यज्ञ प्रयाज आदि क्रियाओं के साथ मूर्तिमान होकर प्रकट हो गया हो । ऋषियों ने पत्नी-संयाज तथा यज्ञान्त स्नान संबन्धी कर्मों को कराकर द्रौपदी तथा युधिष्ठिर को आचमन करवाया, स्नान कराया उस समय बाजे बजने लगे तथा पुष्पों की वर्षा हुई । इसके बाद सबलोगों ने स्नान किया । फिर महाराज युधिष्ठिर ने वस्त्र एवं अलंकार धारण किया और ब्राह्मणों की पूजा की।

सम्पूर्ण जगत् को परमात्मात्मक मानने वाले महाराज समस्त ब्राह्मणों तथा बान्धवों की बार-बार पूजा करते थे ।

सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्रग्,
उष्णीशकञ्चुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ।
नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्ट,
वक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ।।

(भा० १०/७५/२४)

उस समय सभी लोग कुण्डल, हार, पगड़ी अंगरखा, दुपट्टा तथा मणियों के बहुमूल्य हार पहनकर देवताओं के सदृश सुशोभित हो रहे थे । रमणियों के मुखमण्डल की दोनों कुण्डलों तथा घुंघुराले केश कलाप से अधिक शोभा होती थी । उनके कटिभाग की शोभा सुवर्ण की करधनियों से अत्यधिक होती थी । उस राजसूय यज्ञ में समागत समस्त ब्राह्मण, देवता, पितृगण, ऋषिगण और नृपतिगण की पूजा महाराज युधिष्ठिर ने की और वे सब-के-सब अपने-अपने स्थान को चले गये । महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की प्रशंसा सब लोग करते थे । सबलोग तो चले गये किन्तु युधिष्ठिर ने अपने कुटुम्बियों तथा भगवान् श्रीकृष्ण को रोक लिया । भगवान् भी अपने समस्त परिजनों को द्वारका भेजकर स्वयं अपनी पत्नियों के साथ इन्द्रप्रस्थ में रह गये ।

दुर्योधन युधिष्ठिर के इस राजसूय यज्ञ जन्य ऐश्वर्य को देखकर मन ही मन जलने लगा । मय दानव के द्वारा निर्मित राज्य सभा तथा महाराज युधिष्ठिर के अन्तःपुर के ऐश्वर्य को वह देख नहीं पाता था ।

सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ।
वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापिस्वचक्षुषा ।।
आसीनः काञ्चने साक्षादासने मघवानिव ।
पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च बन्दिभिः ।।

(भा० १०/७५/३४-३५)

एक दिन महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों सम्बन्धियों तथा परमसुहृत् नेत्रों के तारे भगवान् श्रीकृष्ण के साथ मयदानव निर्मित राज्य सभा में स्वर्ण सिंहासन पर इन्द्र के समान विराजमान थे । उनका ऐश्वर्य ब्रह्माजी के समान था । बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे । उसी समय

दुर्योधन अपने भाइयों के साथ किरीट धारण करके तलवार हाथ में लेकर उस राजसभा में प्रवेश किया । उस सभा में मय की ऐसी माया थी कि दुयोधन स्थल को जल समझकर अपना वस्त्र समेट लिया और जल को स्थल समझकर उसमें गिर पड़ा । यह देखकर सारी रानियाँ तथा भीमसेन आदि हँसने लगे । भगवान् ने भी इस हंसी को अनुमोदित कर दिया । यह देखकर दुर्योधन लज्जित होकर उस सभा से निकल कर हस्तिनापुर चला गया । उसका रोम-रोम क्रोध से जल रहा था । किन्तु श्रीभगवान् चुप थे । वे चाहते थे कि किसी भी तरह पृथिवी का भार समाप्त हो । यही कारण दुर्योधन के जलन का था ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
पचहतरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छिहत्तरवाँ अध्याय

शाल्व के साथ यादवों का युद्ध

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि मैं अब सौभपति शाल्व एवं यदुवंशियों के साथ उसके युद्ध तथा उसके विनाश की कथा सुनाता हूँ । जब रुक्मिणीजी का विवाह होने वाला था उस समय शिशुपाल का मित्र सौभपति शाल्व भी उसकी ओर से बराती के रूप में आया था और उस समय यदुवंशियों ने उसे भी युद्ध में पराजित कर दिया था । पराजित शाल्व ने अपने समस्त साथियों के समक्ष प्रतिज्ञा किया था–

आयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ।

(भा० १०/७६/३)

अर्थात् मैं इस पृथिवी पर से यादवों को विनष्ट कर दूँगा आपलोग मेरा पराक्रम देखेंगे । यह कहकर वह मूर्ख आशुतोष भगवान् शंकर की आराधना करने लगा । तपस्या काल में वह प्रतिदिन एक मुट्ठी राख फाँक लेता था । इस तरह से उसे तपस्या करते हुए जब

एकवर्ष बीत गया तो भगवान् शंकर ने उसे वरदान माँगने के लिए कहा। तब शाल्व ने वरदान माँगा–

देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ।।
(भा० १०/७६/६)

वरदान के रूप में देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सूर्य तथा राक्षस इत्यादि के द्वारा अभेद्य वृष्णिवंशियों के लिए भयंकर तथा अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार चलने वाले एक विमान का वरदान माँगा । भगवान् शंकर ने उसे तथास्तु कह दिया । इसके पश्चात् मय नामक दानव ने एक नगर के समान विस्तृत लोहे का अभेद्य विमान बनाकर उसे प्रदान किया । वह अन्धकारमय विमान था । उसमें पता नहीं चलता था कि शाल्व कहाँ पर बैठा है । उस विमान को प्राप्त करके शाल्व ने द्वारकापुरी पर अपने सैनिकों के साथ आक्रमण कर दिया । उसने द्वारकापुरी को घेर लिया तथ वहाँ के उद्यानों तथा नागरिकों के विहार स्थानों को विनष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । वह द्वारकावासियों पर वाणों की वर्षा करने लगा तथा ओले एवं पत्थरों की वर्षा करने लगा । चारों तरफ इतनी धूल फैल गयी की समस्त द्वारकावासी परेशान हो गये । द्वारकावासियों को पीड़त देखकर पद्युम्नजी तथा अन्य यदुवंशी वीर अपने सैनिकों के साथ कवच धारण कर नगर से बाहर निकल आये तथा यदुवंशियो एवं शाल्व के सैनिकों में भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया ।

श्रीप्रद्युम्नजी ने अपने बाणों का प्रहार करके क्षणभर में ही शाल्व की सारा माया को काट दिया । उन्होंने अपने बाणों के प्रहार से शाल्व, शाल्व के सेनापति, उसके सारथि तथा वाहनों को घायल कर दिया । स्वयं शाल्व अपने विमान में बेहोश होकर गिर पड़ा । शाल्व अपने मायामय विमान में कहीं स्थिर नहीं रहता था । उसका विमान कभी एक रूप में दिखायी पड़ता था तो कहीं अनेक रूप में । फिर भी जहाँ कहीं भी वह दिखायी पड़ता यदुवंशी वहीं पर अपने वाणों की झड़ी लगा देते थे ।

इधर शाल्व के सैनिकों ने भी यदुवंशियों पर खूब वाणों का प्रहार किया और यदुवंशी भी अत्यन्त प्रपीड़त थे, फिर भी वे अपना

मैदान नहीं छोडते थे । इतने में ही शाल्व के महाबली मन्त्री द्युमान् ने प्रद्युम्नजी की छाती में भयंकर गदा का प्रहार करके अपने को विजयी समझने लगा । प्रद्युम्नजी भी उस गदा के प्रहार से थोड़ी देर के लिए संज्ञा शून्य हो गए । उनको बेहोश देखकर उनका सारथि उन्हें युद्ध स्थल से बाहर ले आया । जब प्रद्युम्नजी होश में आये तो उन्हें सारथि के इस कार्य से बड़ा क्षोभ हुआ । सारथि ने कहा कि प्रभो सारथि धर्म के अनुसार मैं आपको युद्ध स्थल से बहार ले आया हूँ । आप संकटापन्न थे । बेहोश थे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सत्तरवाँ अध्याय

शाल्व का उद्धार

श्रीशुकदेवजी ने वतलाया कि जब पद्मुम्नजी स्वस्थ हुए तो उन्होंने जल से आचमन किया । कवच पहनकर धनुष धारण किया और सारथि से कहा कि तुम मुझे द्युमान् के पास ले चलो । उस समय द्युमान् यादवी सेना को तहस-नहस कर रहा था । प्रद्युम्नजी ने जाकर उसको आठ वाण मारा उसके घोड़े तथा सारथि को घायल करके द्युमान् का सिर काट डाला । अब यदुवंशी भी शाल्व सेना को तहस नहस करने लगे । शाल्व के सैनिको के सिर कटकर समुद्र में गिरने लगे । यह भयंकर युद्ध सत्ताइस दिन तक चलता रहा ।

उस समय भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के बाद भी इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान थे । वे वहाँ पर भयंकर स्वप्न देखने लगे और युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर द्वारका आये तो देखे सचमुच शाल्व एवं यदुवंशियों का युद्ध हो रहा है । उन्होंने द्वारका की रक्षा का भार बलरामजी पर सौंपा और स्वयं दारुक को साथ लेकर गरुडध्वज रथ से युद्ध के मैदान में पहुँच गए । उन्होंने दारुक से कहा कि यह शाल्व

बड़ा ही मायावी है । अतएव तुम घबराना मत । श्रीभगवान् के रणाङ्गण में पहुँचते ही सब लोगो ने उन्हें पहचान लिया । शाल्व की सेना नष्ट भ्रष्ट हो गयी थी । शाल्व ने शीघ्र दारुक पर भयंकर शक्ति का प्रयोग किया । वह भयंकर शब्द करती हुई आकाश में आ रही थी। श्रीभगवान् ने वाणों से मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिया । इसके बाद उन्होंने शाल्व को सोलह बाण मारा और शाल्व के आकाश में धूमते हुए विमान को वाणों से मारकर छलनी कर दिया । शाल्व ने भी भगवान् की बायीं भुजा में ऐसा बाण मारा की उनके हाथ से शार्ङ्गधनुष छूटकर गिर पड़ा । सभी आकाश से युद्ध देखने वाले आकाशचारी हाय-हाय करने लगे और गरजते हुए शाल्व ने कहा–

यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्याहृतेक्षिताम् ।
प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ।।
तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ।
नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ।।

(भा० १०/७७/१७-१८)

मूर्ख तुमने हम लोगो के समक्ष ही मेरे भाई तथा मित्र शिशुपाल की पत्नी का अपहरण किया, तथा भरी सभा में मेरे असावधान मित्र शिशुपाल को मार दिया अतएव तुम अपने को अजेय मानते हो । यदि तुम आज मेरे सानमे खड़े रहे तो मैं तुम्हे वहाँ पहुँचा दूँगा जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता है ।

शाल्व की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने कहा– मूर्ख ! तुम क्यों बड़बड़ा रहे हो अपना पराक्रम प्रदर्शित करो । ऐसा कहकर श्रीभगवान् ने अपनी गदा का प्रहार उसके जत्रुस्थान पर किया और शाल्व के मुख से खून गिरने लगा । शाल्व तो थोड़ी देर के लिए अन्तर्धान हो गया और उसी समय एक आदमी आया जिसने श्रीभगवान् को प्रणाम करके कहा कि माता देवकी ने मुझे आपके पास भेजा है कि शाल्व श्रीवसुदेवजी को पशु के समान बाँधकर ले गया । नरलीला करते हुए श्रीभगवान् सोचने लगे कि अजेय श्रीबलरामजी के रहते शाल्व ऐसा कैसे कर सकता है ? उसी समय शाल्व माया वसुदेव जी को उनके सामने लाकर कहा– देखो ये तुम्हारे पिता हैं । यदि तुम्हारी शक्ति हो तो तुम इन्हें बचाओ ओर यह कहकर उस मायामय

ने वसुदेव का सिर अपनी तलवार से काट दिया । यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण थोड़ी देर के लिए शोकग्रस्त हो गये । किन्तु उन्होंने देखा कि अब वहाँ न वसुदेवजी का शरीर था और न सिर ही । उन्होंने यह जान लिया कि यह शाल्व की माया थी । उस समय शाल्व श्रीभगवान् पर शस्त्रों की वर्षा कर रहा था । अमोघ शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् ने शाल्व को अपने वाणों से मार कर घायल कर दिया तथा अपनी गदा के प्रहार से उसके विमान को मारकर जर्जर कर दिया । गदा प्रहार से चूर-चूर होकर शाल्व का विमान समुद्र में जा गिरा उससे पहले शाल्व अपने हाथ में गदा लेकर धरती पर कूद पड़ा और बड़े ही वेग से श्रीभगवान् पर झपटा; किन्तु भगवान् ने भाले के प्रहार से उसके उस हाथ को काट दिया जिसमें वह गदा लिए हुए था । इसके बाद श्रीभगवान् ने शाल्व का वध करने के लिए अपने हाथ में भयंकर देदीप्यमान चक्र को उठाया और उससे शाल्व का सिर काट डाला । शाल्व के मरते ही उसके सैनिक हाय-हाय चिल्लाने लगे । उस समय देवताओं ने दुन्दुभी बजायी और श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा की । उसी समय शाल्व का मित्र दन्तवक्त्र वहाँ पर अपने मित्र का बदला लेने के लिए आ गया।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

अठहत्तरवाँ अध्याय

दन्तवक्त्र तथा विदूरथ का उद्धार और तीर्थ यात्रा में बलरामजी के हाथों सूतजी का मारा जाना

श्रीशुकदेवजी ने राजा परिक्षित् से कहा कि शिशुपाल तथा शाल्व के मारे जाने के पश्चात् दन्तवक्त्र अकेला ही पैदल उन लोगों का बदला लेने के लिए युद्धभूमि में आ गया । उसके पैरों की चोट से पृथिवी काँप रही थी । वह महाबलशाली अपने हाथ में गदा लिए था। दन्तवक्त्र को इस प्रकार आते देखकर श्रीभगवान् भी अपने हाथ में गदा

लेकर रथ से कूद पड़े और उसको आगे बढ़ने से रोक दिये । भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर दक्तक्त्र ने कहा कि अच्छा हुआ कि तुम सामने आ गये । तुम हो तो मेरे मामा के पुत्र किन्तु तुमने मेरे मित्रों को मारा है तथा मुझे भी मरना चाहते हो । अतएव मैं तुम्हें आज ही यमलोक पहुँचा रहा हूँ । अनेक प्रकार से कड़वी बातें कहते हुए उसने अपनी गदा का प्रहार भगवान् श्रीकृष्ण के सिर पर किया । उस प्रहर से भगवान् टस से मस भी नहीं हुए और उन्होंने अपनी भयंकर गदा से दन्तवक्त्र के वक्षस्थल पर प्रहार किया । उससे उसकी छाती फट गयी। वह खून उगलते हुए पृथिवी पर गिर पड़ा और उसके निष्प्राण हाथ पैर पृथ्वी पर फैल गये । उस समय दन्तवक्त्र के शरीर से एक सूक्ष्म ज्योति निकली और श्रीभगवान् के चरणों में समा गयी ।

दन्तवक्त्र का भाई विदूरथ था । वह अपने भाई के मारे जाने के कारण अत्यन्त कुपित हुआ और भगवान् श्रीकृष्ण को मार डालने की इच्छा से हाथ में ढाल और तलवार लेकर श्रीभगवान् पर टूट पड़ा । किन्तु उसके सन्निकट पहुँचने से पहले ही श्रीभगवान् ने अपने चक्र से उसका सिर काट डाला । इस तरह दन्तवक्त्र तथा विदूरथ का वध करके श्रीभगवान् ने द्वारका में प्रवेश किया । उस समय सभी देवता श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे । सभी देव, ऋषि, किन्नर उनके विजय के गीत गा रहे थे । द्वारकापुरी खूब सजायी गयी थी ।

एक बार श्रीबलरामजी ने सुना कि कौरवों तथा पण्डवों के बीच युद्ध की तैयारी हो रही है । वे किसी भी तरफ से कोई कार्य उस युद्ध में नहीं करना चाहते थे । इसलिए उन्होंने तीर्थ यात्रा का बहाना बनाया और द्वारकापुरी से बाहर चले गये । वे सर्वप्रथम प्रभास क्षेत्र में जाकर स्नान-दान तर्पण इत्यादि कार्यों को किए । उसके पश्चात् उन्होंने कुछ ब्राह्मणों को अपने साथ लिया और जिधर से सरस्वती नदी आ रही थी उसी ओर चल पड़े । इसके बाद पृथूदक, विन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन तीर्थ, विशालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ चक्रतीर्थ तथा सरस्वती आदि तीर्थों में गए। इसके पश्चात् वे यमुना तट एवं गंगा तट के प्रधान तीर्थों में होते हुए नैमिषारण्य क्षेत्र में गए । उस समय नैमिषारण्य में बड़े-बड़े ऋषि सत्सङ्ग कर रहे थे । श्रीबलरामजी को आये हुए देखकर सबलोगों ने उनका समुचित सत्कार किया । पूजित होकर बलरामजी सबके साथ

बैठ गये । इसके पश्चात् उन्होंने देखा कि रोमहर्षण सूतजी सबो से ऊपर आसन पर बैठे हुए थे । यह देखकर उन्होंने सोचा कि यह सूत जाति का होकर ब्राह्मणोचित आसन पर बैठा है । किसी को नमस्कार भी नहीं करता है । अतएव इसका वध करना अत्यावश्यक है । वे क्रोध से जलने लगे तथा तीर्थ यात्रा के लिए जो कुश उन्होंने अपने हाथ में लिया था उसी को रोमहर्षण सूत पर चला दिया । उसके लगते ही सूतजी मर गए । सूतजी के मरते ही सभी ऋषि हाय-हाय करने लगे। उन लोगों ने कहा–

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन ।
आयुश्चात्माक्लमं तावद् यावत् सत्रं समाप्यते ।।
अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ।
योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ।।
(भा० १०/७८/३०-३१)

यदुवंश शिरोमणि हम लोगों ने ही सूतजी को ब्राह्मणोचित आसन पर बैठाया था जब तक हम लोगों का यह सत्र चलता रहे तब तक के लिए उन्हें शान्ति रहित आयु हम लोगों ने ही प्रदान किया था। आपने बिना जाने ही यह ऐसा कार्य कर दिया है जो ब्रह्महत्या के समान है । वेद आप पर प्रशासन नहीं कर सकता है । फिर भी आप लोगों को शिक्षा देने के लिए इसका प्रयाश्चित अवश्य करें ।

ऋषियों की बातों को सुनकर बलरामजी ने कहा कि लोगों को शिक्षा देने के लिए इसका प्रायश्चित मैं अवश्य करूँगा । आपलोग इस प्रायश्चित का निर्णय करें । आपलोग जितनी लम्बी आयु चाहें सूत को मैं प्रदान भी कर सकता हूँ । बलरामजी की बातों को सुनकर ऋषियों ने कहा–

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ।
यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ।।
(भा० १०/७८/३५)

बलरामजी ! आप ऐसा कोई उपाय करें कि आपका शस्त्र, पराक्रम तथा इनकी मृत्यु व्यर्थ न हो तथा हमलोगों ने जो इन्हें वरदान दिया है वह भी सत्य हो जाय । श्रीबलरामजी ने ऋषियों को कहा कि इस सूत का पुत्र ही आपलोगों को कथा सुनायेगा । मैं अपनी शक्ति

से उसे दीर्घ आयु, बल तथा इन्द्रिय शक्ति प्रदान कर रहा हूँ । इसके अतिरिक्त जो आप लोग कहें वही प्रायश्चित मैं करूँ । ऋषियों ने कहा– इल्वल का पुत्र वल्वल हम लोगों के सत्र स्थान को दूषित कर देता है; अतएव आप उसका वध कर दें और उसके पश्चात् एक वर्ष तक तीर्थ यात्रा करें । ऐसा करने से आपका ब्रह्महत्या का प्रायश्चित हो जायेगा।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उन्नासीवाँ अध्याय

वल्वल का उद्धार तथा बलरामजी की तीर्थ यात्रा

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि जब पर्व का दिन आया तो नैमिषारण्य में जोर से अन्धड़ आया । पीब की दुर्गन्धि आने लगी । बल्वल ने पूरी यज्ञशाला को खून एवं विष्ठा से अपवित्र कर दिया । इसके बाद बल्वल हाथ में त्रिशूल लेकर उपस्थित हुआ । उसके काले-काले शरीर को बड़ी-बड़ी भौहें और भयंकर बना रही थीं। उसके दाढ़ी मूछ ताम्बे के समान लाल-लाल थे । उसे देखकर श्रीभगवान् ने अपने दिव्य अस्त्र हल एवं मूसल का स्मरण किया । स्मरण करते ही उनके दिव्य अस्त्र उनके हाथों में उपस्थित हो गए । आकाश में स्थित बल्वल को बलरामजी ने अपने हल से खींचा और अपने मूसल से उसके सिर पर उन्होंने ऐसा प्रहार किया कि वह पृथ्वी पर गिर कर खून फेंक कर मर गया । इसके बाद ऋषियों ने बलरामजी का सम्मान किया और उन्हें दिव्य अस्त्र एवं आभूषण प्रदान किया।

इसके पश्चात् उन मुनीश्वरों से आज्ञा लेकर बलरामजी कौशिकी नदी के तट पर आये । फिर वे सरयू नदी के तट पर घूमते-घूमते प्रयाग में आये और वहाँ पर दान एवं तर्पण किये । फिर बलरामजी पुलहाश्रम पधारे । गण्डकी, गोमती, विपाशा नदियों में स्नान करके बलरामजी शोण के तट पर आये । फिर वे गया तीर्थं में गये । गंगा

सागर स्नान करके वे महेन्द्र पर्वत पर चले गये । वहाँ से वे श्रीशैल पर्वत पर गये । इसके बाद उन्होंने बेङ्कटेश भगवान् का दर्शन किया फिर वे श्रीरंगम् गये । इसके पश्चात् वे मलय पर्वत पर जाकर अगस्त्य महर्षि का आशीर्वाद प्राप्त किए और कन्याकुमारी के रूप में विद्यमान दुर्गा देवी का दर्शन किए । इसके पश्चात् वे पञ्चाप्सर तीर्थ में जाकर श्रीभगवान् का दर्शन करके दस हजार गौओं का दान किए । गोकर्ण तीर्थ में जाकर उन्होंने शंकरजी का दर्शन किया । इसके बाद घूमते हुए प्रभास क्षेत्र में आये और वहाँ सुने कि अधिकांश क्षत्रियों का विनाश हो चुका है । जिस दिन वे घूमते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचे उस दिन दुर्योधन तथा भीमसेन का गदायुद्ध होने वाला था । बलरामजी ने दोनों को युद्ध करने से रोकना चाहा किन्तु दोनों में से कोई भी नहीं मानने वाला था। बलरामजी ने सोंचा इन दोनों का अदृष्ट ही ऐसा है और वे द्वारका लौट आये । वहाँ से वे फिर नैमिषारण्य आये और ऋषियों के साथ बैठकर अनेक प्रकार का यज्ञ किए । इसके बाद उन्होंने अपनी पत्नी रेवती के साथ यज्ञान्त स्नान किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
उन्नासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

अस्सीवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सुदामाजी का स्वागत

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से कहा– भगवान् श्रीकृष्ण अनन्तशक्ति सम्पन्न हैं, उनकी लीलाएँ भी अनन्त हैं अतएव अब तक आपने जिन कथाओं का वर्णन नहीं किया है उन्हीं कथाओं को हमें आप सुनाएँ ।

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते करौ चतत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु श्रृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ।।
(भा० १०/८०/३)

श्रीभगवान् के गुणों का उच्चारण करने वाली वाणी ही सार्थक है, तथा वे ही हाँथ सार्थक हैं जो श्रीभगवान् की सेवा में संलग्न रहते हैं । वही मन भी सार्थक है जो सम्पूर्ण स्थावर जंगमों में विद्यमान् श्रीभगवान् का स्मरण करे । सिर का यही सदुपयोग है कि सम्पूर्ण जगत् में श्रीभगवान् की स्थिति समझकर उन्हें सदा नमस्कार किया जाय । परीक्षित् की बातों को सुनकर श्रीशुकदेवजी ने कहा कि श्रीभगवान् के मित्र एक ब्राह्मण भिक्षु थे, वे ब्रह्मज्ञानी तथा गृहस्थ थे। प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाता उसी से वे सन्तुष्ट रहते थे । उनके वस्त्र फटे-पुराने थे । उनकी पत्नी भी उसी तरह अपना गुजारा करती थी । एक दिन भूख से व्याकुल वह अपने पति से कहने लगी—

ननु ब्रह्मन् भगवतः सखासाक्षाच्छ्रियः पतिः ।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभः ।।
तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् ।
दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ।।
आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ।।

(भा० १०/८०/९-१०-११)

प्रभो ! साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण आपके मित्र हैं । वे वाञ्छाकल्पतरु, ब्राह्मण भक्त एवं शरणागत वत्सल हैं । आर्यपुत्र ! आप उन्हीं सज्जनों के एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् के पास जाइये । आप गृहस्थ हैं एवं दुःखी हैं अतएव वे आपको प्रभूत सम्पत्ति प्रदान करेंगे। इस समय वे भोज; वृष्णि एवं अन्धक वंशीय क्षत्रियों के स्वामी रूप में द्वारका में निवास कर रहे हैं । जो कोई भी भक्त उनके चरणकमलों का स्मरण करता है उसे स्वयं वे अपने को भी प्रदान कर देते हैं । ऐसे सद्गुण सम्पन्न श्रीभगवान् के पास आप अवश्य जायँ । इस तरह से पत्नी के द्वारा कई बार कहने पर श्रीसुदामाजी ने सोचा कि वहाँ पर जाने पर श्रीभगवान् का दर्शन अवश्य प्राप्त होगा । यही सोंचकर वे द्वारका के लिए चल पड़े । श्रीसुदामाजी द्वारका में गये तो तीन कक्ष्याओं को पार करने के बाद जब चतुर्थ कक्ष्या में प्रवेश किए तो उस कक्ष्या में श्रीभगवान् की सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों का निवास था । उसमें एक महल में वे प्रवेश किये । वह महल

श्रीरुक्मिणीजी का था । भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी के पलंग पर विराजमान थे । आये हुए ब्राह्मण सुदामा को देखकर भगवान् ने दौड़कर सुदामाजी को गले लगा लिया और हाथ पकड़कर उन्हें ले जाकर रुक्मिणीजी के पलंग पर बैठा दिये तथा अपने हाथ से ब्राह्मण देवता का चरण धोकर श्रीभवगान् अपने सिर पर चरणोदक रख लिए। इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने सुदामाजी की धूप, दीप इत्यादि से अर्चना की । स्वयं रुक्मिणीजी अपने हाथ से उनको चँवर झल रही थीं। उनकी अर्चना करके भगवान् परम प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे। ब्राह्मण का वस्त्र मैला, फटा-पुराना था । अन्तःपुर की स्त्रियाँ देखकर कह रही थीं इस ब्राह्मण ने न जाने कौन सा पूर्वजन्म में पुण्य किया है कि इस अवधूत ब्राह्मण का श्रीभगवान् स्वयम् अपने हाथों पूजन कर रहे हैं । स्वयं रुक्मिणीजी अपने हाथों से इनकी सेवा कर रही हैं । रुक्मिणीजी के पलंग पर बैठे हुए ब्राह्मण और भगवान् श्रीकृष्ण एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए बातें कर रहे थे ।

श्रीभगवान् ने पूँछा जब आप गुरुकुल से लौटे तो अपने अनुरुप पत्नी से आपने विवाह किया कि नहीं ? आपका अन्तःकरण विषय भोगों से अनासक्त रहता है यह मैं जानता हूँ । आपके जैसे विषयों से अनासक्त अन्तःकरण वाले महापुरुष तो विरले ही होते हैं । क्या आपको उन दिनों की याद है जब हम दोनों गुरुकुल में निवास करते थे आचार्य ही मनुष्यों को कर्तव्य का ज्ञान प्रदान करते हैं । आचार्योंपदेश का अनुसारण करने वाला मनुष्य अनायास ही संसार सागर को पार कर लेता है ।

नाहमिज्या प्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रुषया यथा ॥

(भा० १०/८०/३४)

ब्रह्मन् ! में सम्पूर्ण भूतों की आत्मा हूँ । मैं गार्हस्थ्य धर्म; पञ्च महायज्ञों अथवा तपस्या या संन्यासधर्म के द्वारा उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ जितना आचार्य को अपनी सेवा से संतुष्ट करने वाले से प्रसन्न होता हूँ । क्या आपको याद है कि हम दोनों गुरुपत्नी की आज्ञा से इन्धन लाने के लिए वन में गये थे । उस समय अचानक घनघोर वर्षा होने लगी और बिजली कड़कने लगी । सारी पृथ्वी पानी से भर गयी । पता नही चलता था कि हमलोग किधर जायँ । रातभर एक दूसरे का हाथ

पकड़कर इधर-उधर भटकते रहे । दूसरे दिन प्रातःकाल हम दोनों को ढूँढते हुए आचार्य हम लोगों को पाये तो कहे कि तुमलोगों ने मेरी सेवा के लिए अपने शरीर की भी परवाह नहीं की और मेरी सेवा में लगे रहे।

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ।।
(भा० १०/८०/४२)

द्विज शिरोमणे ! मैं तुम दोनों से अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम्हारी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जायँ । तुम लोगों ने मुझसे जो वेदाध्ययन किया है वह सदा कण्ठस्थ रहे । तथा इस लोक तथा परलोक में कहीं भी निष्फल न हो ।

श्रीभगवान् की बातों को सुनकर ब्राह्मण देवता बोले कि भगवन् इससे बढ़कर हमारा क्या सौभाग्य होगा कि आप सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा के साथ मुझे गुरुकुल में निवास करने का अवसर प्राप्त हुआ । वेद ही सम्पूर्ण पुरुषार्थों की प्राप्ति के साधन हैं । वेद तो आपके शरीर हैं । वेदाध्ययन करने के लिए आप गुरुकुल में निवास किये यह आपकी नरलीलामात्र है ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इक्यासीवाँ अध्याय

सुदामजी को ऐश्वर्य की प्राप्ति

श्रीशुकदेवजी ने कहा श्रीभगवान् तो ब्राह्मणों को देवता के समान पूजते हैं । उन्होंने अन्य बातों को करते हुए उन ब्राह्मण श्रेष्ठ की ओर मुस्कुराते हुए देखा और कहा–

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात् ।
अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ।।
(भा० १०/८१/३)

ब्रह्मण आप अपने घर से मेरे लिए क्या उपहार लाए हैं ? यदि मेरे लिए मेरा भक्त थोड़ा सा भी उपहार लाता है तो वह मेरे लिए बहुत हो जाता है तथा यदि कोई अभक्त बहुत भी उपहार लाता है तो वह मेरे लिए बहुत कम ही होता है । यदि कोई भक्ति पूर्वक मुझे, फल, फूल, पत्र तथा जल भी अर्पित करता है तो उसे मैं प्रेम पूर्वक खाता हूँ । भगवान् द्वारा इस प्रकार कहने पर भी वे ब्राह्मण देवता श्रीभगवान् को वह मोटा चावल नहीं दिए तथा लज्जा से अपना सिर नीचे कर लिए। श्रीभगवान् उस ब्राह्मण देवता के मन की बात जानते थे । वे जानते थे कि ये ब्राह्मण धन के लिए मेरी आराधना कभी नहीं किए । अपनी पत्नी के कहने से ये मेरे पास आये हैं । आज मैं इनको अतुल सम्पत्ति प्रदान करूँगा । ऐसा सोचकर श्रीभगवान् ने ब्राह्मण की पोटली को देखा जिसे ब्राह्मण अपनी काँख में दबा रखे थे और श्रीभगवान् उसे स्वयं खींच लिए और बोले । अरे यह चावल तो मुझको क्या सम्पूर्ण त्रैलोक्य को तृप्त करने में समर्थ है । उन्होंने उसमें से एक मुट्ठी चावल निकालकर खा लिया । दूसरी मुट्ठी जब वे निकालना चाहते थे तो रुक्मिणीजी ने उनका हाथपकड़ लिया और कहा–

एतावताऽलं विश्वात्मन् सर्वसम्पत् समृद्धये ।
अस्मिंल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन् पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ।।

(भा० १०/८१/११)

विश्वात्मन् अब रहने दीजिए । मनुष्यों के इस लोक में अथवा परलोक में सम्पूर्ण सम्पत्तियों की समृद्धि के लिए इतना ही बहुत है। आपके लिए इतना ही प्रसन्नता का कारण बन गया है ।

सुदामाजी उस दिन श्रीभगवान् के ही भवन में निवास किए । उन्होंने सुख पूर्वक खा-पीकर स्वर्गीय सुख का अनुभव किया । दूसरे दिन जब वे अपने नगर को लौट रहे थे तब उन्हें श्रीभगवान् की ब्रह्मण्यता की याद आ रही थी और वे अपने भाग्य की सराहना कर रहे थे । वे सोंच रहे थे कि श्रीभगवान् ने मुझे हृदय से लगा लिया । मुझ दरिद्र को भी गले से उन्होंने लगाया और रुक्मिणीजी के पलंग पर बैठाया । रुक्मिणीजी ने मुझे चँवर झला । सम्पूर्ण सिद्धियों का मूल श्रीभगवान् के चरणों की पूजा है ।

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।
इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददत् ।।
(भा० १०/८१/२०)

वे सोंच रहे थे; परम दयालु भगवान् श्रीकृष्ण ने यह सोंचकर मुझे थोड़ा सा भी धन इसलिए नहीं प्रदान किया कि यह निर्धन धनी होकर कहीं मदमत्त होकर मुझे भूल न जाय ।

इसी प्रकार से सोंचते हुए जब ब्राह्मण देवता अपने घर के सन्निकट पहुँचे तो वहाँ विशाल भवन, उपवन, अनेक प्रकार के पक्षियों से परिपूर्ण सरोवर इत्यादि को देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गये और सोंचने लगे यह क्या है ? यह किसका स्थान है ? यह सब कैसे हो गया ? इस तरह से जब वे सोंच ही रहे थे तब तक सजे-धजे लोग उठकर बाजा बजाते हुए उनकी अगवानी किए । अपने पति के आगमन को सुनकर साक्षात् लक्ष्मी के समान सजी-धजी हुई ब्राह्मणी घर से निकल कर आयी तथा पतिदेव के चरणों में प्रणाम किया । उन्होंने देखा उनकी ब्राह्मणी पत्नी सुवर्णालंकारों से अलंकृत दासियों से घिरी है । वे अपने भवन में आये । उनका भवन इन्द्र के भवन के समान समलंकृत था । उनकी सुन्दर शय्या अत्यन्त सजी थी तथा सुवर्णालंकारों से अलंकृत थी । मणियों के प्रदीप जल रहे थे । सुन्दरियाँ उनकी सेवा में समुपस्थित थीं । वे सोचने लगे यह सब कुछ मुझे भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा कटाक्ष से प्राप्त हुआ है । उन्होंने मेरे मन के भाव को जानकर यह समृद्धि प्रदान की है । श्रीभगवान् की उदारता का अनुभव करते हुए सुदामाजी मन ही मन कहने लगे–

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जमनि जन्मनि स्यात् ।
महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसंगः ।।
(भा० १०/८१/३६)

मुझे अनेक जन्मों में उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण की हितैषिता, मित्रता, तथा सेवा प्राप्त हो । मुझे धन सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं हैं, मुझे सदा उन्हीं सकल कल्याण गुणाकार श्रीभगवान् के चरणों में बढ़ता हुआ अनुराग चाहिए तथा उनके प्रेमी भक्तों का सत्सङ्ग चाहिए। इस प्रकार से सोंचते हुए श्रीसुदामाजी उन विषयों से अनासक्त रहकर ही अपनी पत्नी के साथ भगवत् प्रसाद स्वरूप विषयोपभोग करने लगे।

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को बतलाया कि श्रीभगवान् ब्राह्णो को अपना अराध्य मानते हैं । श्रीसुदामाजी ने अपने जीवन का शेष भाग सुखपूर्वक व्यतीत करके अन्त में श्रीभगवान् के लोक को प्राप्त किया । श्रीभगवान् की इस ब्राह्मण्यता की कथा को सुनकर मनुष्य कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भगवत कथा के दसवें स्कन्ध का
एकासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बयासीवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी से गोप-गोपियों की भेंट

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को बतलाया कि एक बार सर्व ग्रास सूर्यग्रहण लगा । उस समय सब लोग पुण्यअर्जन एवं अपना कल्याण करने के दृष्टि से समन्त पञ्चक तीर्थ कुरुक्षेत्र में आये । श्रीपरशुरामजी ने अत्याचारी राजाओं का वध करके पृथिवी को निःक्षत्र बनाकर कुरुक्षेत्र में उन अत्याचारी राआजों के रुधिर की धारा से पाञ्च कुण्डों को भर दिया था और उसी क्षेत्र में यज्ञ करके सम्पूर्ण पृथिवी को ब्राह्मणों को दान दे दिया था । इसीलिए इसे समन्तपञ्चक तीर्थ कहते हैं।

इस अवसर पर कुरुक्षेत्र में भारत वर्ष के समस्त क्षेत्रों से राजा गण और प्रजाएँ स्नानार्थ आयी थीं । द्वारका से भी सभी यदुवंशी और उनके राजा उग्रसेन भी आये थे । नगरी की रक्षा के लिए कुछ यदुवंशी द्वारका में भी रह गये थे । जिनमें साम्ब, कृतवर्मा इत्यादि प्रमुख थे । सभी यदुवंशी सजधज कर अपनी पत्नियों के साथ अनेक प्रकार के वाहनों से कुरुक्षेत्र आये । यहाँ पर आकर सबों ने स्नान करके उपवास किया । पुनः ब्राह्मणों को अनेक गायों का दान दिया । फिर परशुरामजी द्वारा बनाये हुए कुण्डों में स्नान करके सबों ने ब्राह्मणों को भोजन कराया । पुनः ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर सबों ने स्वयम् भोजन किया तथा वृक्षों की छाया में अपने मनोनुकूल निवास किया।

इसके पश्चात् सब लोग अपने सुहृद् संबन्धियों से मिलने गये । मत्स्य, उशीनर, कोसल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, कम्बोज, कैकेय, आदि अनेक स्थानों के राजा उस अवसर पर कुरुक्षेत्र में आये थे । यदुवंशियों के परम हितैषी नन्दजी एवं उनके सम्पूर्ण लोग भी कुरुक्षेत्र में स्नानार्थ आये थे । नन्द गोपों तथा गोपियों के मन में भगवान् श्रीकृष्ण से मिलने की बड़ी ही लालसा थी ।

अन्योन्य-संदर्शन-हर्ष-रंहसा,
प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्र-सरोरुहश्रियः ।
आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला
हृष्यत् त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ।।

(भा० १०/८२/१५)

एक दूसरे से मिलने, दर्शन करने तथा वार्तालाप करने से सबों को अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होती थी । सबलोग एक दूसरे को हृदय से लगा लेते थे । उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगता था । उन लोगों को रोमाञ्च होने लगता था और उनके कण्ठ अवरुद्ध हो जाते थे।

पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी आपस में मिलती थीं एक दूसरे का आलिङ्गन करती थी और परम प्रमोद का अनुभव करती थीं । सब एक दूसरे को यथायोग्य प्रणाम एवं आशीर्वाद करके बैठकर भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में बातें करती थीं । कुन्ती भी अपने भाईयों तथा भाभियों से मिलीं और आनन्द मग्न हो गयी । कुन्ती ने वसुदेवजी से कहा–

आर्यभ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ।
यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ।।
सुहृदो ज्ञातयः पुत्राः भ्रातरः पितरावपि ।
नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ।।

(भा० १०/८२/१९-२०)

भैय्या मैं सचमुच बड़ी अभागिन हूँ । मेरी एक भी इच्छा पूरी नहीं हुई । आपके जैसा साधु स्वभाव का भाई भी जिसकी याद न करे इससे बढ़कर कष्ट की कौन सी बात होगी ? विधाता जिसके वाम हो जाता है उसको स्वजन, सम्बन्धी, पुत्र, भाई तथा माता-पिता भी भूल जाते हैं । इसमें आप लोगों का कोई भी दोष नहीं है ।

वसुदेवजी ने कहा– बहन उलाहना मत दो, संसार के सभी प्राणी भाग्य के हाथों के खिलौने हैं । कंस के भय से हम लोग स्वयं विपद्ग्रस्त थे । अभी जाकर आश्वस्त हुए हैं । इसके पश्चात् कुरुक्षेत्र में आये हुए सभी राजाओं का वसुदेवजी तथा उग्रसेनजी इत्यादि ने खूब सत्कार किया । सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से प्रभावित हुए । सबलोग भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी तथा यदुवंशियों की प्रशंसा कर रहे थे ।

नन्दस्तत्र यदून् प्राप्तान् ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ।
तत्रागमद् वृत्तो गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ।।
(भा० १०/८२/३२)

जब नन्दजी को यह बात ज्ञात हुई कि श्रीकृष्ण आदि यदुवंशी कुरुक्षेत्र में आए हुए हैं, तब वे गोपों के साथ अपनी सारी सामग्री गाड़ियों पर लादकर अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम आदि को देखने के लिए वहाँ आये । आये हुए नन्दजी एवं उनके समाज को देखकर सभी यदुवंशी उठकर खड़े हो गये और सबों से मिलकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किया । नन्द और यशोदाजी को श्रीकृष्ण और बलरामजी ने प्रणाम किया और उन लोगों ने दोनों भाइयों को अपनी गोद में बैठा लिया । दोनों भाइयों का प्रेम से गला रुँध गया था; वे कुछ भी बोल नहीं पा रहे थे । रोहिणीजी और देवकीजी ब्रजेश्वरी नन्दरानी से बड़े ही प्रेम और श्रद्धा से मिलीं । उन लोगों ने यशोदा रानी से कहा कि आपने जिस प्रकार का हमलोगों के साथ उत्तमोत्तम व्यवहार किया है; उसका बदला हम कभी भी नहीं चुका सकती हैं । अपने पुत्रों से भी बढ़कर आपने श्रीकृष्ण और बलराम को पाला है । इतनी उदारता कौन दिखला सकता है ?

गोपियाँ श्रीभगवान् को देख-देखकर बड़ी ही प्रसन्नता का अनुभव कर रही थीं । श्रीभगवान् को देखकर वे तदाकाराकारित हो रही थीं ।

भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः ।
आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ।।
अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थ चिकीर्षया ।
गतांश्चिरायिताञ्छत्रुपक्षक्षपणचेतसः ।।
(भा० १०/८२/४१-४२)

जब श्रीभगवान् ने देखा कि गोपियाँ मुझसे तादात्म्य को प्राप्त हो चुकी हैं तब वे एकान्त में उन सबों के पास गए और उन्हें हृदय से लगाए, कुशल-मंगल पूँछे और हँसते हुए कहने लगे– सखियों हमलोग अपने संबन्धियों का कार्य करने के लिए व्रज से बाहर चले आए हैं तथा तुम लोग जैसी प्रेयसियों को छोड़कर शत्रुओं का विनाश करने के कार्य में लगे हुए हैं । हम लोगों को दूर गए हुए बहुत दिन बीत गए क्या तुम लोगों को हमारी याद भी आती है? तुम लोग हम लोगों को अकृतज्ञ मत मानना । किसी का संयोग तथा वियोग तो भाग्यवशात् हुआ करता है ।

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ।।
(भा० १०/८२/४५)

यह बड़े ही सौभाग्य की बात है कि तुम लोगों को मेरा वह प्रेम प्राप्त हो चुका है, जिससे जीवों को मेरी प्राप्ति हो जाती है । प्राणियों द्वारा की गयी मेरी भक्ति उन्हें अमृत मुक्ति प्रदान कर देती है । मैं सम्पूर्ण जगत् में व्यापक हूँ । सारा संसार मेरे ही भीतर है ।

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित को बतलाया कि श्रीभगवान् ने इस प्रकार से गोपियों को आध्यात्म की शिक्षा दी उससे गोपियों का जीवकोश विनष्ट हो गया तथा उनका स्वाभाविक ज्ञान अर्विभूत हो गया । वे परमानन्द मग्न हो गयीं ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

तिरासीवाँ अध्याय

श्रीभगवान् की पटरानियों के साथ द्रौपदी की बातचीत

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को बतलाया कि गोपियों को आध्यात्म की शिक्षा देने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों से मिले और महाराज युधिष्ठिर से उनका समाचार पूँछे तो युधिष्ठिर ने कहा–

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं
महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ।
पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो,
देहम्भृतां देहकृदस्मृतिच्छिदः ।।

(भा० १०/८३/३)

प्रभो ! महापुरुष तो मन ही मन आपके चरणारविन्दों के मकरन्द रस का पान करते रहते हैं । उनके मुख से कभी-कभी यह रस लीला कथा के रूप में बाहर निकलती है । जो व्यक्ति अपने कर्ण रूपी दोने में भरकर उसे पीते हैं उनके अमङ्गल की आशंका ही क्या है ? आप परमहंसों के एकमात्र प्राण हैं, आप योगमाया का आश्रय ग्रहण करके मानव शरीर धारण करते हैं । हम आपके चरणों में बार-बार नमस्कार करते हैं । जिस समय श्रीभगवान् और कुरुवंशियों से बातचीत हो रही थी उसी समय कुरुवंशीय नारियाँ भी भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों से बातें कर रही थीं । द्रौपदी ने श्रीभगवान् की पत्नियों से उनके विवाह का वृत्तान्त जानना चाहा । अपने विवाह का वृत्तान्त बतलाती हुई रुक्मिणीजी ने कहा–

चैद्यायमर्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु
राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः
निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्
तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ।।

(भा० १०/८३/८)

सभी राजा चाहते थे कि मेरा विवाह शिशुपाल से हो; इसके लिए वे सब अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर तैयार थे । श्रीभगवान् तो संसार के समस्त अजेय वीरों में अग्रगण्य है । वे उन सबों के बीच से मेरा हरण उसी प्रकार से कर लिए जैसे कोई सिंह बकरियों एवं भेड़ों के समूह से अपना भाग उठा लाता है । उन्हीं समस्त सम्पत्तियों एवं सौन्दर्य के आश्रय श्रीभगवान् के चरण मेरे आराध्य हैं । सत्यभामा ने कहा मेरे पिता जी अपने अनुज के मरने का तथा स्यमन्तक मणि के अपहार का श्रीभगवान् पर झूठा कलङ्क लगा दिया । उस कलंक को दूर करने के लिए श्रीभगवान् ऋक्षराज जाम्बवान् को जीतकर स्यमन्तक मणि को लाकर हमारे पिता को दे दिये । फिर डरे हुए मेरे पिताजी ने मेरा विवाह श्रीभगवान् से कर दिया । जाम्बवतीजी ने बतलाया कि श्रीभगवान् को न पहचानकर स्यमन्तक मणि के लिए मेरे पिता जाम्बवान्जी ने उनके साथ सत्ताइस दिन तक युद्ध किया और पहचानने के पश्चात् उन्होंने मुझे तथा स्यमन्तक मणि दोनें को श्रीभगवान् को उपहार रूप में समर्पित कर दिया ।

श्रीकालिन्दीजी ने कहा कि जब श्रीभगवान् ने यह जाना कि उन्हें प्राप्त करने के लिए मैं तपस्या कर रही हूँ तो उन्होंने अपने सखा अर्जुन के साथ यमुना तट पर आकर मेरा पाणिग्रहण किया । मित्र विन्दाजी ने कहा कि मेरे स्वयम्बर में आकर श्रीभगवान् ने मेरे भाइयों के साथ सभी राजाओं को जीतकर मुझे अपनी पत्नी बनाया । सत्याजी ने बतलाया कि मेरे पिता स्वयम्बर में आये राजाओं के बल एवं पौरुष की परीक्षा के लिए सात तीक्ष्ण शृंग वाले बैलों को रखे थे । अकेला कोई भी उन्हें पकड़कर नहीं बाँध पाया तो श्रीभगवान् ने उन्हें पकड़कर बाँध दिया और वे मेरा प्राणिग्रहण किए । श्रीभद्रा जी ने बतलाया कि मेरे पिताजी ने स्वयं भगवान् को आहूत करके उनके साथ मेरा विवाह कर दिया ।

अपने विवाह की कथा का वर्णन करती हुई लक्ष्मणाजी ने बतलाया–

ममपि राज्ञ्च्युतजन्मकर्म श्रुत्वामुहुर्नारदगीतमास ह ।
चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृत्तः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ।।
(भा० १०/८३/१७)

रानीजी देवर्षि नारदजी भगवान् के जन्म एवं कर्म की लीलाओं का सदा गान किया करते थे । उनके मुख से श्रीभगवान् के गुणों को सुनकर मेरा मन उनमें लगा हुआ था । मैने सुना था कि श्रीलक्ष्मीजी ने समस्त लोकपालों को छोड़कर श्रीभगवान् का ही वरण किया । मेरे पिता बृहत्सेन मुझसे बहुत प्रेम करते थे । वे मेरी इच्छा की पूर्ति के लिए स्वयम्बर के अवसर पर मत्स्यवेध की शर्त रखे । मत्स्य बाहर से ढंका हुआ उसकी छाया केवल जल में पड़ती थी । उसका वेध करना था। अनेक राजाओं ने प्रयास किया किन्तु सफल नहीं हुए । अन्त में अर्जुन के वाण से मत्स्य का स्पर्श मात्र हुआ किन्तु वे भी उसका वेध नहीं कर सके । अन्त में श्रीभगवान् आये और बात की बात में उन्होंने मत्स्यवेध कर दिया । इसके बाद मैंने समस्त राजाओं के समक्ष ही श्रीभगवान् के गले में वरमाला पहना दी । समागत अनेक राजा भगवान् से युद्ध करने के लिए आये किन्तु श्रीभगवान् ने सबों को परास्त कर दिया और वे अपने रथ पर बैठकर मुझे द्वारकापुरी लाये तथा मुझे अपनी पत्नी के रूप में उन्होंने स्वीकार किया । द्रौपदी जी हमलोगों की कोई पूर्वजन्म की बहुत बड़ी तपस्या थी कि हमलोगों को श्रीभगवान् की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । शेष सोलह हजार पत्नियों की ओर से रोहिणीजी ने कहा कि भौमासुर अपने दिग्विजय काल में अनेक राजाओं को परास्त करके उनकी पुत्रियों को अपने किले में बंद कर दिया था । श्रीभगवान् ने जाकर भौमासुर का वध किया और हम समस्त राजकुमारियों को उसके कारागार से मुक्त करके हमलोगों को अपनी पत्नी बनाया । हमसब लोगों के मन में केवल एक ही भावना रहती है कि हमलोगों को श्रीभगवान् के चरण कमलों की सेवा का सौभाग्य सदा प्राप्त होता रहे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भगवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौरासीवाँ अध्याय

वसुदेवजी के यज्ञ में उनके बन्धु-बान्धवो का आगमन

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि कुरुवंशीय समस्त नारियों ने श्रीभगवान् की पत्नियों के विवाह की कथा सुनी । उधर सभी पुरुष भी आपस में अनेक प्रकार की चर्चा कर रहे थे । उसी समय श्रीभगवान् का दर्शन करने के लिए अनेक प्रख्यात महर्षि आये । व्यासजी, नारदजी, च्यवन, देवल ऋषि, विश्वामित्र, शतानन्द, परशुरामजी, पुलस्त्यजी, अत्रि, कश्यप तथा अगस्त्य आदि महर्षि उनमें प्रमुख थे। समागत महर्षियों को देखकर वहाँ पर पहले से ही विद्यमान् भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, वसुदेवजी, कुरुवंशी राजा इत्यादि उठकर खड़े हो गये। सबों ने उन महर्षियों की विधि पूर्वक अर्चना की । पूजन के पश्चात् सभी महर्षि जब सुखपूर्वक बैठ गये तो भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि आाज हमलोगों को अपने जन्म लेने का फल प्राप्त हो गया । आप योगेश्वरों का दर्शन तो बड़े ही सौभाग्य से होता है ।

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।।
नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका,
नभूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ।।

(भा० १०/८४/११-१२)

केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते हैं, केवल मिट्टी या पत्थर की प्रतिमाएँ ही देवता नहीं कहलाती हैं । क्योंकि बहुत दिनों तक सेवा करने के बाद ही वे पवित्र कर पाती हैं; किन्तु सन्त पुरुष तो दर्शन मात्र से ही जीवों को कृतार्थ कर देते हैं । अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथिवी, जल, वायु, वाणी तथा मन इनके अधिष्ठातृ देवता तो

उपासना करने के पश्चात् ही भेदजन्य बुद्धि का विनाश कर पाते हैं; किन्तु आपलोगों जैसे ज्ञानियों की यदि मुहूर्त भर भी सेवा कर ली जाय तो वे सम्पूर्ण पापों को विनष्ट कर देते हैं ।

श्रीभगवान् की इन बातों को सुनकर महर्षियों को बड़ी ही प्रसन्नता हो रही थी । उन लोगों ने सोच लिया कि श्रीभगवान् तो स्वयं सबों को पवित्र करने वाले हैं, तो यह सब कुछ लोकसंग्रह के लिए कर रहे हैं । ऋषियों ने कहा– भगवन् ! हम लोग तो आपकी माया से मोहित हैं । प्रभो ! आपकी लीला अत्यन्त आश्चर्यमयी है । आप स्वयं निरभिलाष रहकर भी अकेले सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि एवं पालन का कार्य करते हैं ।

अथापि काले स्वजनाऽभिगुप्तये विभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च।
स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ।।

(भा० १०/८४/१८)

भगवन् ! आप प्रकृति से परे हैं । परब्रह्म परमात्मा हैं । फिर भी समय-समय पर आप अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए तथा दुष्टों का दमन करने के लिए अवतार ग्रहण किया करते हैं । आप अपनी लीला से सनातन वैदिक मार्ग की रक्षा करते हैं क्योंकि आप ही समस्त वर्णों एवं आश्रमों के रूप में विद्यमान हैं । आप सबों के आश्रय हैं तथा ब्राह्मण्य हैं । आप सन्त पुरुषों के एकमात्र आश्रय हैं । आप अपनी योगमाया के द्वारा ही अपने ऐश्वर्य को छिपाये रहते हैं । यही कारण हैं कि ये राजागण तथा यदुवंशी भी आपको नहीं जान पाते हैं ।

तस्याद्य ते ददृशिमांघ्रिमघौघमर्ष,
तीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ।
उत्सिक्तभक्त्युपहिताशयजीवकोशा,
आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ।।

(भा० १०/८४/२६)

प्रभो ! बहुत बड़े ऋषि-मुनि अपने अत्यन्त परिपक्व योग साधना के द्वारा आपके चरण कमलों को हृदय में धारण करते हैं । आपके चरण कमल समस्त पापों को विनष्ट करने वाले तथा गंगाजल के भी आश्रय स्थान हैं । यह बड़ा सौभाग्य है कि हमलोग आपके उन चरण कमलों का दर्शन कर पाये । हम आपके भक्त हैं, आप हम लोगों

पर कृपा करें । आपकी उत्कृष्ट भक्ति के द्वारा जिन लोगों का लिङ्ग शरीर रूपी जीवकोष विनष्ट हो गया है, ऐसे ही जीव आपके परमपद को प्राप्त कर पाते हैं । इस प्रकार से श्रीभगवान् से आज्ञा लेकर जब समस्त ऋषिगण अपने-अपने आश्रम पर जाने के लिए तैयार थे उस समय श्रीवसुदेवजी उन महर्षियां के चरण पकड़ लिए और बोले– आप कोई ऐसा उपाय बतलाएँ कि कर्मों के द्वारा कर्मों की वासना समाप्त हो जाय ।

श्रीनारदजी ने ऋषियों को समझाया कि श्रीवसुदेवजी श्रीभगवान् को अपना पुत्र समझते हैं । अतएव शुद्ध मन से हमलोगों से अपने कल्याण का साधन पूँछ रहे हैं ।

सन्निकर्षो हि मर्त्यानामनादरणकारणम् ।
गाङ्गं हित्वा यथान्ययाम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ।।
(भा० १०/८४/३१)

संसार में बहुत पास रहना भी मनुष्य के अनादर का कारण हुआ करता है । गंगा तट पर रहने वाला अपने को शुद्ध करने के लिए गंगा जल छोड़कर किसी दूसरे जल के पास जाता है । अतएव ये लोग भगवान् श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को नही जान पाते हैं ।

नारदजी की बातों को सुनकर महर्षियों ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के समक्ष ही श्रीवसुदेवजी को सम्बोधित करना प्रारम्भ किया।

कर्मणा कर्मनिहारं एष साधु निरूपितः ।
यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञश्वेरं मखैः ।।
(भा० १०/८४/३५)

कर्मों के द्वारा कर्मवासनाओं तथा कर्मफलों को विनष्ट करने का सबसे अच्छा साधन है कि यज्ञों के द्वारा समस्त यज्ञों के स्वामी श्रीभगवान् की श्रद्धापूर्वक आराधना की जाय । यही मोक्ष प्रदान करने वाला तथा आनन्दप्रद साधन है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्यों का सबसे कल्याणकारी यही मार्ग हैं । त्रिवर्ण के मनुष्य देवऋण, पितृऋण, तथा ऋषिऋण लेकर इस संसार में आते हैं । इस संसार में आकर उन ऋणों से उऋण होना अनिवार्य है । वसुदेवजी आप पितृऋण एवं ऋषिऋण से मुक्त हो चुके हैं । अतएव देवऋण से मुक्त होने के लिए आपको यज्ञों द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करनी चाहिए।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि ऋषियों की बातों को सुनकर वसुदेवजी ने उन्हें प्रणाम किया और यज्ञ के लिए उनका ऋत्विज के रूप में वरण किया । ऋषियों ने वसुदेवजी से उत्तमोत्तम सामग्रियों से कुरुक्षेत्र में यज्ञ कराया । सभी यदुवंशियों ने उस समय उत्तमोत्तम अलंकार धारण किया था । अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे । ऋषिवरों ने अपनी अठारह पत्नियों के साथ वसुदेवजी का महाभिषेक की विधि से अभिषेक कराया । यज्ञ में दीक्षित होने के कारण वे मृगचर्म धारण किए हुए थे और उनकी पत्नियाँ उत्तमोतम वस्त्र धारण की थीं। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी भी अपने परिवार के साथ सुशोभित हो रहे थे । उन्होंने ऋत्विजों तथा ब्राह्मणों को अनेक प्रकार का दान दिया । अन्त में महर्षियों ने वसुदेवजी से पत्नीसंयाज नामक यज्ञाङ्ग कराया तथा अवमृथ स्नान कराया । वसुदेवजी ने परशुरामह्रद में स्नान किया ।

इसके पश्चात् भगवान् ने सबों को अनेक प्रकार से अलंकृत किया । सबों का अनेक प्रकार से सम्मान किया और विदा किया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् नन्द इत्यादि गोपों के साथ कुरुक्षेत्र में तीन महीनों तक प्रेम पूर्वक निवास किये । जब यह हो गया कि वर्षा के दिन आ रहे हैं अतएव अब चलना चाहिए तो समस्त गोपों तथा गोपियों के साथ प्रेमपूर्वक मिलकर श्रीभगवान् ने उन्हें विदा किया ।

सब लोगों के चले जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण को ही आराध्य मानने वाले यदुवंशी द्वारका के लिए प्रस्थान किए और वहाँ जाकर इन लोगों ने वसुदेजी के यज्ञमहोत्सव का समाचार सुनाया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पच्चासीवाँ अध्याय

श्रीभगवान् द्वारा वसुदेवजी को ब्रह्मज्ञानोपदेश तथा देवकीजी के छह पुत्रों को लौटा लाना

एकबार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ने आकर वसुदेवजी को प्रणाम किया तो ऋषियों के ज्ञानोपदेश से प्रभावित वसुदेवजी ने कहा–

कृष्ण ! कृष्ण ! महायोगिन् संकर्षण सनातन ।
जाने वामस्य यत् साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ ।।
(भा० १०/८५/३)

हे कृष्ण ! हे बलराम ! आप दोनों महायोगी हो और सनातन पुरुष हो । आप दोनों साक्षात् प्रकृति तथा पुरुष से श्रेष्ठ परमात्मा हो। आप दोनों षड्भाव विकारों से रहित हो तथा आपकी ही शक्ति से यह संसार स्थिर है । सम्पूर्ण ज्योति वर्ग में आपका ही प्रकाश प्रकाशित हो रहा है ।

युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ ।
भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथाऽऽत्थ . ह ।।
(भा० १०/८५/१८)

मैं जानता हूँ कि आप दोनों हमारे पुत्र नहीं हो; अपितु सम्पूर्ण प्रकृति तथा जीवों के स्वामी हो । आपलोगों ने पृथिवी के भार भूत राजाओं का विनाश करने के ही लिए अवतार ग्रहण किया है । यह बात आपने मुझसे कहा भी है । अतएव अब मैं आपके चरण कमलों का आश्रय ग्रहण करता हूँ । आप शरणागत जीवों के संसारभय को विनष्ट करने वाले हैं ।

श्रीवसुदेवजी की बातों को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कुराने लगे और मधुर वाणी में बोले–

वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ।
यन्नः पुत्रान् समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ।।
(भा० १०/८५/२२)

पितः ! हम तो आपके पुत्र हैं । हमें लक्ष्य बनाकर आपने ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया है । मैं आपकी एक-एक बात को युक्तियुक्त मानता हूँ । सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मात्मक है । आत्मा तो एक ही है, वह अपने आप में गुणों की सृष्टि कर लेता है । श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर वसुदेवजी ने अपनी भेदबुद्धि का परित्याग कर दिया ।

देवकीजी ने जब यह सुना कि श्रीकृष्ण ने अपने गुरु के मृतपुत्र को ला दिया था तो उन्हें भी अपने उन पुत्रों की याद आ गयी जिन्हें कंस ने मार दिया था । वे कहने लगीं–

रामा रामप्रमेयात्मन् कृष्णयोगेश्वरेश्वर ।
वेदाऽहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ।
कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ।
भूमे र्भारायमाणानांमवतीर्णौकिलाद्य मे ।।

(भा० १०/८५/२९-३०)

लोकाभिराम राम ! तुम्हारी शक्ति मन एवं वाणी का अविषय है। श्रीकृष्ण तुम योगेश्वरों के भी स्वामी हो । आदिपुरुष नारायण हो । यह भी मुझे निश्चित रूप से ज्ञात है कि कालक्रम के कारण उन्मार्गगामी बने राजा; जो पृथिवी के भार बन गये हैं उन लोगों का विनाश करने के लिए आप अवतीर्ण हैं । आप ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार करने वाले हैं । आप गुरु सन्दीपनि के बहुत दिनों के मरे हुए पुत्र को लौटा लाये थे । मैं भी चाहती हूँ कि मेरे जिन पुत्रों को कंस ने मार दिया था उन सबों को मैं देख लूँ । अपनी माता के द्वारा प्रेरित होकर बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् ने सुतलोक में प्रवेश किया । जब बलि ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी आये हैं तो बलि राजा ने उन दोनों महापुरुषों की सविधि समर्चा की तथा अपने समस्त परिवार एवं विविध सामग्रियों को उनके चरणों में समर्पित कर दिया तथा श्रीभगवान् के चरण कमलों को अपने सिर पर रख लिया । राजा बलि ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी की स्तुति करते हुए कहा–

नमोऽनंताय बृहते नमः कृष्णाय बेधसे ।
सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ।।

बलरामजी आप अनन्त हैं । आप इतने महान् हैं कि आपके इस

शरीर के भीतर ही आपके शेष आदि विग्रह अन्तर्भूत हैं । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण आप सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा हैं । आप ही ज्ञानयोग एवं भक्तियोग के प्रवर्तक हैं । आप परंब्रह्म हैं । आप दोनों को हम प्रणाम करते हैं । हम जैसे सामान्य जीवों को आप लोगों का दर्शन दुर्लभ है। हमारा बड़ा ही सौभाग्य है कि आपलोगों का दुर्लभ दर्शन हमें प्राप्त हुआ। आप हमें आज्ञा दीजिए और आपने आने का प्रयोजन बतलाइये ।

श्रीभगवान् ने बलि से कहा कि स्वायम्भुव मन्वन्तर में महर्षि मरीचि के पुत्र रूप में उनकी पत्नी उर्णा के गर्भ से छह पुत्र पैदा हुए वे देवता थे । उन सबों ने जब देखा कि ब्रह्माजी अपनी ही पुत्री सरस्वती से समागम के लिए उत्सुक हैं तो वे हँसने लगे । ब्रह्माजी ने उन सबों को दैत्य होने का शाप दे दिया । वे सब हिरण्यकशिपु के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए । फिर योगमाया ने उन सबों को देवी देवकी के गर्भ में स्थापित कर दिया । उन सबों के उत्पन्न होते ही कंस ने उन सबों को मार डाला । माता देवकी अपने उन पुत्रों को देखना चाहती हैं । वे सब आपके पास हैं । हम उन सबों को ले जायेंगे । वे फिर शाप मुक्त होकर अपने लोक में चले जायेंगे । उनके नाम हैं– स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत और घृणि । राजा बलि ने श्रीभगवान् की पूजा करके उन्हें बालकों को प्रदान किया । भगवान् श्रीकृष्ण उन बालकों को लाकर माता देवकी को सौंप दिये । बालकों को देखकर माता देवकी का वात्सल्य उमड़ पड़ा । उन्होंने सबों को छाती से लगाया और अपना दूध पिलाया । उसके बाद उन सबों ने माता देवकी, वसुदेवजी, बलरामजी, तथा भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया तथा वे सब देवलोक में चले गये । मरे हुए बालकों के आने तथा पुनः चले जाने से माता देवकी को बहुत आश्चर्य हुआ ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का पच्चासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छियासीवाँ अध्याय

सुभद्रा हरण की कथा

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से कहा कि प्रभो ! आप हमे उस कथा को सुनाइये जिस प्रकार से हमारे पितामह अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का हरण किया । श्रीशुकदेवजी ने कहा कि अर्जुन एकबार तीर्थ यात्रा करते हुए प्रभास क्षेत्र आये और वहाँ पर उन्होंने सुना कि बलरामजी मेरे मामा वसुदेव की पुत्री सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते हैं; किन्तु वसुदेवजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा नहीं चाहते हैं । अब अर्जुन के मन में सुभद्रा को प्राप्त करने की अभिलाषा जगी । अर्जुन त्रिदण्डी संन्यासी का वेष बनाकर द्वारका पहुँचे और वहीं चातुर्मास्य व्रत करने लगे । बलरामजी ने अर्जुन की खूब सेवा की किन्तु वे अर्जुन को पहचान नहीं सके ।

एक दिन बलरामजी अर्जुन को भोजन करने के लिए अपने घर ले गये । अर्जुन ने जब अत्यन्त सुन्दरी सुभद्रा को देखा तो उन्होंने अपने मन में निश्चय कर लिया कि इसको मैं अपनी पत्नी बनाऊँगा । सुभद्रा ने भी अर्जुन के शरीर के सौन्दर्य को देखा और अर्जुन की ही पत्नी बनने का निश्चय किया । अर्जुन उस अवसर की ताक में थे कि कब वे सुभद्रा का हरण कर लें ।

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ।
जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ।।

(भा० १०/८६/९)

एक बार सुभद्रा रथ पर सवार होकर द्वारका दुर्ग से देव दर्शन के लिए बाहर निकली । उसी समय देवकी-वसुदेव तथा भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमति प्राप्त करके अर्जुन ने सुभद्रा का हरण कर लिया और उसके रक्षक सैनिकों को मारकर भगा दिया । जब इस बात को बलरामजी ने सुना तो वे बहुत अधिक क्रुद्ध हुए । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका पैर पकड़ लिया और उन्हें बड़ी ही मुश्किल से

मनाया । इसके बाद बलरामजी ने प्रसन्न होकर वर एवं वधू के लिए बहुत सी सामग्री दहेज के रूप में भेजा ।

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित को बतलाया कि मिथिला नगरी में भगवान् श्रीकृष्ण के परमभक्त एक ब्रह्मण रहते थे । उनका नाम श्रुतदेव था । उस समय मिथिला के राजा बहुलाश्व थे । दोनों श्रीभगवान् के परम भक्त थे । एक बार श्रीभगवान् रथ पर सवार होकर मिथिला नगरी के लिए प्रस्थान किये । रास्ते में श्रीभगवान् को लोग जगह-जगह पर नागरिक अभिनंदन करते थे ।

तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः ।
क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ।
शृण्वन् दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नम् ।
गीतां सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ।।

(भा० १०/८६/२१)

त्रैलोक्य गुरु भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से उन लोगों की अज्ञान दृष्टि विनष्ट हो गयी । श्रीभगवान् का दर्शन करने वाले नर-नारियों को भगवान् अपनी दृष्टि से परम कल्याण तथा तत्त्वज्ञान का दान करते हुए चल रहे थे । स्थान-स्थान पर मनुष्य एवं देवता भगवान् की उस कीर्ति को गाकर सुनाते थे; जो सभी दिशाओं को उज्ज्वल बनाने वाली एवं समस्त अशुभों का विनाश करने वाली है । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण धीरे-धीरे विदेह नगर में पहुँच गए । सबलोगों ने श्रीभगवान् तथा उनके साथ पधारे ऋषियों की पूजा की । भगवान् को देखकर सबलोग प्रसन्न थे । राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ने समझा कि भगवान् उन पर कृपा करने के लिए आये हैं । राजा बहुलाश्व और ब्राह्मण श्रुतदेव ने भगवान को अतिथ्यग्रहण करने के लिए एक ही समय में निमन्त्रित किया । भगवान् दोनों का निमन्त्रण स्वीकार करके अलग-अलग अपना रूप बनाकर दोनों के घर में आतिथ्य स्वीकार करने के लिए गये। जब श्रीभगवान् राजा बहुलाश्व के घर महर्षियों के साथ गये तो राजा ने सबों की सविधि पूजा की । सबलोग भोजन करके तृप्त हो गये तो राजा श्रीभगवान् के चरणों को अपनी गोद में रख लिए और उन्हें सहलाते हुए भगवान् की स्तुति करने लगे । राजा ने कहा–

भवान् हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ।
अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ।।

(भा० १०/८६/३१)

प्रभो ! आप समस्त प्राणियों की आत्मा साक्षी एवं स्वयम्प्रकाश हैं । हम सदा आपके चरण कमलों का स्मरण करते रहते हैं । इसीलिए आपने दर्शन देकर हमलोगों को कृतार्थ किया । प्रभो ! यह आपकी परम दयालुता है । आप अचिन्त्य एवं अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न हैं । प्रभो! आप कुछ दिनों तक यहाँ निवास करें और इस निमिवंश को पवित्र करें। राजा की प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् कुछ दिनों तक वहाँ निवास किए ।

इधर भगवान् श्रीकृष्ण मुनि मण्डली के साथ श्रुतदेव के घर पधारे । श्रुतदेव ने सबों की सविधि पूजा की । श्रीभगवान् तथा मुनियों की आराधना करके श्रुतदेव अपने को कृतकृत्य मान रहे थे । उन्होंने श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहा–

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ।
यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ।।

(भा० १०/८६/४४)

प्रभो ! आप तो प्रकृति एवं पुरुष दोनों से उत्कृष्ट परम पुरुष हैं। अतएव आप मुझे आज ही दर्शन दे रहे हों ऐसी बात नहीं है; आपने तो जब से जगत् की सृष्टि की तब से ही उसकी सृष्टि करके उसके भीतर अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हैं । आपका दर्शन ही समस्त दुःखों को विनष्ट कर देने वाला है । उस ब्राह्मण की स्तुति को सुनकर श्रीभगवान् ने कहा कि ब्रह्मन् तुम्हारे ऊपर दया करने के ही लिए मैं इन ब्राह्मणों के साथ यहाँ आया हूँ । ब्राह्मण तो जन्म से ही संसार के समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ होता है । जो मेरा भक्त ब्राह्मण हो उसके विषय में क्या कहना है ? मेरे चतुर्भुज रूप से भी मुझे ब्राह्मण अधिक प्रिय हैं । इस बात को नहीं जानने वाले अज्ञानी जीव ही ब्राह्मणों का अपमान करते हैं । अतएव तुम मेरे ही समान इन समस्त ब्राह्मणों की पूजा करो । श्रीभगवान् की आज्ञानुसार ब्राह्मणों की पूजा करके उस श्रुतदेव नामक ब्राह्मण तथा मिथिलाधिप ने सद्गति प्राप्त कर ली ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सत्तासीवाँ अध्याय

वेद स्तुति

महाराज परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से पूँछा कि परब्रह्म तो अनिर्देश्य हैं, उन निर्गुण श्रीभगवान् का निर्देश सगुण वृत्ति वाली श्रुतियाँ कैसे करती हैं ? श्रीशुकदेवजी ने कहा कि परमात्मा ने जीवों को बुद्धि, इन्द्रिय, मन एवं प्राण इसलिए प्रदान किया है कि इनके द्वारा तत्त्वचिन्तन करके वे चतुर्विध पुरुषार्थों की प्राप्ति कर सकें । इस ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली उसनिषत् को पूर्वजों के भी पूर्वज सनकादिक महर्षियों ने धारण किया । इसको जो कोई भी धारण करता है, वह अकिञ्चिन पुरुष मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । इसके विषय में मैं तुम्हें नारदजी तथा भगवान् नारायण के संवाद स्वरूप इतिहास को बतलाता हूँ । एकबार विचरण करते हुए देवर्षि नारदजी वदरिकाश्रम में गये । यह आश्रम मानव जीवन का सर्वाधिक कल्याण करने वाला है। इसक्षेत्र में कल्प के प्रारम्भ से ही श्रीभगवान् नारायण तपस्या में संलग्न हैं । वे भगवान् एक दिन कलापग्राम में ऋषियों के बीच में बैठे हुए थे । उस समय ऋषियों ने भी यही प्रश्न किया और उनका उत्तर देते हुए श्रीभगवान् ने कहा कि जनलोक निवासियों के बीच में यही बात ब्रह्म के स्वरूप के निरूपण के विषय में कही गयी थी ।

भगवान् नारायण ने नारदजी को बतलाया कि एक बार जनलोक में सनकादिक महर्षियों का ब्रह्म के विषय में सत्र हुआ । उस समय आप श्वेतद्वीप में मेरी श्वेतमूर्ति का दर्शन करने के लिये चले गये थे । उस समय भी यही प्रश्न उठा था जो प्रश्न तुम हमसे पूछ रहे हो। यद्यपि सनकादिक चारो महर्षि ज्ञान, तपस्या तथा शील स्वभाव के विषय में एक समान हैं फिर भी उनमें सनन्दनजी तो वक्ता बन गये और शेष तीन महर्षि श्रोता । सनन्दन महर्षि ने कहा– जिस प्रकार सोए हुए सम्राट को बन्दीजन उनकी स्तुति का गान करके उसे जगाते हैं उसी प्रकार काल के अन्त में श्रीभगवान् को श्रुतियाँ इस प्रकार जगाती हैं ।

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते,
क्वचिदजयाऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ।।
(भा० १०/८७/१४)

हे प्रभो ! आप अजित हैं । आपको कोई किसी भी प्रकार जीत नहीं सकता है । आपकी जय हो, जय हो । जो माया अपने दोषों से जीवों को फँसाने का काम करती है, उसको आप विनष्ट कर दीजिए। आप स्वभावतः समस्त ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं । संसार की सम्पूर्ण ज्ञानशक्ति आदि क्रियाओं को उद्बुद्ध करने वाले आप ही हैं । किन्तु जब कभी भी आप माया के द्वारा जगत् की सृष्टि करके उसके भीतर संचरण करते हैं उस समय हम श्रुतियाँ ही आपके स्वरूप का वर्णन करने में समर्थ होती हैं । यद्यपि हम वेद समुदाय अन्य इन्द्र, अग्नि, आदि देवताओं का वर्णन करते हैं । किन्तु हम सम्पूर्ण जगत् को परमात्मा के शेषरूप से ही जानते हैं । आप सृष्टि से पूर्व भी रहते हैं। सृष्टि काल में जगत् रूप से परिणत हो जाते हैं । फिर भी आप सदा अविकार ही बने रहते है । इसीलिए ऋषियों ने मन एवं वाणी के समस्त विषयों को आप में ही अनुभव किया । अतएव चाहे हम जिस नाम अथवा रूप का वर्णन करें वह आपका ही नाम एवं रूप है ।

इस प्रकार से महर्षि सनन्दन ने श्रुति प्रतिपादित परमात्मा के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया । उसे सुनकर इन महर्षियों को अनुभव हुआ कि वे परमात्मा के स्वरूप का श्रवण करके सिद्ध हो गये हैं । उनलोगों ने महर्षि सनन्दन की पूजा की । चूँकि ये सनकादिक महर्षि सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए हैं अतएव सबों के पूर्वज हैं । भगवान् नारायण ने नारदजी से कहा कि आप भी सनकादिक महर्षियों के ही समान ब्रह्माजी के मानसपुत्र हैं अतएव इस ज्ञानसम्पत्ति को धारण करें । यह ब्रह्मात्मविद्या ऐसी विद्या है कि मनुष्यों की सारी वासना रूपी मल को भस्म कर देती है ।

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को बतलाया कि नारदजी नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, जो कुछ भी सुनते हैं धारण कर लेते हैं । नारदजी ने भगवान् नारायण से कहा कि प्रभो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

आप जीवों को मोक्ष प्रदान करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं । ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् नारायण और उनके शिष्यों को प्रणाम किया और उसके पश्चात् मेरे पिता कृष्ण-द्वैपायन के आश्रम पर आये । मेरे पिता द्वारा यथोचित सत्कार प्राप्त करके उन्होंने आसन ग्रहण किया और उस सम्पूर्ण ज्ञान को उन्होंने व्यासजी को सुनाया जो उन्होंने भगवान् नारायण से प्राप्त किया था ।

परीक्षित् मैंने आपको बतलाया कि मन एवं वाणी के अविषयभूत भी परब्रह्म परमात्मा किस प्रकार से मन एवं वाणी के विषय बनते हैं।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का सत्तासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

अट्ठासीवाँ अध्याय

शिवजी के संकट का विनाश

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेवजी से पूँछा कि श्रीभगवान् तो लक्ष्मी पति हैं तथा श्रीशंकरजी अंकिञ्चन हैं । किन्तु शंकरजी की आराधना करने वाले धनी हो जाते हैं तथा श्रीभगवान् की पूजा करने वाले ऐसा नहीं हो पाते; इसका कारण क्या है ? इस पर श्रीशुकदेवजी ने कहा कि शिवजी सर्वदा शक्ति से सम्पन्न रहते हैं । वे सत्त्वादि गुणों से युक्त अहंकार के अधिष्ठाता हैं । अहंकार से ही पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रिया, पञ्च महाभूत एवं मन की उत्पत्ति हुई है । इनमें से किसी के भी अधिष्ठाता की उपासना करने से मनुष्य सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेता है । अवश्वमेघ यज्ञ की समाप्ति हो जाने पर महाराज युधिष्ठर ने अनके धर्मों के श्रवण के प्रसंग में भगवान् श्रीकृष्ण से भी यही प्रश्न किया था । युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुखितम् ।।

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ।।
(भा० १०/८८/८-९)

जिसको मैं अपना बनाता हूँ उसके धन को मैं धीरे-धीरे हरण कर लेता हूँ । धन के अभाव में वह व्यक्ति अत्यन्त दुखी हो जाता है। उसके अपने लोग भी उसे छोड़ देते हैं । इसके बाद भी वह धन प्राप्त करने का प्रयास करता है, किन्तु फिर भी वह अपने प्रयास में सफल नहीं होता है । तब वह धन की प्राप्ति के प्रयास से उदास हो जाता है। तब उसे मेरे भक्तों की संगति मिल जाती है और वह मेरे कृपा का विषय बन जाता है । यही कारण है कि मुझ दुराध्य को छोड़कर उपासक जन दूसरे देवता की उपासना करने लग जाते हैं । भगवान् शंकर तो शीघ्र प्रसन्न हो जाने वाले हैं । उनकी कृपा से ऐश्वर्य को प्राप्त करके जीव राज्य पा लेते हैं तथा मदमत्त होकर ज्ञानी पुरुषों का भी अपमान कर देते हैं ।

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया– किसी को वरदान देने अथवा शाप देने में ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर तीनो देवता समर्थ हैं । ब्रह्माजी अथवा शिवजी शीघ्र ही किसी को शाप अथवा वरदान दे देते हैं, किन्तु भगवान् विष्णु इतनी शीघ्रता नहीं करते । शकुनि के पुत्र का नाम वृकासुर था । उसने रास्ते में नारदजी को देखा । उसने पूँछा कि तीनों देवताओं में शीघ्र प्रसन्न होने वाले देव कौन है ? नारदजी ने उसे भगवान् शंकरजी की आराधना करने को कहा । वृकासुर शंकरजी की आराधना करने के लिए केदार क्षेत्र में चला गया और अग्नि को ही भगवान् शंकर का मुख मानकर अग्नि में अपने अंगों को काट-काटकर हवन करने लगा । जब उसने देखा कि भगवान् शंकर प्रसन्न नहीं हो रहे हैं तो उसने निश्चय किया कि कुल्हाड़ी से अपना सिर ही काटकर हवन कर दूँगा । वृकासुर को अपना सिर काटते हुए देखकर भगवान् शंकर उस अग्नि से ही प्रकट होकर उसके दोनों हाथों को पकड़ लिए। भगवान् शंकर का स्पर्श होते ही वृकासुर के सारे अंग पूर्ण हो गये । भगवान् शंकर ने उससे वरदान माँगने को कहा तो उसने कहा मैं जिसके सिर पर हाँथ रख दूँ वह मर जाय । पहले तो भगवान् शंकर अनमने से हो गये और बाद में उसे वह वरदान दे दिए । अब वृकासुर

भगवान् शंकर से पार्वती को छीनना चाहा और अपना हाथ शंकरजी के ही सिर पर रखने के लिए दौड़ा । शंकरजी भागने लगे । वह सभी लोकों में भगवान् शंकर का पीछा करते हुए गया । अन्त में भागते हुए भगवान् शंकर वैकुण्ठ में गए ।

भगवान् विष्णु ने देखा कि शिवजी परेशान हैं । उन्होंने योगमाया का आश्रय लेकर एक सुन्दर एवं छोटा ब्रह्मचारी का वेष बनाया और वृकासुर के सामने से ही आने लगे । उन्होंने वृकासुर को प्रणाम किया और कहने लगे वृकासुरजी आप बहुत थके से लग रहे है । थोड़ा विश्राम कर लीजिए । शरीर पर आपको ध्यान देना चाहिए। क्या बात है ? अपनी परेशानी का कारण बतलाइये । संसार में किसी को सहायक बनाना चाहिए । बहुत से काम सहायकों से ही सिद्ध होते हैं।

श्रीभगवान् की अमृतवर्षी मीठी बातों को सुनकर वृकासुर ठहर गया । फिर उसने अपनी आराधना और वरदान की प्राप्ति तथा दौड़ने का कारण बतलाया ।

भगवान् विष्णु ने कहा– हम लोग शिवजी की बातों पर विश्वास नहीं करते हैं । वे तो दक्ष के शाप से पिशाच हो गए हैं और पिशाचों के स्वामी हैं । आप यदि उनके वरदान पर विश्वास करते हों तो पहले अपने ही सिर पर अपना हाथ रखकर देख लीजिए न । छोड़िए उन मृषा वादी की बात । भगवान् की अद्भुत तथा मोहक बातों में भूलकर वृकासुर ने अपने ही सिर पर अपना हाथ रख दिया । इसके बाद उसका सिर फट गया और वह मर गया । उसके मरते ही सभी देवता श्रीभगवान् का जय-जयकार मनाने लगे । भगवान् विष्णु ने शिवजी से कहा कि वह पापी अपने ही पापों से विनष्ट हो गया । भगवान् शंकर की इस विपत्ति से मुक्ति की कथा जो श्रद्धापूर्वक सुनता है, उसका संसार का बन्धन कट जाता है और वह शत्रुओं के भय से मुक्त हो जाता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

नवासीवाँ अध्याय

महर्षि भृगु द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा और श्रीभगवान् द्वारा ब्राह्मणपुत्रों का आनयन

एक बार बड़े-बड़े ऋषियों ने मिलकर सरस्वती नदी के तट पर सत्रारम्भ किया । उन लोगों ने यह निर्णय करना चाहा कि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव जी में कौन देवता श्रेष्ठ हैं ? इस बात का निर्णय करने का अधिकार भृगु महर्षि को दिया गया । तीनों देवताओं की परीक्षा लेने की इच्छा से भृगु महर्षि सर्वप्रथम ब्रह्माजी के सभा में आए; किन्तु ब्रह्माजी को बिना नमस्कार किए ही वे चुपचाप खड़े हो गये । यह देखकर ब्रह्माजी को बड़ा ही क्रोध आया, किन्तु उन्होंने देखा कि ये तो हमारे पुत्र भृगुजी हैं तो उन्होंने अपना क्रोध शान्त कर लिया ।

इसके पश्चात् महर्षि भृगु कैलास पर्वत पर आये । भगवान् शंकर ने भृगु महर्षि को देखकर भ्रातृप्रेम के कारण अलिङ्गन करना चाहा । किन्तु महर्षि भृगु ने कहा– तुम उन्मार्गगामी हो । मुझे छूओ मत । यह सुनते ही शंकरजी ने उन्हें मारने के लिए अपना त्रिशूल उठाया, किन्तु सतीजी उनके चरणों पर गिरकर उनका क्रोध शान्त करायीं ।

इसके पश्चात् भृगु महर्षि क्षीरसागर में पहुँचे । वहाँ श्रीभगवान् शेषशय्या पर शयन कर रहे थे । जाते ही भृगु महर्षि ने उनके वक्षःस्थल में लात मार दी । महर्षि भृगु के देखकर भगवान् विष्णु अपनी शय्या से उठकर खड़े हो गये और महर्षि का पैर पकड़कर सहलाते हुए कहे–

आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीदात्रासने क्षणम् ।
अजानतामागतान् वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ।।
अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।।

(भा० १०/८९/९-१०)

श्रीभगवान् कहने लगे ऋषे आपका स्वागत है । थोड़ी देर तक

इस आसन पर विश्राम कीजिए । मैं आपके आगमन को जान नहीं सका; अतएव मेरे अपराध को आप क्षमा कर दें । महर्षे ये आपके चरण अत्यन्त कोमल हैं । आप मेरे इस लोक तथा लोकपालों को पवित्र कीजिए । आपके चरणों से चिहि्नत मेरे वक्षस्थल में लक्ष्मी जी सदा निवास करेंगी । भगवान् की इन बातों को सुनकर भृगुजी का मन भक्ति से भर गया और वे सरस्वती नदी के तट पर आकर सबों से श्रीभगवान् की महानता की प्रशंसा किए । महर्षिभृगु की बातों को सुनकर सभी ऋषियों का सन्देह दूर हो गया । भगवान् विष्णु ही धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा अष्टविध ऐश्वर्य के प्रदाता हैं । वे सबों के परम प्राण हैं । श्रीभगवान् की श्रेष्ठता की यह कथा जो सुनता है उसका संसार का बन्धन दूर हो जाता है ।

एकबार द्वारका में किसी ब्राह्मण की पत्नी को पुत्र हुआ और पृथिवी का स्पर्श होते ही वह मर गया । उस मरे पुत्र को राजद्वार पर ले जाकर रखते हुए ब्राह्मण ने कहा–

ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ।
क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात् पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ।।
हिंसा विहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् ।
प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्राः नित्यदुःखिताः ।।
(भा० १०/८९/२४-२५)

निःसन्देह ब्राह्मण-द्रोही, धूर्त, लोभी तथा विषयी राजा के ही कर्मदोष के कारण मेरे पुत्र की मृत्यु हुई हैं । जो राजा हिंसक, दुःशील तथा अजितेन्द्रिय होता है, उस राजा का अनुगमन करने वाली प्रजा सदा दरिद्र एवं दुःखी रहती है । इसी तरह उस ब्राह्मण के आठ पुत्र हुए और मर गये । ब्राह्मण सभी पुत्रों के शव को राजद्वार पर रखकर आ जाता था । नवें बालक के मरने पर अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट में ही कहा– ब्राह्मण द्वारका में कोई धनुर्धारी क्षत्रिय नहीं है क्या ? इस बार मैं आपके बालक की रक्षा करूँगा । ब्राह्मण ने कहा जब मेरे पुत्रों की रक्षा भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम नहीं कर पा रहे हैं तो आप क्या करेंगे ? अर्जुन ने कहा– मेरा नाम अर्जुन है मेरा धनुष गाण्डीव है । एक बार यमराज से भी युद्ध करके आपके बालक की रक्षा मैं करूँगा । इसबार जब ब्राह्मण को पुत्र होने वाला था उसने

अर्जुन को बतलाया । अर्जुन ने अपने बाणों के जाल से प्रसूतिगृह को एक पिजंड़े के सदृश घेर दिया । ब्राह्मण का पुत्र होते ही बहुत रोया और एकाएक प्रसूति गृह से गायब हो गया । अर्जुन अपनी संयमनी विद्या के बल से उस बालक का पता लगाने के लिए अनेक लोकों में गये। जब कहीं भी उस बालक का पता नहीं चला तो वे लौटकर आये और चिता में जलकर मर जाने के लिए तैयार हो गये । यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मेरे साथ चलो मैं ब्राह्मण के सभी पुत्रों को तुम्हें दिखाता हूँ । यह कहकर अर्जुन तथा श्रीकृष्ण रथ पर सवार होकर सात पार्वतों वाले सात द्वीपों को पार किए । उसके पश्चात् लोकालोक पर्वत के आगे जब उनका रथ चला तो इतना अन्धेरा था कि भगवान् के रथ के शैव्य, सुग्रीव, बलाहक एवं मेघपुष्प नामक घोड़े भी रास्ता भूलने लगे । इसके बाद भगवान् ने सुदर्शन चक्र को आगे-आगे चलकर रास्ता दिखाने के लिए कहा । करोड़ो सूर्य के समान चमकने वाले सुदर्शन के प्रकाश में भगवान् का रथ बढ़ता गया। आगे जाकर अर्जुन और श्रीकृष्ण ने शेषनाग का दर्शन किया । भगवान् शेष की शैय्या पर सोए हुए थे । उनको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उन्हें नमस्कार किया । श्रीभगवान् ने अर्जुन से कहा कि तुम्हें तथा श्रीकृष्ण को देखने के ही लिए मैंने ब्राह्मण के पुत्रों को अपने पास बुला लिया था । अब आप लोग पृथिवी के भारभूत क्षत्रियों का विनाश करके शीघ्र ही लौट आइये । आप दोनों साक्षात् नर और नारायण के अवतार हैं। इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन ब्राह्मण के सभी पुत्रों को लेकर आये तथा उसे समर्पित किए । इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने अनेक यज्ञों को किया और युधिष्ठिर को राजा बनाया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध
का नवासिवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

नब्बेवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के लीलाविहार का वर्णन

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि द्वारकापुरी की अद्भुत शोभा थी । वह हाथी, घोड़ों, उद्यानों तथा पुष्पों से भरी हुई थी। इस नगरी में संसार के श्रेष्ठवीर यदुवंशियों का निवास था । श्रीभगवान् भी अपनी सोलह हजार पत्नियों के साथ सौख्य सम्प्राप्त करते थे । वे सभी पत्नियाँ अपने-अपने भवनों में क्रीड़ा आदि करती हुई अनेक प्रकार का अमोद-प्रमोद अनुभव करती थीं । भवनों की स्वच्छ जल वाली वावलियों में श्रीभगवान् जलविहार करते थे । बावलियों में कमल एवं कुमुद विकसित रहते थे । श्रीभगवान् की पत्नियाँ उनका आलिङ्गन करती थीं। और रङ्गक्रीड़ा भी किया करती थीं । श्रीभगवान् की पत्नियों का मन सर्वदा श्रीभगवान् में ही लगा रहता था । कभी-कभी तो वे श्रीभगवान् के उपस्थित रहने पर भी प्रेमोन्माद के कारण असम्बद्ध प्रलाप करने लगती थीं । कोई पत्नी कहती–

> कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
> स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ।
> वयमपि सखि कच्चिद् गाढ़निर्भिन्नचेता।
> नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ।।
>
> (भा० १०/९०/१५)

अरे कुररी बहुत रात बीत गयी है फिर भी तुम नहीं सो रही हो सारा संसार सो गया है स्वयं भगवान् भी अपना ज्ञान छिपाकर सो रहे हैं । तुम्हें नीद क्यो नहीं आती ? सखि ! हमारे ही तरह कहीं तुम्हारा भी हृदय श्रीभगवान् के गुणों तथा उनके हास पूर्वक उदार चितवनों से विद्ध तो नहीं हो गया है ।

अरे चकई ! तूने अपनी आँखें क्यों बन्द कर लिया है । तुम्हारे प्रियतम विदेश चले गये हैं क्या कि इस तरह से करुण क्रन्दन कर रही है ? तू तो बड़ी दुःखी बनी है । अतएव तू भी हमलोगों के ही समान

श्रीभगवान् की दासी बनने की कामना से उनके चरणों पर चढ़ी हुई माला को अपनी चोटी में लगाना चाहती है क्या ?

वे समुद्र से कहतीं कि समुद्र सदा तुम क्यों गजरते रहते हो ? तुम्हें रात में नींद क्यों नही आती है ? तुम तो रातभर जागते रहते हो। लगता है हमलोगों के ही समान श्रीभगवान् ने तुम्हारे भी गाम्भीर्य इत्यादि गुणों को छीन लिया है; अतएव तुम सदा चंचल बने रहते हो। इसी प्रकार वे चन्द्रमा, पवन, मेघ, कोकिला, पर्वत तथा नदियों से अपने मन की व्याकुलता का निवेदन करतीं । वे हंस से कहतीं–

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यंग शौरेः कथां,
दूतं त्वां नुविदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ।
किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद् भजामो वयं,
क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ।।

(भा० १०/९०/२४)

हंस ! आओ आसन पर बैठो और दूध पीओ । श्रीभगवान् की कथा सुनाओ मैं जानती हूँ कि तुम उन्हीं श्रीभगवान् के दूत हो । वे कुशल पूर्वक तो हैं न ? उन्होंने पहले हमसे प्रेम की बाते की थीं । क्या उन्हें वे प्रेम की बातें याद है ? उनकी मित्रता तो अत्यन्त अस्थिर है । जब उनको ही हमारी परवाह नहीं है तो हम क्यों उन्हें याद करने लगें ? अच्छी बात है तुम उनको मेरे पास ले आना । किन्तु उनके साथ लक्ष्मी को मत लाना । क्या वे लक्ष्मी को छोड़कर यहाँ नहीं आ सकते हैं ? क्या सभी पत्नियों में लक्ष्मी ही उनकी एकनिष्ठा हैं और कोई नहीं?

श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि श्रीभगवान् की कथाएँ अत्यन्त मनोहर हैं । श्रीकृष्ण भगवान् की पत्नियाँ उनमें ऐकान्तिक भाव रखती थीं । इसीलिए उन सबों ने परमपद प्राप्त किया । वे सदा श्रीभगवान् को अपने नेत्रों से देखती रहती थीं । श्रीभगवान् गार्हस्थ्य में भी रहकर वेदोक्त धर्म का पालन करके लोगों को शिक्षा देते थे कि घर में भी रहकर समस्त पुरुषार्थों को प्राप्त किया जा सकता है । भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ थी । प्रत्येक पत्नियों के दस-दस पुत्र थे । श्रीभगवान् के पुत्रों में अठारह महारथी थे वे थे–

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान् भानुरेव च ।
साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ।।

पुष्करो वेदवाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः ।
चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ।।
(भा० १०/९०/३३-३४)

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि तथा न्यग्रोध । इन सबों में श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी थे । वे सभी गुणों में अपने पिता भगवान् श्रीकृष्ण के ही समान थे ।

यदुवंशी बालकों की शिक्षा देने के लिए तीन करोड़ अठासी लाख आचार्य थे । स्वयं महाराज उग्रसेन के साथ एक नील (१००००००००००००००) सेना रहती थी । देवविरोधी दैत्यों का विनाश करने के ही लिए देवता उस वंश में अवतीर्ण हो गये थे । इस स्कन्ध का उपसंहार करते हुए श्रीशुकदेवजी ने कहा—

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो,
यदुवरपर्षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितः श्रीमुखेन,
व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम् ।।
(भा० १०/९०/४८)

भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त जीवों के आश्रयस्थान हैं । यद्यपि वे सर्वत्र व्यापक हैं फिर भी कहने के लिए उन्होंने देवकीजी के गर्भ से जन्म लिया । यदुवंशी वीर पार्षद रूप में उनका सेवा करते थे और उन्होंने अपनी भुजाओं से अधर्म का नाश कर दिया । वे स्वभावतः समस्त जगत् के दुःख को दूर करते रहते हैं । मधुर मुसुकन से सुशोभित उनका मुख व्रज की स्त्रियों तथा द्वारकापुरी की स्त्रियों के हृदय में प्रेम का सञ्चार करता रहता है । उन श्रीभगवान् की जय हो । जो व्यक्ति श्रीभगवान् की लीला कथा का श्रवण करता है, उसे परमपद की प्राप्ति हो जाती है । अतएव कल्याण कामी मानवों को उनकी लीला कथा को सुनते रहना चाहिए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह दसवें स्कन्ध का उत्तरार्ध सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा का दसवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ।

ग्यारहवाँ स्कन्ध

पहला अध्याय

ऋषियों द्वारा यदुकुल के संहार का शाप

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने श्री बलरामजी तथा यादवों के साथ रहकर दैत्यों का वध करके पृथिवी के भयंकर भार को उतारा । इसके बाद कपटपूर्ण जुए, पाण्डवों का अपमान, द्रौपदी के केश को खींचना आदि क्रियाओं के द्वारा पाण्डवों को क्रुद्ध बना दिया । इस तरह से पाण्डवों एवं कौरवों में परस्पर कलह को उत्पन्न करके परस्पर में उन दोनों पक्षों को एक दूसरे का निमित्त बनाकर उन्होंने राजाओं का विनाश किया । इस तरह से भी पृथिवी के भार को उन्होंने दूर किया । इसके पश्चात् भी श्रीभगवान् ने सोचा कि पाण्डवों के द्वारा दुष्ट राजाओं की सेना का संहार करके भी मैंने पृथिवी का बहुत कम ही भार हल्का किया है; क्योंकि आज भी यह दुर्धर्ष यदुवंश पृथिवी पर बना ही हुआ है । इन यादवों को कोई कैसे परास्त कर पायेगा क्योंकि–

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत् कथञ्चित्
मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम्
अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुं
स्तम्बस्य बह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ।।

(भा० ११/१/४)

अर्थात् यह यदुवंश हमारे आश्रित हैं । इसके पास अपार सैन्यशक्ति है । इसको देवता आदि भी पराजित नहीं कर सकते हैं, सामान्य मनुष्यों की क्या बात है ? अतएव जिस तरह परस्पर में रगड़ खाने के कारण बांस के वन में आग लग जाती है, और पूरा का पूरा वह वन ही जलकर भस्म हो जाता है उसी तरह यदुवंश में परस्पर में

कलह उत्पन्न करके तथा इसका विनाश कराकर मैं शान्तिपूर्वक अपने धाम वैकुण्ठ में जाऊँगा ।

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित से कहा कि इस प्रकार का सत्य संकल्प करके श्रीभगवान् ने ब्राह्मणों के शाप के बहाने से अपने वंश का विनाश करवाया । यह सुनकर महाराज परीक्षित ने पूँछा कि यदुवंश के लोग तो औदार्य गुण से परिपूर्ण थे, ब्राह्मणों के भक्त थे, उन यदुवंशियों को ब्राह्मणों ने शाप कैसे दिया ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि श्रीभगवान् तो सत्यसंकल्प हैं । वे जो कुछ भी चाहते हैं वही उनके समक्ष उपस्थित हो जाता है । वे संसार के जीवों का कल्याण करने के लिए इस पृथिवी पर अवतार ग्रहण करते हैं । श्रीकृष्ण रूप से इस पृथिवी पर अवतीर्ण होने के पश्चात् उन्होंने संसार के लिए मंगलमय कार्यों को किया । जब उनके परधाम गमन की बेला आयी तब उन्होंने सोंचा कि अब तो मेरा एक ही काम इस संसार में अवशिष्ट रह गया है, और वह है यदुवंश का विनाश ।

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि,
गायञ्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ।
कालात्मना निवसता युददेवगेहे,
पिण्डारकं समगमन् मुनयो निसृष्टाः ।।

(भा० ११/१/११)

श्रीभगवान् ने इस धराधाम पर मङ्गलमय कर्मों को किया । उनके समस्त कर्म पुण्य प्रदान करने वाले हैं । जो व्यक्ति श्री भगवान् के चरित्रों का गान करता है, उसके समस्त कलियुग के दोष तथा पाप विनष्ट हो जाते हैं । वे द्वारकापुरी में अपने पिता वसुदेवजी के घर में अब कालरूप से निवास कर रहे थे । उस समय महर्षिगण पिण्डारक क्षेत्र में जाकर निवास करने लगे । वे महर्षि थे– विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ तथा नाारद आदि ।

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ।
कश्यपो वामदेवाऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ।।

(भा० ११/१/१२)

इधर यदुवंश के बालको में भी उद्दण्डता आ गयी थी । उन

सबों ने जाम्बवती के पुत्र साम्ब को स्त्री के वेष में सजाया । उसको साथ में लेकर वे सब महर्षियों के सन्निकट में जाकर दिखावटी नम्रता का प्रदर्शन करते हुए उन्हें प्रणाम किये । इसके पश्चात् उन महर्षियों से उन सबों ने पूछा– महर्षियों ! यह नववधू गर्भवती है । आप लोग तो सब कुछ जानते हैं । यह आप लोगों से जानना चाहती है कि यह पुत्र पैदा करेगी अथवा पुत्री ? महर्षियों ने उन सबों की बातों को सुना और क्रुद्ध होकर कहा–

जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ।

(भा० ११/१/१६)

मूर्खों यह तुम्हारे वंश का विनाश करने वाले मूसल को जन्म देगी । महर्षियों के शाप को सुनकर वे सभी यदुवंशी युवक भयभीत हो गये तथा जब साम्ब के पेट को खोलकर देखा तो पाया कि उसके पेट में लोहे का मूसल है। यह देखकर वे सब पछता रहे थे– हम लोगों ने यह क्या किया ? हम लोगों को लोग क्या कहेंगे? वे सब उस मूसल को लेकर अपने घर गए । इसके पश्चात् दुःखी मन से वे सब उस मूसल को लेकर यादवों की सभा में गये तथा सारा वृत्तान्त कह सुनाया । जब द्वारकावासियों ने ब्राह्मणों के अमोध शाप के विषय में सुना तो वे भयभीत हो गये । वे जानते थे कि ब्राह्मणों का शाप झूठा नहीं हो सकता है । उग्रसेन उस समय यादवों के राजा थे । उन्होंने उस मूसल को चूर-चूर करवा दिया तथा चूर्ण को तथा थोड़ा सा बचे हुए लोहे को समुद्र में फेंकवा दिया ।

तच्चूर्णयित्वा मूसलं यदुराजः स आहुकः ।
समुद्रसलिलं प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ।।

(भा० ११/१/२१)

चूंकि श्रीभगवान् की ऐसी ही प्रेरणा थी इसलिए किसी ने भी भगवान् श्रीकृष्ण से कोई राय नहीं लिया । उस लोहे के टुकड़े को एक मछली निगल गयी और चूर्ण बहता हुआ समुद्र के किनारे आ लगा तथा कुछ ही दिनों में एरका के रूप में उग गया । एक मछुआरे ने अन्य मछलियों के साथ उस मछली को भी पकड़ा जिसने उस लोहे के टुकड़े का निगला था । मछली के पेट से निकले हुए लोहे से जरा नामक व्याध ने एक बाण बनाया ।

श्रीभगवान् तो सर्वज्ञ हैं । वे सब कुछ करने में समर्थ हैं । यदि वे चाहते तो ब्राह्मणों के शाप को व्यर्थ भी कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि वे ब्राह्मणों के शाप को सत्य बनाना चाहते थे:

भगवान्ज्ञातसर्वार्थः ईश्वरोऽपि तदन्यथा ।
कर्तुं नैच्छद् विप्रशाापं कालरूप्यन्वमोदयत् ।।
(भा० ११/१/२४)

इस तरह श्रीमद्भागवत साप्ताहिक कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का पहला अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

दूसरा अध्याय

कवि नामक योगीश्वर द्वारा भागवत धर्म का तथा हरि नामक योगीश्वर द्वारा भक्त के स्वरूप का निरूपण

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् से कहा– नारदजी को दक्ष प्रजापति का शाप था कि वे कहीं भी स्थिर नहीं रह सकते थे, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की नगरी द्वारका में दक्ष के शाप का प्रभाव नहीं होता था । इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना की लालसा से वे बार-बार वहाँ आकर निवास करते थे। श्रीभगवान् के चरण-कमल की उपासना तो देवता लेग भी अपने कल्याण के लिए किया करते हैं । एक बार नारदजी श्रीवसुदेवजी की सभा में पधारे । वसुदेवजी ने श्रीनारदजी की पूजा की । इसके पचात् श्रीवसुदेवजी ने श्रीनारदजी से कहा– भगवन् ! आपका आगमन तो समस्त दुःखी जीवों के कल्याण के लिए होता हैं ।

भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतमनाम् ।।

अर्थात् देवताओं का कार्य तो संसारी प्राणियों के लिए सुखप्रद एवं दुःखप्रद दोनों प्रकार का होता है; किन्तु आप जैसे भगवत्प्रिय महर्षियों का तो सारा कार्य मनुष्यों के केवल कल्याण के लिए होता है।

जो देवोपासक जिस प्रकार से देवताओं की उपासना करते हैं, देवता भी उसी के अनुसार उस व्यक्ति को फल देते हैं, क्योंकि देवता तो कर्म के अधीन होते हैं । किन्तु महात्माजन तो अपने शरणागत दीन जनों को भी अपनाते हैं । वे दीनवत्सल होते हैं

"साधवो दीनवत्सलाः"

मैं आपसे भागवत धर्म के विषय में जानना चाहता हूँ । जिस धर्म को अपनाकर प्राणी संसार के भय से मुक्त हो जाते हैं । मैंने पूर्वजन्म में श्रीभगवान् की आराधना इसलिए किया था कि वे मुझे पुत्ररूप में प्राप्त होएँ किन्तु अब आप मुझे ऐसा उपदेश दें कि मेरी मुक्ति हो जाय ।

श्रीवसुदेवजी की बातों को सुनकर नारदजी ने कहा आपने लोक-कल्याणकारी भागवत धर्म के विषय में पूछा है । इस धर्म की यह महिमा है कि यदि संसार से भी द्रोह करने वाला व्यक्ति इस धर्म का श्रवण एवं पालन करे तो वह पवित्र हो जाता है । आपके इस प्रश्न को सुनकर मुझे भगवान् नारायण की याद आ गयी है ।

भागवत धर्म के विषय में एक प्राचीन इतिहास है । महाराज मनु के पुत्र प्रियव्रत थे । उनके पुत्र का नाम आग्नीध्र था । आग्नीध्र के नाभि तथा नाभि के पुत्र ऋषभदेव हुए । ऋषभदेव भगवान् के अंशावतार माने जाते हैं । उनके सौ पुत्र हुए । सबसे बड़े पुत्र का नाम भरत था । महाराज भरत भगवान् नारायण के भक्त थे । उन्ही के नाम पर इस भूमि का नाम भरतखण्ड पड़ा । पहले इस भूमिखण्ड का नाम अजनाभवर्ष था । ऋषभदेव के शेष निन्यानवे पुत्रों में से नव पुत्र नवद्वीपों के स्वामी हो गये । इक्यासी पुत्र कर्मकाण्डी ब्राह्मण हो गये और उनके नव पुत्र आत्मविद्याविशारद संन्यासी हो गये । वे प्रायः दिगम्बर रहते थे तथा अधिकारी जीवों को आत्मविद्या का उपदेश दिया करते थे । उन नवों योगीश्वरों का नाम था–

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धःपिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथद्रुमिलः चमसःकरभाजनः ।।

(भा० ११/२/२१)

कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र द्रुमिल, चमस और करभाजन ।

वे सभी सर्वत्र परमात्मकता का दर्शन करते थे, सनकादिक महर्षियों के समान उनकी सर्वत्र अव्याहत गति थी । वे सभी महापुरुष पृथिवी पर विचरण करते हुए महाराज निमि के यज्ञ में पधारे । महर्षियों को आया हुआ देखकर अग्नि, यज्ञ के ऋत्विज तथा यजमान सबों ने उनका समुचित स्वागत किया । महाराज निमि ने उनकी पूजा करके उन्हें आसन पर बैठाया तथा उन्हें नारायणपरायण जानकर कहा–

मन्ये भगवतः साक्षात् पार्षदान् वो मधुद्विषः ।
विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ।।

(भा० ११/२/२८)

अर्थात् भगवन् मैं मानता हूँ कि आप लोग भगवान् मधुसूदन के पार्षदगण संसारी जीवों को पवित्र करने के लिए पृथिवी पर विचरण किया करते हैं । प्राणियों कि लिए मानव शरीर की प्राप्ति दुर्लभ है । यह शरीर प्राप्त भी हो जाय तो प्रतिक्षण मृत्यु का भय सिर पर सवार रहता है; क्योंक मानव शरीर तो क्षणभंगुर है । इस मानव जीवन में सर्वाधिक दुर्लभ भगवान् के प्रिय भक्तों का दर्शन है ।

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ।।

(भा० २२/२/२९)

इस संसार में आधे क्षण के लिए भी सत्संग का प्राप्त होना दुर्लभ है। अतएव आप हमें भागवत धर्म का उपदेश दें । महाराज निमि की बातों को सुनकर योगीश्वरों में श्रेष्ठ कवि जी ने कहा–

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ।
उद्विग्न बुद्धेरसदात्मभावाद् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ।।

(भा० ११/२/३३)

अर्थात् राजन् भक्तजनों के हृदय से कभी भी दूर नहीं होने वाले अच्युत भगवान् के चरणों की नित्य निरन्तर उपासना ही इस संसार में परम कल्याण तथा आत्यन्तिक क्षेम है और सर्वथा भयशून्य है, यह मेरा निश्चित मत है । देह-गेह आदि तुच्छ एवं असत् पदार्थों में अहंकार एवं ममकार हो जाने के कारण जिन लोगों की चित्तवृत्ति उद्विग्न हो रही है, उनका भय भी इस उपासना का अनुष्ठान करने पर पूर्णरूप से निवृत्त हो जाता है । यह भागवत धर्म उस राजमार्ग के समान है, जिस

पर आँख मूँदकर चलने वाले भी मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । भागवत धर्म अत्यन्त सरल मार्ग है–

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात् ।
करोति यत् तत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ।।
(भा० ११/२/३६)

अर्थात् भागवत् धर्म का पालन करने वाला मनुष्य शरीर, वाणी,मन तथा इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार से जो-जो कर्म करे वह अनेक जन्मों अथवा एक जन्म के स्वभाववशात् जो कर्म करे, वह सब कुछ परम पुरुष परमात्मा के मुखोल्लास की भावना से ही भावित होकर करे। परमात्म पराङ्मुख मनुष्य श्रीभगवान् की माया से मोहित होकर अपने स्वरूप को भूलकर देह अदि को ही आत्मा मानने लगता है । फलस्वरूप वह संसार के भय से दुखी होता रहता है । यही समझकर अपने आचार्य तथा परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। भगवान् की लीलाओं का श्रवण करना चाहिए । तथा भगवान् के नामों और गुणों का कीर्तन करना चाहिए ।

एवं व्रतो स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागोद्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौतिगायत्युन्मादवन्नृत्यति नोकबाह्यः ।।
(भा० ११/२/४०)

जो मनुष्य भागवत धर्म के पालन का नियम ले लेता है उसके अन्तःकरण में अपने प्रियतम परमात्मा के नाम कीर्तन से अनुराग रूपी प्रेम का अंकुर उग जाता है । वह साधारण मनुष्यों की स्थिति से ऊपर उठ जाता है, सामान्य लौकिक मान्यताओं एवं धारणाओं से ऊपर उठकर स्वभावतः मदमत्त सा होकर कभी खिल-खिलाकर हँसने लगता है तो कभी फूट-फूट कर रोने लगता है, कभी जोर से श्रीभगवान् के गुणों का गान करने लगता है तो कभी वह अपने प्रियतम प्रभु को पुकारने लगता है । कभी-कभी वह श्री हरि का साक्षात्कार करके उन्हें रिक्षाने के लिए नृत्य करने लगता है ।

श्री कविजी ने कहा– यह सम्पूर्ण जगत्, समस्त महाभूत श्रीहरि के शरीर हैं । ऐसा जानकर वह सबों को प्रणाम करने लगता है । जिस तरह भोजन करने वाले मनुष्य को प्रत्येक ग्रास के साथ ही तुष्टि, पुष्टि एवं भूख की निवृत्ति ये तीनों एक साथ होते है, उसी तरह से श्रीभगवान् का भजन करने वाले मनुष्य को प्रत्येक क्षण में भगवान् के

प्रति प्रेम, संसार से वैराग्य तथा परमात्मा के स्वरूप का अनुभव ये तीनों एक साथ प्राप्त होते हैं ।

इस तरह से भागवत धर्म का वर्णन सुनने के पश्चात् महाराज निमि भगवद् भक्तों के स्वरूप तथा उनके धर्म के विषय में जानना चाहे तो, दूसरे योगीश्वर श्रीहरि ने कहना प्रारम्भ किया–

जो भगवान् का भक्त होता है वह संसार के समस्त प्राणियों में परमात्मकत्व का अनुभव करता है । यह उत्तम भागवद् भक्त का लक्षण है । जो भगवान् से प्रेम, उनके भक्तों से मैत्री, भगवान् से द्वेष रखने वालों से उपेक्ष तथा दीनों पर दया करता है, ऐसा भगवद्भक्त मध्यम कोटि का है । जो भगवान् के अर्चाविग्रह का पूजन तो श्रद्धापूर्वक करता है किन्तु भगवद् भक्तों के प्रति उसकी श्रद्धा नहीं होती है, वह सामान्य कोटि का भगवद् भक्त है । उत्तमकोटि का भगवद्भक्त अनुकूल विषयों को प्राप्त करके न तो हर्ष का अनुभव करता है और न तो प्रतिकूल विषयों को प्राप्त करके उनसे द्वेष करता है। वह उत्तम कोटि का भगवद्भक्त है । वह भगवान् के स्मरण में सदा तन्मय रहता है । उसके मन में विषयों के प्रति किसी भी प्रकार की आसक्ति उत्पन्न ही नहीं होती है । जिसे सद्वंश, सद्जाति तथा तपस्या आदि साधनों का अहंकार ही नहीं होता है, वह भागवतोत्तम है । उसकी सबों के प्रति समभाव की दृष्टि होती है । वह सर्वदा भगवान् की ही सेवा में तन्मय रहता है । अपने कथन का उपसंहार करते हुए श्रीहरि नामक योगीश्वर ने कहा–

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद् हरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृतांऽघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ।।
(भा० ११/२/५५)

विवशतावश भी नामोच्चारण करने पर सम्पूर्ण पाप-पुञ्ज को विनष्ट कर देने वाले श्रीभगवान् जिसके हृदय को क्षण भर के लिए भी नहीं त्यागते हैं, क्योंकि उनका पदपद्म भक्त के प्रेम रूपी रस्सी से बँधा रहता है, इस प्रकार के भगवद्भक्त सर्वोत्तम भक्त हैं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का
दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

तीसरा अध्याय

माया, माया की निवृत्ति के उपाय, ब्रह्म तथा कर्म इन चारों का निरूपण

महाराज निमि ने पूछा कि सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देती है । अतएव मैं उस माया को जानना चाहता हूँ । राजा के प्रश्न को सुनकर तीसरे योगीश्वर अन्तरिक्ष ने कहा– माया का निश्चय तो उसके कार्यों के माध्यम से ही किया जा सकता है । माया श्रीभगवान् की शक्ति का नाम है । उसी के द्वारा श्रीभगवान् समस्त भूतों तथा देव, मनुष्य, तिर्यक्, स्थावर आदि शरीरों की सृष्टि करते हैं । सृष्टि काल प्रारम्भ होने पर पञ्च महाभूतों के द्वारा निर्मित प्राणियों के शरीर में परमात्मा ने अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अपने को ही पहले एक मन के रूप में, फिर दस इन्द्रियों के रूप में विभक्त करके जीव के द्वारा प्राकृतिक विषयों का भोग कराने लगे । यह देहाभिमानी जीव अन्तर्यामी परमात्मा के द्वारा प्रकाशित इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करता है तथा इस पाञ्चभौतिक शरीर को ही आत्मा मानकर उसी में आसक्त हो जाता है। यही भगवान् की माया है ।

कर्माणि कर्मभिः कुर्वन् सन्निमित्तानि देहभृत् ।
तत्-तत् कर्तृफलं गृहणन् भ्रमतीह सुखेतरम् ।।

(भा० ११/३/६)

अर्थात् देह में आत्मा का अभिमान रखने वाला अज्ञानी जीव अपनी कर्मेन्द्रियों के द्वारा सकाम कर्मों को करके अपने कर्मों का फल सुख तथा दुःख का भोग करता है । फलस्वरूप वह इस संसार में भटकने लगता है । इस तरह वह अपने कर्मों के फलस्वरूप प्रलयकाल पर्यन्त जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म को प्राप्त करता रहता है । इसी को माया कहते हैं । प्रलय काल की बेला आने पर काल

संसार की समस्त वस्तुओं को उनके कारणों की ओर आकर्षित करता है । प्रलयकाल की शक्ति के कारण पृथिवी पर सौ वर्ष तक सूखा पड़ता है । वर्षा होती ही नहीं है । सूर्य तीनों लोकों को संतप्त करने लगता है । उस समय–

पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ।
दहनूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितेः ।।
(भा० ११/३/१०)

अर्थात् संकर्षण (शेषनाग) के मुँह से प्रचण्ड आग की ज्वाला निकलती है, वायु के द्वारा प्रेरित होकर वे लपटें पाताल लोक से जलना प्रारम्भ होती हैं और ऊँची ऊँची होकर चारों ओर फैल जाती हैं । इसके पश्चात् सांवर्तक नामक मेघगण सौ वर्ष तक मुसलाधार वर्षा करते रहते हैं और यह सम्पूर्ण विराट् (ब्रह्माण्ड) जलमग्न हो जाता है । उस समय वैराज पुरुष (ब्रह्मा) अपने ब्रह्माण्ड शरीर को त्यागकर सूक्ष्म अव्यक्त में उसी प्रकार से लीन हो जाते हैं जिस तरह इन्धन के अभाव में अग्नि अपने आप बुझ जाती है । इसके पश्चात् वायु पृथिवी के गन्ध को खींच लेती है और पृथिवी जल के रूप में परिणत हो जाती है । जब वायु जल के रस को खींच लेती है तो जल अग्नि बन जाता है । जब अन्धकार अग्नि के रूप को खींच लेता है तो अग्नि वायु बन जाती है। जब आकाश वायु के स्पर्श को ले लेता है तो वायु आकाश के रूप में परिणत हो जाती है । कालस्वरूप ईश्वर जब आकाश के शब्द को ले लेता है तो आकाश तामस अहंकार में लीन हो जाता है । इन्द्रियाँ तथा बुद्धि राजस अहंकार में लीन हो जाती हैं । मन सात्त्विक अहंकार में लीन हो जाता है । अहंकार महत् तत्त्व में लीन हो जाता है । महत्तत्त्व प्रकृति में तथा प्रकृति ब्रह्म में लीन हो जाती है । यह सब कुछ माया और उसके कार्य हैं । त्रिगुणात्मिका माया ही सृष्टि स्थिति तथा संहार का कार्य करती हैं ।

अन्तरिक्ष नामक योगीश्वर के द्वारा माया का वर्णन सुनकर महाराज निमि ने कहा कि आप ऐसे उपाय को बतलाएँ जिसके द्वारा सामान्य मनुष्य भी इस माया को पार कर सके ।

महाराज निमि के प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रबुद्ध नामक योगीश्वर ने कहा–

कर्माण्यारभमाणनां दुःखहत्यै सुखाय च ।
पश्येत् पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ।।
(भा० ११/३/१८)

अर्थात् राजन् ! स्त्री, पुरुष संबन्ध आदि बन्धनों में बँधे हुए संसारी मनुष्य सुख की प्राप्ति तथा दुःख की निवृत्ति के लिए बड़े-बड़े कर्म करते रहते हैं । जो पुरुष माया के पार जाना चाहता है उसको विचार करना चाहिए कि उनके कर्मों का फल किस प्रकार विपरीत हो जाता है । वे सुख के बदले में दुःख प्राप्त करते हैं और दुःख निवृत्ति के बदले उनका दुःख दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है । संसार की किसी भी वस्तु का मिलना कठिन है । और मिल भी जाय तो उससे सुख शान्ति नहीं अपितु दुःख और अशान्ति ही बढ़ते हैं । संसार के ही समान स्वर्ग लोक में भी जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह भी विनाशशील है । वहाँ भी अशान्ति एवं कष्ट बना ही रहता है । इसलिए इस माया से पार जाने की कामना वाले मनुष्य को वेदतत्त्ववेत्ता तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरणागति करनी चाहिए ।

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः ।
अमाययाऽनुवृत्या यैः तुष्येदाऽत्माऽत्मदो हरिः ।।
(भा० ११/३/२२)

अर्थात् जिज्ञासु को चाहिए कि गुरु को ही परम प्रियतम आत्मा और इष्टदेव माने । उनकी निष्कपटभाव से सेवा करे उनके पास रहकर भागवतधर्म तथा श्रीभगवान् को प्राप्त कराने वाले भक्तिभाव के साधनों की क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे । इन्हीं साधनों से सर्वात्मा परमात्मा अपने भक्तों को अपनी आत्मा का दान करने वाले प्रसन्न होते हैं ।

सांसारिक संबन्धों से विरक्त होकर भगवान् एवं भागवतों से प्रेम करने को ही भागवत धर्म कहते हैं । सभी जीवों पर दया करना, पवित्र रहना, सहिष्णुता, मौन, वेदाध्ययन, ऋजुता, ब्रह्मचर्य का पालन, अहिंसा, समता, एकान्तवास, सर्वत्र परमांत्मकत्व की दृष्टि । शास्त्रों में श्रद्धा, मनोनिग्रह, ये सभी भागवत धर्म के अंङ्ग हैं ।

भगवान् की लीलाओं का श्रवण एकमात्र भगवान् की प्रसन्नता के लिए, अपने सारे सम्बन्धियों को परमात्मा की सेवा के लिए मानना, भगवान् के गुणों की चर्चा करना और सुनना, परमात्मा की प्राप्ति के लिए व्याकुल होना, यही भागवत् धर्म है ।

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्
हसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तुष्णीं परमेत्य निर्वृताः ।।

(भा० ११/३/३२)

भागवत् धर्मनिष्ठ महापुरुष के हृदय की वड़ी विलक्षण स्थिति होती है। कभी-कभी वे यह सोंचने लगते हैं कि अभी तक श्रीभगवान् की प्राप्ति नहीं हुई। भगवत् प्राप्ति के लिए मैं कौन सा काम करूँ कहाँ जाऊँ ? किससे पूछूँ? इस तरह सोचते-सोचते रोने लगते हैं । कभी-कभी भगवान् की लीलाओं का स्मरण करके हँसने लगते हैं । कभी-कभी श्रीभगवान् के प्रेम तथा दर्शन का अनुभव करके आनन्दित होने लगते हैं, तो कभी लोकातीत भाव से भावित अन्तःकरण वाले होकर श्रीभगवान् से बातें करने लगते हैं । कभी-कभी श्रीभगवान् को उनका गुणगान सुनाने के लिए गाने लग जाते हैं तो कभी प्रेम मग्न होकर श्रीहरि को रिझाने के लिए नृत्य करने लगते हैं । कभी-कभी उन्हें लगता है कि श्रीभगवान् उनसे कहीं दूर चले गए अतएव वे उन्हें ढूँढने लगते हैं तथा कभी परमात्मा की अत्यन्त सन्निधि का अनुभव करके वे चुपचाप होकर अशान्ति का अनुभव करने लगते हैं । इस प्रकार परमात्मात्मक प्रेममयी भक्ति को प्राप्त करके वे भागवतधर्मनिष्ठ महापुरुष बड़ी ही आसानी से इस माया के जाल से बाहर निकल जाते हैं।

इस तरह से महर्षि प्रबुद्ध की बातों को सुनकर महाराज निमि ने पूँछा कि आप लोग ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं । आप हमें भगवान् नारायण के स्वरूप को बतलाएँ ।

इस प्रकार पाँचवें योगीश्वर महर्षि पिप्पलायन ने कहा–

स्थित्युद्भवप्रलय हेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषुसद्बहिश्च ।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ।।

(भा० ११/३/३५)

अर्थात् जो परमात्मा इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है, पालन करता है तथा इसका संहार करता है जो सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण भी है तथा निमित्त कारण भी है, जिसका कोई भी दूसरा कारण नहीं हैं वही सबों का कारण है । जो समस्त प्राणियों के जाग्रत् स्वप्न,

तथा सुषुप्ति अवस्थाओं में उनके अन्तःकरण रूप से विराजमान रहता है । जो इस सम्पूर्ण जगत् के भीतर एवं बाहर व्याप्त है । जिसके द्वारा प्रेरित होकर इन्द्रियाँ, देह, प्राण तथा अन्तःकरण अपने-अपने कार्यों को करते रहते हैं, किं बहुना जिस परमात्मा के ही द्वारा रक्षित होकर सम्पूर्ण प्राणी जीवित रहते हैं, वही परंब्रह्म है, वे ही नारायण हैं । उन्हीं नारायण के स्वरूप, रूप, गुण आदि की अनन्तता को दृष्टिपथ में रखकर श्रुतियाँ उनका वर्णन नेति-नेति कहकर करती हैं । इन्द्रियों तथा मन के द्वारा उस परमात्मा का पूर्णतया वर्णन नहीं किया जा सकता है। वह सदा नित्य एवं एकरस रहने वाला है । उस परमात्मा की प्राप्ति का एकमात्र साधन उनके चरण कमलों में मुमुक्षु जीव का तीव्र भक्तियोग है । तीव्र भक्तियोग के द्वारा जब उपासक का अन्तःकरण स्वच्छ हो जाता है तो उस परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है ।

इसके पश्चात् महाराज निमि ने कहा—

कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ।
विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ।।
(भा० ११/३/४१)

अर्थात् आप लोग हमें उस कर्मयोग का उपदेश दें जिसका अनुष्ठान करने से मानव के सारे पूर्वकृत कर्म विनष्ट हो जाते हैं । उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तथा वह सर्वोत्कृष्ट निष्काम कर्मयोग की भूमिका में स्थित हो जाता है । उन्होंने कहा कि यही प्रश्न मैंने अपने पिता महाराज इक्ष्वाकु के समक्ष किया था तथा सनकादिक महर्षियों से भी पूछा था किन्तु न जाने क्यों उन लोगों ने इसका उत्तर नहीं दिया, उसका क्या कारण था यह भी हमें आप लोग बतलाएँ ।

एवं पश्नमृषीन् पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ।
नाऽब्रुवन् ब्रह्मणः पुत्राः तत्र कारणमुच्यताम् ।।
(भा० ११/३/४२)

महाराज निमि के प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि अविर्होत्र ने कहा कि जिस समय आपने प्रश्न किया उस समय आप बालक थे अतएव आपको अनधिकारी समझकर महर्षियों ने आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया । कर्म (वेदविहित कर्म) अकर्म (निर्षिद्ध कर्म) तथा विकर्म (शास्त्रविहित कर्मों का उल्लंघन करना) इन तीनों को वेद के द्वारा ही

जाना जा सकता है । वेद अपौरुषेय तथा परमात्मस्वरूप है । वेद परोक्षवाद है । जो मनुष्य शास्त्रीय कर्मों को फल की कामना से रहित होकर विधि विधान पूर्वक सम्पादित करता है वह कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर नैष्कर्म्य की स्थिति में पहुँच जाता है । उसके हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है । मुमुक्षु पुरुष को चाहिए कि वह आचार्य के द्वारा परमात्माराधन की दीक्षा प्राप्त करके फलाभिसन्धि से रहित होकर श्रीभगवान् की अंगन्यास, भूतशुद्धि आदि पूर्वक अर्चा करे । ऐसा करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का
तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौथा अध्याय

भगवान् के कुछ प्रमुख अवतारों का वर्णन

महाराज निमि ने समागत योगीश्वरों से कहा कि आपने बतलाया है कि मुमुक्षु पुरुष को भगवान् की स्वाभिमत मूर्तियों की वैदिक विधि से आराधना करनी चाहिए । अतएव भगवान् की मूर्तियों के ज्ञान के लिए आप भगवान् के अवतारों का वर्णन करें ।

इस पर सातवें योगीश्वर महर्षि द्रुमिल ने कहा– राजन् पृथिवीं के धूलि कणों को बहुत प्रयास करके किसी प्रकार गिना जा सकता है, किन्तु अनन्त स्वरूप श्रीभगवान् के अवतारों की गणना नहीं की जा सकती हैं । अतएव मैं आपको भगवान् के कुछ प्रमुख अवतारों को बतला रहा हूँ । सर्व प्रथम नारायण ने अपने द्वारा सृष्ट पञ्चमहाभूतों द्वारा ब्राह्माण्ड बनाकर उसके भीतर प्रवेश करके पुरुषावतार धारण किया । उन विराट् पुरुष परमात्मा का सम्पूर्ण जगत् शरीर है । उन्हीं की इन्द्रियों से समस्त प्राणियों की इन्द्रियाँ अनुप्राणित हैं । उन्हीं के रजोगुण के अंश से उत्पन्न होकर ब्रह्माजी ने जगत् की सृष्टि की, उनके सत्वगुण से शरीर धारण करके विष्णु जगत् का पालन करते हैं तथा उनके तमोगुण के अंश से शरीर धारण कर रुद्र जगत् का संहार करते हैं । भगवान् के नर-नारायणावतार का वर्णन करते हुए महर्षि द्रुमिल ने कहा–

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां,
नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशान्तः ।
नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म,
योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्ग निषेवितांघ्रिः ।।

(भा० ११/४/६)

अर्थात् दक्ष प्रजापति की एक पुत्रि का नाम मूर्ति था । उसका विवाह धर्म से हुआ था । मूर्ति के ही गर्भ से ऋषियों में श्रेष्ठ तथा प्रशान्तात्मा नर नारायण के रूप में भगवान् ने अवतार लिया । उन्होंने आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कराने वाले भगवदाराधन रूपी कर्म का उपदेश दिया । भगवदाराधन ही कर्मों के बन्धन से छुड़ाने वाला तथा नैष्कर्म्य की स्थिति को प्राप्त कराने वाला है । श्रीभगवान् ने स्वयं भी ऐसे ही कर्म का अनुष्ठान किया । बड़े-बड़े ऋषिमुनि उनके चरण कमलों की आराधना करते हैं । वे आज भी वदरिकाश्रम में उसी कर्म का आचरण करते हुए विद्यमान हैं ।

भगवान् नरनारायण के कठोर तपश्चर्या को देखकर इन्द्र के मन में हुआ कि ये हमारे इन्द्रपद को प्राप्त करने के लिए ऐसी तपस्या कर रहे हैं । इन्द्र ने श्रीभगवान् को तपस्या से विचलित करने के लिए उनके सन्निकट में अप्सराओं तथा कामदेव को भेजा । वसन्त आदि अपने सहायकों के साथ बदरिकाश्रम में आकर कामदेव के साथ श्रीभगवान् को तपःस्खलित करने का बड़ा ही प्रयास किये, किन्तु उसके प्रयास का श्रीभगवान् पर कोई भी असर नहीं हुआ । अपने प्रयास को विफल देखकर काम आदि तो भय से काँपने लगे, किन्तु भगवान् ने हँसते हुए कहा– आप लोग हमारे अतिथि हैं अतएव अतिथिसत्कार स्वीकार करें। आप लोगों को भयभीत होने की कोई भी आवश्यकता नहीं है ।

मा मैष्ट भो मदन मारुत देवबध्वो,
गृह्णीत भो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ।।

(भा० ११/४/८)

इसके पश्चात् काम तथा उसके सहायकों ने श्रीभगवान् को प्रणाम करके कहा कि भगवन् ! आप तो निर्विकार हैं । आपको सभी आत्माराम पुरुष नमस्कार करते हैं । देवताओं का स्वभाव है कि वे आपका भजन करने वालों के कार्य में विघ्नबाधा डालते रहते हैं । जो देवताओं की आराधना करते हैं उनके मार्ग में बाधा नहीं डालते । किन्तु

आपके चरण कमलों को आश्रय रूप से अपनाने वाले भगवद्भक्तों का देवगण कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते हैं । इस तरह से काम आदि देवता जब भगवान् की स्तुति कर रहे थे उस समय श्रीभगवान् ने अपनी योगमाया के बल से अनेक ऐसी स्त्रियों का साक्षात्कार कराया जो श्रीदेवी के समान सुन्दर थीं और श्रीभगवान् की सेवा में लीन थीं । देवराज इन्द्र के अनुचरों ने जब उन श्रीदेवी के समान सुन्दर नारियों को देखा तो उनका चेहरा फीका पड़ गया । वे श्रीहीन हो गये तथा उनके शरीर से निकलने वाली सुगन्धि से मोहित हो गए ।

ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिवरूपिणीः ।
गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ।।
(भा० ११/४/१३)

इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने कहा इन सुन्दरियों में जिसे तुम लोग चाहो मेरे प्रसाद रूप में किसी एक रमणी को ले जाओ । इसके पश्चात् वे सब उर्वशी को आगे करके स्वर्ग लोक गये । उर्वशी ही स्वर्गलोक का भूषण बन गयी । देवताओं ने भी भगवान् नारायण की शक्ति का वर्णन इन्द्र के समक्ष किया । उसे सुनकर इन्द्र भी भयभीत हो गए ।

इसके पश्चात् महर्षि द्रुमिल ने कहा कि श्रीभगवान् ने हंस, दत्तात्रेय, सनकादिक अवतार ग्रहण किया । उन्होंने ऋषभदेव के रूप में अवतीर्ण होकर आत्मसाक्षात्कार के साधनों का उपदेश दिया । हयग्रीव अवतार धारण कर मधुकैटभ नामक दैत्यों का श्रीभगवान् ने विनाश किया तथा वेदों का उद्धार किया । उन्होंने मत्स्यावतार, वाराहावतार, कूर्मावतार तथा श्रीहरि अवतार धारण किया । नृसिंह रूप में अवतीर्ण होकर उन्होंने हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का वध किया । परशुरामावतार में श्रीभगवान् ब्राह्मणद्रोही क्षत्रियों का विनाश किये तथा श्रीरामावतार में उन्होंने रावण को मारा । कृष्णावतार में उन्होंने कंसादि का विनाश किया । बुद्धावतार में वे वेदविराधियों को मोहित करने का काम करेंगे । कल्कि अवतार में वे शूद्र अत्याचारी राजाओं का विनाश करेंगे ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

पाँचवाँ अध्याय

भक्तिहीन मनुष्यों की गति तथा भगवदाराधन विधि का वर्णन

महाराज निमि ने पूँछा कि जो लोग भगवान् का भजन नहीं करते हैं उनकी कौन सी गति होती है? इसके पश्चात् महर्षि चमस ने कहा कि भगवान् के मुखभाग से ब्राह्मण वर्ण की, बाहुभाग से क्षत्रिय वर्ण की, ऊरूभाग से वैश्य वर्ण की तथा चरण भाग से शूद्र वर्ण की उत्पत्ति हुई है । इन समस्त वर्णों के गुण भी भिन्न-भिन्न हैं । जो पुरुष अपने मूलकारण श्रीभगवान् की आराधना नहीं करते हैं वे स्थानभ्रष्ट हो जाते हैं । भगवान् की कथा तथा कीर्तन से दूर रहने वाले स्त्री तथा पुरुष भगवद्भक्तों के दया के पात्र हैं । अज्ञानी तथा पापपरायण जीव भगवद्भक्तों का उपहास करते हैं तथा उनका अपमान करते हैं। वे धन एवं ऐश्वर्य के मद में मदमत्त रहकर अपने को ही ज्ञानी एवं पण्डित मान लेते हैं तथा सन्तों एवं परमात्मा का भी अपमान करने का दुःसाहस करते हैं ।

सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा स्वमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ।
वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधाः मनोरथानां प्रवदन्ति वार्तया ।।
(भा० ११/५/१०)

अर्थात् वेदों ने इस बात को बार-बार कहा है कि जिस तरह आकाश सर्वत्र व्यापक है उसी प्रकार परमात्मा भी सबों के भीतर अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हैं । वे सबों की आत्मा एवं प्रिय हैं । किन्तु अज्ञानी जीव वेदों की उन वाणियों को सुनते ही नहीं और आपस में बड़े-बड़े मनोरथों की बातें करते हैं । धन का एकमात्र सदुपयोग है धार्मिक क्रियाओं का करना है किन्तु मृत्यु के विषय में सदा असावधान रहने वाले लोग परिवार के पालन तथा कामोपभोग में ही धन का व्यय करते हैं ।

यद् घ्राणभक्षो विहितः सुरायाः तथा पशोरालभनं न हिंसा ।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ।।
(भा० ११/५/१३)

सौत्रामणि याग में भी सुरा को सूंघने का विधान किया गया है न कि पीने का, तथा पशु का अलंभन (स्पर्श) ही विहित है हिंसा नहीं। इसी तरह अपनी पत्नी के साथ रति विषयभोग के लिए नहीं विहित है; अपितु धार्मिक परम्परा की रक्षा हेतु सन्तान उत्पन्न करने के लिए, किन्तु विषयी जीव अपने विशुद्ध धर्म को नहीं जानकर केवल अर्थवाद वाक्यों में ही फँसे रहते हैं वे अज्ञानी जिन पशुओं को मारते हैं, मरने के पश्चात् वे ही पशु उन्हें परलोक में खाते हैं । अपने शरीर में ममता रखने वाले तथा दूसरों के शरीरों एवं उन शरीरों के भीतर रहने वाले आत्मा तथा परमात्मा से द्वेष करने वालों का अधःपतन हो जाता है । इस प्रकार के जीव आत्मघाती, अशान्त तथा अज्ञानी हैं । ऐसे जीव नरकगामी होते हैं ।

इसके पश्चात् महाराज निमि ने उन योगीश्वरों से पूछा कि–

कस्मिन् काले स भगवान् किं वर्णः कीदृशो नृभिः ।
नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ।।
(भा० ११/५/१९)

अर्थात् किस समय में भगवान् किस रंग तथा किस आकार को धारण करते हैं तथा मनुष्य उनकी आराधना किन नामों तथा, किन विधियों से करते हैं।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री करभाजन महर्षि ने कहा– सत्ययुग में श्रीभगवान् का श्वेत रंग होता है, वे जटाधारी तथा वल्कल वस्त्रधारी रहते हैं । वे काले मृग का चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्ष की माला, दण्ड तथा कमण्डलु धारण करते हैं । सत्ययुग में मनुष्य, शान्त, द्वेषरहित, हितैषी तथा समदर्श होते हैं वे जितेन्द्रिय रहकर ध्यान रूपी तपस्या के द्वारा श्रीहरि की उपासना करते हैं । वे लोग, हंस, सुवर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर तथा परमात्मा आदि नामों से श्रीहरि की आराधना करते हैं ।

त्रेता युग में श्रीभगवान् का विग्रह लाल रंग का होता है, उनकी चार भुजाएँ तथा तीन मेखलाएँ होती हैं । उनके केश सुवर्ण के समान

चमकीले होते हैं तथा वे स्रुक् एवं स्रुव को धारण करते हैं । वैदिक विद्वान् उन श्री हरि की आराधना तीनों वेदों के द्वारा करते हैं । वे श्रीभगवान् की आराधना विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम आदि नामों से करते हैं । द्वापर युग में श्रीभगवान् का रूप सांवला होता है, वे पीताम्बरधारी तथा शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करते हैं। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्स, तथा कौस्तुभमणि आदि से सुशोभित होता है। उस समय महाराज के चिह्नों से सुशोभित श्रीभगवान् की आराधना वैदिक एवं तान्त्रिक विधियों से करते हैं । वे श्रीभगवान् की आराधना वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण आदि नामों से करते हुए उनहें नमस्कार करते हैं ।

कलियुग में श्रीभगवान् का विग्रह काले रंग का होता है । उनके शरीर से नीलमणि के समान कान्ति निकलती है । उनका समस्त अंग अस्त्रों एवं पार्षदों से युक्त होता है । कलियुग में लोग श्रीभगवान् की आराधना नाम, गुण एवं लीला की प्रधानता वाले यज्ञों के द्वारा करते हैं । तथा श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए करते हैं–

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभिष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यं ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।।

(भा० ११/५/३३)

अर्थात् प्रभो ! आप शरणागत रक्षक हैं, आपके चरण कमल सर्वदा ध्यान करने योग्य हैं, माया-मोह के कारण होने वाले सांसारिक पराजयों का अन्त कर देने वाले, तथा भक्तों के समस्त अभीष्ट वस्तुओं का दान करने वाले आप कामाधेनु स्वरूप हैं । आप तीर्थों को भी पवित्र बना देने वाले तीर्थस्वरूप हैं, आपके चरणों की वन्दना, शिवजी तथा ब्रह्माजी भी करते हैं, शरणागत जीवों के कष्टों को दूर करके उनकी रक्षा करने वाले हैं । संसार रूपी सागर को पार करने के लिए वे जहाज के समान हैं । हे महापुरुष ! मैं आपके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ ।

समस्त पुरुषार्थों के एकमात्र स्वामी श्रीभगवान् ही हैं । कलियुग में सम्पूर्ण स्वार्थ एवं परमार्थ भगवान् के नाम संकीर्तन से ही पूर्ण हो

जाते हैं । भगवान् के गुणों एवं नामों के संकीर्तन से संसार का बन्धन विनष्ट हो जाता है तथा परमशान्ति की प्राप्ति होती है । इसीलिए सत्ययुग, त्रेतायुग एवं द्वापर युग की भी प्रजा इस लोक में जन्म प्राप्त करना चाहती है क्योंकि–

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ।।
क्वचित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ।
तम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।।
काबेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ।
प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ।।

(भा० ११/५/३८-३९-४०)

अर्थात् महाराज ! कलियुग में कहीं-कहीं पर भगवान् नारायण के शरणागत तथा उन्हीं के आश्रय में रहने वाले बहुत से भक्त होंगे ।

द्रविड देश की ताम्रपणी, कृतमाला, पयस्विनी, परमपवित्र कावेरी नदी, महानदी तथा प्रतीची नाम की नदियों के तट पर ऐसे महाभक्तों की संख्या बहुत अधिक होगी । राजन् ! जो लोग इन नदियों का जल पीते हैं उनका अन्तःकरण प्रायः शुद्ध हो जाता है तथा वे भगवान् वासुदेव के भक्त हो जाते हैं । जो व्यक्ति समस्त कर्मवासनाओं का परित्याग करके एकमात्र श्रीभगवान् के चरण कमलों को ही अपना रक्षक मान लेते हैं, वे समस्त पाप-तापों से मुक्त हो जाते हैं ।

नारदजी ने श्री वसुदेवजी से कहा कि उपर्युक्त नवयोगीश्वरों के मुख से भागवत धर्म को सुनकर महाराज निमि को बड़ी ही प्रसन्नता हुई उन्होंने समस्त ऋत्विजों के साथ उन योगीश्वरों की अर्चना की और सबों के समक्ष ही वे योगीश्वर आन्तर्धान हो गए । राजा ने उस भागवत धर्म का पालन करके परमगति को प्राप्त किया । वसुदेवजी श्रीभगवान् तो आपके पुत्ररूप में अवतीर्ण हैं । उनके आलिंगन इत्यादि के द्वारा आप लोगों का अन्तःकरण पूर्णरूप से शुद्ध हो गया है । अतएव आप लोगों की मुक्ति में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । शिशुपाल पौण्ड्रक, शाल्व आदि ने तो भगवान् का वैरभाव से स्मरण किया और वे मुक्त हो गए । फिर जो प्रेमपूर्वक श्रीभगवान् का चिन्तन करते हैं उनकी मुक्ति में कौन सा सन्देह है । आप श्रीभगवान् को केवल अपना पुत्र न समझें

वे सर्वात्मा एवं सर्वेश्वर हैं । वे पृथिवी का भार उतारने के लिए तथा सज्जनों की रक्षा करने के लिए अवतार लिए हैं ।

नारदजी की बातों को सुनकर वसुदेवजी अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए, तथा देवकी के साथ वे अपने अज्ञान का परित्याग कर दिए ।

इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद् यः समाहितः ।
स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

(भा० ११/५/५२)

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् से कहा– यह परमपवित्र इतिहास है जो व्यक्ति इसको एकाग्रचित्त से धारण करता है, उसके समस्त शोक, मोह समाप्त हो जाते हैं तथा वह ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छठा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण तथा उद्धवजी के संवाद का प्रारम्भ

जब देवर्षि नारद द्वारका में श्रीवसुदेवजी को उपदेश देकर चले गए उस समय ब्रह्माजी समस्त देवताओं, यक्षों, किन्नरों आदि के साथ श्रीभगवान् का दर्शन करने के लिए द्वारका पधारे । वहाँ आकर उन सबों ने भगवान् के सकल जन मनोनयनहारी दिव्य विग्रह का दर्शन किया । उस समय द्वारकापुरी समस्त ऐश्वर्यों से समृद्ध थी । सभी देवताओं ने भगवान् की अर्चना की और उन्हें स्वर्गीय उद्यानों की पुष्पमालाओं से अच्छादित सा कर दिया । इसके बाद सभी देवताओं ने श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहा–

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ।
यच्चिन्त्यतेन्तर्हृदि भवयुक्तैः मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ।।

अर्थात् स्वामिन् कर्मों के भयंकर फंदों से मुक्ति पाने की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरुष भक्ति भावना से भावित अपने हृदय कमल में जिसका

सदा चिन्तित किया करते हैं, आपके उन्हीं पद पद्मों को हमें अपनी बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन और वाणी से साक्षात्कार करके नमस्कार करने का अवसर मिला है, यह हमारा बड़ा ही सौभाग्य है । यद्यपि आप त्रिगुणात्मिका माया को अपना अधिष्ठान बनाकर इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, इसका पालन करते हैं, और इसका संहार करते हैं । फिर भी आप इस माया के गुणों से लिप्त नहीं होते हैं । आपकी लीलाओं का श्रवण करने से जिस प्रकार अन्तःकरण की शुद्धि होती है, उस तरह की अन्तःकरण की शुद्धि उपासना, वेदाध्ययन, तपस्या अथवा यज्ञादि के अनुष्ठान से नहीं होती है । प्रभो ! आपके जिन चरण कमलों का मुनिजन निरन्तर ध्यान किया करते हैं, याज्ञिक पुरुष यज्ञों द्वारा जिनकी आराधना किया करते हैं, भागवतवृन्द आपके जिन चरण कमलों की अर्चना आपके वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारों ही रूपों में किया करते हैं; आपके वे ही चरण कमल हम लोगों के अन्तःकरण में विद्यमान अशुभ वासनाओं को जलाकर भस्म कर दें ।

स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशय धूमकेतुः ।

(भा० ११/६/१०)

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं
संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ।।
यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो
भूयात् सदांघ्रिरशुभाशयधूतकेतुः ।।

(भा० ११/६/१२)

प्रभो ! भगवती लक्ष्मी आपके वक्षस्थल पर विद्यमान मुरझायी हुई वासी वनमाला को भी देखकर उससे सौत के समान स्पर्धा करती हैं । फिर भी आप उनकी परवाह न करके अपने भक्तों ,द्वारा वासी माला से भी की गयी पूजा को प्रेमपूर्वक स्वीकार करते हैं । आपका इस प्रकार का पावन चरण कमल हमारे हृदय में विद्यमान वासनाओं को भस्मासात् करने के लिए अग्निस्वरूप बन जाय ।

प्रभो ! दैत्यराज बलि के द्वारा दी गयी पृथिवी को नापने के लिए आपने वामनावतार में अपना जब पैर उठाया तो उस समय आपका वह पैर विजयध्वज के समान प्रतीत होता था । आपका वह

पैर सत्यलोक में पहुँच गया । ब्रह्माजी ने जब आपके पैरों को प्रक्षालित किया तो उससे निकलने वाली गंगाजी की तीन धारायें उनकी तीन पताकाओं के समान प्रतीत होती थीं । उसे देखकर देवताओं की सेना प्रहर्षित हो गयी और दैत्यों की सेना भयभीत हो गयी ।

आपका वह चरणकमल भगवद्भक्तों के लिए कल्याणकारी है तथा असुर स्वभाव वालों को अधोगति प्रदान करने वाला होता है । भगवन् ! आपके ही अधीन सम्पूर्ण जगत् है । आप ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना करने वाले पुरुषोत्तम हैं । आपने संसार की पापराशि को विनष्ट करने के लिए दो प्रकार की नदियों को प्रवाहित किया है (१) अमृतमयी लीलाप्रवाह से परिपूर्ण कथा नदी और (२) आपके पादपद्म प्रक्षालन जल से परिपूर्ण गंगा नदी। इसलिए लोक में कल्यणकामी पुरुष श्रोत्रों के द्वारा आपकी अमृतमयी कथा स्रोतस्विनी में स्नान करते हैं और अपने शरीर से गंगा नदी में स्नान करते हैं । इस तरह से उनके सम्पूर्ण पाप ताप विनष्ट हो जाया करते हैं।

विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः,
पादादवनेजसरितः शमलानि हन्तुम् ।।
आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमङ्गसंगैः,
तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ।।

(भा० ११/६/१९)

इस प्रकार से तेरह श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति करके ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से कहा कि प्रभो ! आपने मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर अवतार ग्रहण करके पृथिवी के भार को उतार दिया है । सज्जनों के रक्षाणार्थ आपने अपने विमल यश का विस्तार कर दिया है । आपकी इन लीलाओं का श्रवण करके ही कलियुग के प्राणियों के अज्ञानान्धकार विनष्ट हो जायेंगे ।

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ।
शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ।।

(भा० ११/६/२५)

प्रभो ! आप तो पुरुषोत्तम हैं । आपको इस यदुवंश में अवतार लिए हुए एक सौ पच्चीस वर्ष बीत गये । अब आपको करने के लिए

देवताओं का कोई भी कार्य अवशिष्ट नहीं रह गया है । आपके वंश के विनाश के लिए ब्राह्मणों का शाप हो गया है । अतएव आप यदि चाहें तो अपने लोक में पधार कर अपने वैकुण्ठवासी किंकरों को अनुगृहीत करें ।

ब्रह्माजी की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने कहा कि मैं भी इस बात का निश्चय कर चुका हूँ । इसीलिए मैंने इस यदुवंश को ब्राह्मणों का शाप दिलवा दिया । यदि इन सबों का विनाश किए बिना मैं अपने लोक चला जाऊँ तो ये सब संसार की मर्यादा का उल्लंघन करके सम्पूर्ण लोकों का संहार कर डालेंगे । यदुवंश का विनाश करके मैं अपने लोक में जाऊँगा ।

ब्रह्माजी के अपने लोक पधार जाने के पश्चात् द्वारका में अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे । उन उत्पातों को देखकर श्रीभगवान् ने बृद्ध युदवंशियों से जाकर कहा– यदुवंश पर ब्राह्मणों का शाप हो गया है, अनेक प्रकार के भयंकर उत्पात हो रहे हैं । अतएव–

न वस्तव्यमिहास्माभिः जिजीविषुभिरार्यकाः ।
प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ।
(भ० ११/६/३५)

अर्थात् मेरा विचार है कि यदि हम लोग अपने प्राणों की रक्षा चाहते हैं तो अब हमें यहाँ नहीं रहना चाहिए । आज ही हम लोगों को परमपवित्र प्रभास क्षेत्र चल जाना चाहिए । जब दक्ष प्रजापति के शाप से चन्द्रमा राजयक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो गये थे तो वे प्रभास क्षेत्र में स्नान करके शीघ्र ही उस रोग से मुक्ति प्राप्त कर लिए थे । साथ ही साथ उन्हें कलाओं की वृद्धि भी प्राप्त हो गयी थी ।

यत्र स्नात्वा दक्षशापाद् गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ।
विमुक्तः किल्विषात् सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ।।
(भा० ११/६/३६)

हम सभी उस तीर्थ में चलकर स्नान कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर अनेक प्रकार का दान करके पवित्र हो जायेंगे । श्रीभगवान् की बातों को सुनकर सभी यदुवंशी प्रभास क्षेत्र चलने के लिए तैयार हो गए। उसी समय श्रीभगवान् के अभिप्राय को जानने वाले उद्धवजी

आकर श्रीभगवान् से कहने लगे । प्रभो ! आपके बिना हम आधा क्षण भी इस पृथिवी पर नहीं रह सकते । आप हमें भी अपने साथ लेते चलें। आपके ही चरित्रों का श्रवण करके हमारा समय बीतता है । श्री उद्धवजी की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने उनसे कहना प्रारम्भ किया।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सातवाँ अध्याय

अवधूतोपाख्यान (१) पृथिवी से लेकर कबूतर तक आठ गुरुओं की कथा

शरणापन्न उद्धवजी को उपेदश देते हुए श्री भगवान् ने कहा–

यदाथ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ।
ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकांक्षिणः ।।
(भा० ११/७/१)

महाभाग्यवान् उद्धवजी आपने जो मुझसे कहा– मैं वही करना चाह रहा हूँ । ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्रादि लोकपाल भी अब यही चाहते हैं कि मैं उनके लोकों से होकर अपने लोक में जाऊँ । मैंने देवताओं के समस्त कार्यों को पूरा कर दिया है । ब्रह्माजी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर मैं देवकार्यों को ही करने के लिए बलरामजी के साथ पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ था । यदुवंश तो ब्राह्मणों के शाप से भस्म हो चुका है अब ये पारस्परिक विद्वेष के कारण विनष्ट हो जायेंगे । आज के सातवें दिन इस पुरी को समुद्र डुबो देगा । मेरे मर्त्यलोक को छोड़ते ही पृथिवी पर कलियुग का राज्य हो जायेगा । तुम भी सम्पूर्ण मोहबन्धनों का परित्याग करके स्वच्छन्द पथिवी पर विचरण करना । सम्पूर्ण संसार को नाशवान समझना । भेद की प्रतीति अज्ञानियों को होती है ।

तस्माद् युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित इदं जगत् ।
आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ।।
(भा० ११/७/९)

अतएव आप पहले अपनी सभी इन्द्रियों को अपने वश में कर लो । अपने मन को भी अपने वश में कर लो । उसके पश्चात् तुम इस सम्पूर्ण जगत् का अपनी आत्मा में साक्षात्कार करो और अपनी आत्मा को मुझ परमात्मा में स्थित रूप से देखो । इस प्रकार से तुम आत्मानुभव प्राप्त करके परमसंतोष को प्राप्त कर लोगे । इसके पश्चात् तुम्हें किसी भी प्रकार का विघ्न बाधित नहीं कर पायेगा । जो मनुष्य सम्पूर्ण जगत् के साथ मैत्री की भावना से सम्पन्न हो जाता है जिसके इन्द्रियों और मन की सारी वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं, वह पुरुष इस सम्पूर्ण जगत् को परमात्मात्मक रूप से देखने लग जाता है । सारा संसार परमात्मा का शरीर है और परमात्मा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं, इस प्रकार से श्रुतियों के तात्पर्य का अनुभव करने वाला व्यक्ति पुनः कभी इस संसार चक्र में नहीं पड़ता है ।

सर्वभूतसुहृच्छान्तो, ज्ञान-विज्ञान-निश्चयः ।
पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ।।
(भा० ११/७/१२)

श्रीभगवान् की बातों को सुनकर उद्धवजी ने कहा– भगवन् ! आपने मुझे संन्याससस्वरूप त्याग का उपदेश दिया है । भगवन् ! मैं भी तो आपसे सदा पराङ्मुख ही रहने वाला हूँ । मुझ जैसे संसारी जीवों से इस प्रकार का त्याग कैसे संभव है? प्रभो ! मैं आपका दास हूँ । मेरी मति इतनी मूढ है कि अपने अहंकार तथा ममकार की प्रबलता के कारण आपकी इस माया के खेल देह गेह में पूर्ण रूप से आसक्त हो गया हूँ । अतएव आपने जिस संन्यास स्वरूप त्याग का मुझे उपदेश दिया है उसको मुझे इस प्रकार से समझाइये कि मैं उसे जान सकूँ ।

सोऽहं ममाऽहमिति मूढमतिर्विगाढ
त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे ।
तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाऽहं
संसाधयामि भगवननुशाधि भृत्यम् ।।
(भा० ११/७/१६)

भगवन् ! सभी देवता भी शरीराभिमानी होने के कारण आत्मा के वास्तविक स्वरूप का उपदेश करने में अक्षम हैं । आप सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् हैं । आपकी शरण में मैं आया हूँ । आप मुझे आत्मयाथात्म्य का उपदेश देकर अनुगृहित करें ।

उद्धवजी की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने कहा– उद्धवजी! मैंने जितने प्रकार के शरीरों की सृष्टि की है उन सबों में मनुष्य मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं । तत्त्वज्ञानी मनुष्य अहंकार और ममकार से ऊपर उठकर मेरा साक्षात् अनुभव करने में समर्थ हैं । इस विषय में महात्मागण अवधूत दत्तात्रेय तथा महाराज यदु के संवाद रूपी आख्यायिका को उपन्यस्त करते हैं । उसे ही मैं तुम्हें सुना रहा हूँ ।

तरुण अवधूत त्रिकालदर्शी दत्तात्रेय को पृथिवी पर निर्भय रूप से विचरते हुए देखकर महाराज यदु ने उनसे पूँछा–

कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन् अकर्तुः सुविशारदा ।
यमासाद्य भवांल्लोकं विद्वांश्चरति निःस्पृहः ।।

(भा० ११/७/२६)

ब्रह्मन् ! आप कर्म तो करते नहीं फिर भी आपको यह अत्यन्त निपुण बुद्धि कैसे प्राप्त हुई ? जिसको प्राप्त करके आप विद्वान होकर भी बालक के समान इस संसार में विचरण करते हैं । इस संसार में देखा जाता है कि सबों की सप्रयोजन ही प्रवृत्ति होती है, अकारण किसी की भी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती है । आप में सभी प्रकार की योग्यता और क्षमता विद्यमान है फिर भी आप उन्मत्त के समान इस संसार में निष्प्रयोजन विचरण करते हैं । आपसे मैं आत्मानन्द के विषय में जानना चाहता हूँ, आप उसे हमें बतलाएँ ।

महाराज यदु के प्रश्न को सुनकर श्रीदत्तात्रेयजी ने कहा कि मैने अपने अनेक गुरुओं से अनेक प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है । मेरे गुरु हैं–

पृथिवी वायुराकाशमायाऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः ।।
मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ।
कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ।।
एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ।
शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ।।

(भा० ११/७/३३-३४-३५)

राजन् ! मैंने इन चौबीस गुरुओं को गुरु बनाया है । ये हैं– पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतङ्ग, भ्रमर, हाथी, शहद निकालने वाला, हिरण, मछली,

पिङ्गला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी तथा भृङ्गी कीड़ा । मैंने इन सबों से आचरण की शिक्षा ग्रहण की है । उन गुरुओं से प्राप्त शिक्षा को मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।

ब्रह्मज्ञानी दत्तात्रेयजी ने कहा– मैंने पृथिवी से धैर्य और क्षमा की शिक्षा ग्रहण की है ।

सभी जीव अपने भाग्य के अनुसार सर्वदा पृथिवी पर चलते रहते हैं । अनेक प्रकार के क्रिया कलाप करते रहते हैं, किन्तु पृथिवी न तो किसी से बदला लेती है और न तो किसी प्रकार की चित्कार करती है । इसी तरह ज्ञानी मनुष्य को चाहिए कि वह किसी के द्वारा आक्रान्त होकर भी उन पर क्रोध न करे और न तो अपना धैर्य छोड़े । उसे निरन्तर अपने मार्ग पर चलते रहना चाहिए ।

भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ।
तद् विद्वान्न चलेन् मार्गादन्वशिक्षं क्षिते र्व्रतम् ।।

(भा० ११/७/३७)

पृथिवी से उत्पन्न होने वाले वृक्षों से मैने यह सीखा कि जिस तरह वृक्षों एवं पर्वतों की सारी चेष्टायें परोपकारार्थ होती हैं, उसी तरह मनुष्य को परोपकार परायण रहना चाहिए ।

श्रीदत्तत्रेयजी ने कहा कि शरीर के भीतर रहने वाली वायु केवल भोजन मात्र की अपेक्षा रखती है, उसी तरह योगी को भी उतने ही आहार लेना चाहिए जितने से शरीर यात्रा चल सके । इन्द्रियों की तृप्ति के लिए भोगों को न भोगे। शरीर के बाहर रहने वाली वायु सर्वत्र जाती है किन्तु वह किसी भी वस्तु के गुण अथवा दोष को नहीं अपनाती है उसी तरह योगी को चाहिए कि वह आवश्यकतानुसार कहीं भी जाये तो उसके गुण और दोष से असंपृक्त रहे । गन्ध पृथिवी का गुण है वायु का नहीं किन्तु वायु पृथिवी के गुण गन्ध का वहन करती है, अतएव गन्धवह कहलाती है । फिर भी वायु अपने आप में शुद्ध है । उसी तरह जब तक आत्मा शरीर के भीतर रहती है, उसे शरीर के गुण, सुख-दुःख आदि को भोगना पड़ता है । साधक को चाहिए कि वह अपनी आत्मा को आकाश के समान निर्लिप्त रूप से माना करे । आत्मा में सृष्टि एवं संहार के कारण कोई भी विकार नहीं होता है ।

दत्तात्रेय महर्षि ने कहा कि मैने जल से यह शिक्षा ग्रहण की कि

जिस तरह जल स्वभावतः स्वच्छ, चिकना एवं पवित्र होता है उसी तरह मुमुक्षु पुरुष को निर्लिप्त, स्निग्ध एवं मधुरभाषी होना चाहिए । दत्तात्रेयजी ने कहा कि मैने अग्नि से यह शिक्षा ली कि योगी को, तेजस्वी, तपस्वी, दुर्घष होना चाहिए तथा उसे उतना ही संग्रह करना चाहिए जितना वह खा सके। वह सब कुछ खाकर के अपने मन एवं इन्द्रियों में किसी भी प्रकार का दोष न आने दे । वह शरीरात्मभ्रम से दूर रहकर अपने को ज्ञानमय जाने ।

दत्तात्रेयजी ने चन्द्रमा से यह शिक्षा ग्रहण की कि जिस तरह चन्द्रेमा की कला घटती-बढ़ती रहती है; किन्तु चन्द्रमा ज्यों के त्यों रहता है, उसी तरह शरीर की ही विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं आत्मा की नहीं।

दत्तात्रेयजी ने सूर्य से यह शिक्षा ग्रहण किया कि जिस तरह सूर्य अपनी किरणों से जल सोखकर वर्षा कर देता है, उसी तरह योगी विषयों का भोग करके समय आने पर उसका परित्याग कर दें । जिस तरह अकेला ही सूर्य अनेक घटों में प्रतिबिम्बित होकर अनेक प्रतीत होता है किन्तु एक ही है उसी तरह सबों के हृदय में रहने वाला परमात्मा एक ही है ।

कबूतर से दत्तात्रेयजी ने अनासक्ति की शिक्षा ली । दो कबूतर कबूतरी परस्पर में बड़े प्रेम पूर्वक रहते थे । एक दूसरे से इतने आसक्त थे कि कभी अलग नहीं रहते । कुछ दिनों के बाद उनके बच्चे हुए । उनका चारा जुटाने के लिए अब कबूतर कबूतरी बाहर भी जाते थे । एक दिन एक बहेलिया आया और उसने अपने जाल में कबूतर के बच्चों को फँसा लिया । कबूतरी अपने बच्चों को चारा खिलाने के लिए आयी तो देखा कि उसके बच्चे जाल में फँसे कष्ट में पड़े हुए चिल्ला रहे हैं । वह अपने को नहीं संभाल सकी और स्वयम् आकर जाल में फँस गयी । उसी समय कबूतर आया और अपने पूरे परिवार को जाल में फँसा हुआ देखकर बड़ा दुखी हुआ । वह भी अपने को नहीं संभाल सका और जाल में आकर फँस गया । इसी तरह संसारी जीव अपना सारा जीवन कुटुम्ब के ही भरण-पोषण में बिता देता है । वह अपने भविष्य की चिन्ता नहीं करता है और आजीवन कष्ट भोगता रहता है।

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
गृहेषु खगवत् सक्तः तमारूढच्युतं विदुः ।।
(भा० ११/७/७४)

मानव शरीर की प्राप्ति मुक्ति की प्राप्ति के लिए खुले हुए द्वार के समान है । इस शरीर को प्राप्त करके मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकता है । किन्तु इस शरीर को भी प्राप्त करके जो मनुष्य उस कबूतर के समान परिवार में ही आसक्त रहता है वह शास्त्र की भाषा में आरूढ़ पतित है ।

इस प्रकार साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का
सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

आठवाँ अध्याय

अवधूतोपाख्यान (२) आजगर से लेकर पिङ्गला तक नव गुरुओं की शिक्षा

अजगर से प्राप्त होने वाली शिक्षा का उल्लेख करते हुए श्रीदत्तात्रेय महर्षि ने कहा कि अजगर हमेशा निश्चेष्ट पड़ा रहता है । भाग्यवशात् उसे भी भक्ष्य की प्राप्ति होती ही रहती है । इसी तरह मनुष्य को यह सोचना चाहिए कि जिस तरह लोक में सुख एवं दुःख की प्राप्ति स्वाभाविक ढंग से होती रहती है उसी तरह परलोक में भी सुखों एवं दुःखों की प्राप्ति होती रहती है, अतएव उसके लिए विशेष प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है । यादृच्छिक रूप से जो कुछ भी मिल जाय उसी से तृप्त रहना चाहिए ।

समुद्र से प्राप्त शिक्षा का वर्णन करते हुए दत्तात्रेयजी ने कहा कि जिस प्रकार सागर अथाह एवं अक्षोभ्य रहता है, वह वर्षा के दिनों में घटता-बढ़ता नहीं है उसी तरह साधक को सदा गंभीर, प्रसन्न तथा सदा एकरस बने रहना चाहिए। उसे सुख एवं दुख दोनों ही स्थितियों में एक समान बने रहना चाहिए ।

पतङ्गे से दत्तात्रेयजी ने शिक्षा ग्रहण की कि मनुष्य को रूप का लोभी नहीं होना चाहिए रूप के लोभ मे ही पतङ्ग प्रदीप पर गिरकर अपना सर्वनाश कर लेता है । नारी माया का वह रूप है जिसके लोभ

में मनुष्य परमात्मा अथवा मोक्ष को प्राप्त करने में असफल रह जाता है । अतएव साधक को सदा कामिनी तथा काञ्चन से दूर रहना चाहिए।

भौरे से प्राप्त शिक्षा का वर्णन करते हुए दत्तात्रेय महर्षि ने कहा कि जिस तरह भ्रमर छोटे-बड़े पुष्पों से उनका सार ग्रहण करता है उसी तरह संन्यासी को शास्त्रों का सार ग्रहण करना चाहिए ।

उन्होंने कहा कि मैने मधुमक्खी से यह सीखा है कि संन्यासी को संग्रह नहीं करना चाहिए । संग्रही होने पर तो संन्यासी का जीवन मधुमक्खियों के ही समान दूभर हो जायेगा । अतएव सायंकाल के लिए अथवा अगले दिन के लिए भी संग्रह नहीं करना चाहिए ।

हाथी जिस तरह मादा हाथी के संग से बन्धन में पड़ जाता है, उसी तरह संन्यासी को चाहिए कि वह काठ की भी स्त्री का स्पर्श न करे । नहीं तो हाथी के समान वह बन्धनगत हो जायेगा । अतएव किसी भी स्त्री को शिक्षाभोग्य रूप से नहीं स्वीकार करना चाहिए ।

मधु निकालने वाले से दत्तात्रेयजी ने यह शिक्षा ग्रहण किया कि जो कृपणतापूर्वक धन इकट्ठा करता है, उसका धन दूसरा कोई खा जाता है । मधुमक्खी मधु एकत्रित करती है और मधु निकालने वाला उसे ले जाता है ।

हरिण से यह शिक्षा मिलती है कि कभी विषयगीत को न सुने। व्याधे के गीत से ही मोहित होकर हरिण मारा जाता है । मृगीपुत्र ऋष्य शृंङ्ग वेश्याओं के ही गीत से मोहित हो गए थे ।

मछली से यह शिक्षा मिलती है कि भिक्षुक को रस का लोभी नहीं होना चाहिए । रस के लोभ में ही मछली अपनी जान गवाँ बैठती है । दूसरी इन्द्रियों पर तो विजय पाया जा सकता है किन्तु रसनेन्द्रिय पर विजय पाना कठिन है । रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त किए बिना कोई जितेन्द्रिय नहीं हो सकता है ।

पिङ्गला वेश्या से दत्तात्रेयजी को यह शिक्षा मिली कि वह विदेह नगरी की वेश्या थी । वह रूपवती थी और स्वेच्छाचारिणी थी । एक दिन वह शाम से ही सज धज कर अपने दरवाजे पर खड़ी रही कि कोई धनी व्यक्ति आए, उसे प्रचुर धन देकर उसके साथ रमण करे । किन्तु रात बीत गयी कोई भी धनी व्यक्ति नहीं आया । इस तरह आशा देखते-देखते उसे वैराग्य हो गया । उसने कहा—

निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ।
नह्यङ्गाजात निर्वेदो देहबन्धं जिहासति ।
यथा विज्ञानरहितो मनुजो ममतां नृप ।।
(भा० ११/८/२८-२९)

मनुष्य आशा की फाँसी पर लटक रहा है । उसको तलवार की तरह काटने वाली यदि कोई वस्तु है तो वह केवल वैराग्य है । जिसे वैराग्य नहीं हुआ, जो प्रपञ्च से ऊबा नहीं है वह शरीर और उसके बन्धन से उसी प्रकार से नहीं मुक्त होता है जिस तरह अज्ञानी पुरुष ममता को छोड़ने की इच्छा भी नहीं करता है ।

पिङ्गला मन ही मन सोच रही थी कि जिनका कोई भी अस्तित्त्व नहीं है, उन पुरुषों से तो मैं सुख की इच्छा कर रही थी । मेरे हृदय में विद्यमान मेरे सच्चे स्वामी परमात्मा हैं । वे वास्तविक सुख प्रदान करने वाले हैं, मैंने उनकी ओर कभी भी ध्यान नहीं दिया । मैंने उन लोगों को ही सदा चाहा जो मेरी एक भी कामना पूरी नहीं कर सकते हैं । यह मेरी मूर्खता की हद है । मैंने निन्दनीय वेश्यावृत्ति को अपनाया है और उसके लिए अपना शरीर बेचती रही । इस शरीर से ही सुख और धन चाहती थी ।

यदस्थिभिर्निर्मित वंशवंश्य स्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम्।
क्षरन् नवद्वारमगारमेतद् विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ।।
(भा० ११/८/३३)

यह शरीर एक घर के समान है । इसमें हड्डियों के टेढ़े तिरछे बाँह और खंभे लगे हैं । यह चाम, नखून और रोमों से छाया गया है। इसमें नव दरवाजे हैं जिनसे सदा मल ही निकलते रहते हैं । इसमें सञ्चित सम्पत्ति के नाम पर मल और मूत्र ही भरा है । मुझको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी स्त्री होगी जो शरीर को प्रिय समझकर इसका सेवन करेगी ?

यों तो यह विदेहों की नगरी है । मैं इसमें सर्वाधिक मूर्ख और दुष्टा नारी हूँ; क्योंकि मैं प्रियतम परमात्मा को छोड़कर दूसरे पुरुषों की आशा करती हूँ । अब मैं अपने प्रियतम परमात्मा से ही प्रेम करूँगी। उन्हें मैं अपने आप को समर्पित करके उनको प्रेम के बदले खरीद लूँगी और लक्ष्मीजी के ही समान सुख प्राप्त करूँगी ।

पिङ्गला को जो विषयों से वैराग्य हो गया था उसी को वह अब सुखप्रद समझने लगी थी । वह संसार की सारी कामनाएँ छोड़कर

एकमात्र श्रीहरि के शरण में चली गयी । श्रीदत्तात्रेय महर्षि ने कहा– पिङ्गला वेश्या ने अपने प्रिय धनिकों की आशा का परित्याग कर दिया और शान्त भाव से जाकर अपनी शय्या पर सो गयी ।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्
यथा सञ्छिद्यकान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ।।
(भा० ११/८/४४)

सचमुच आशा ही सबसे बड़ा दुःख है तथा संसार से निराश हो जाना ही सबसे बड़ा सुख है । जब पिङ्गला नाम की वेश्या ने धनी पति की आशा का परित्याग कर दिया तो वह सुख पूर्वक सो गयी ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का आंठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

नवाँ अध्याय

अवधूतोपख्यान (३) कुरर से लेकर भृङ्गी तक सात गुरुओं की कथा

अवधूत श्रीदत्तात्रेयजी ने कहा–

परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान् यस्त्वकिञ्चन् ।।

मनुष्यों को जो वस्तु अत्यन्त प्रिय होती है, उसका संग्रह करना ही दुःखप्रद होता है । इस अर्थ का निश्चय करके जो मनुष्य अकिञ्चनभाव से रहता है, अर्थात् किसी वस्तु का मन से भी संग्रह नहीं करता है वह अनन्त सुख स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । यह शिक्षा मैंने कुरर पक्षी से ली । एक कुरर पक्षी मांस का टुकड़ा लिए हुए था । उसे दूसरे पक्षी घेर कर मारने लगे । जब उसने उस मांस के टुकड़े को छोड़ दिया तो वह सुखी हो गया ।

मैंने बालक से मानापमान दोनों ही स्थिति में समान रूप से प्रसन्न रहना सीखा है । इसीलिए मैं अपने आप में प्रसन्न रहता हूँ । किसी की भी चिन्ता नहीं करता हूँ और बालकों के समान विचरण

करता हूँ । संसार में दो ही प्रकार के पुरुष आनन्दमग्न रहते हैं । बालक के समान निश्चिन्त रहने वाले अथवा जिसने ज्ञान की पराकाष्ठा का स्पर्श कर लिया है ।

द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ।
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परंगतः ।।
(भा० ११/९/४)

लोगों के आचार-विचार की परख करने हेतु घूमता हुआ मैंने किसी कुमारी कन्या को देखा कि उसके घर अतिथि आये थे । उसके घर में कोई नहीं था । उसे ही उन अतिथियों का सत्कार करना था । वह धान कूट रही थी तो उसके हाथों की चूड़ियाँ आवाज करने लगीं। आवाज बन्द करने के लिए उसने दोनों हाथों की चूड़ियों को तोड़कर केवल दो-दो चूड़ियाँ छोड़ दी, फिर भी उन चूड़ियों से आवाज आ रही थी । उसने दोनो हाथों की एक-एक चूड़ी और तोड़ दिया तो आवाज का आना बन्द हो गया । इससे मैंने यह शिक्षा ली कि जब बहुत लोग रहते हैं तो कलह होता है, दो लोगों के रहने पर बातें होती हैं अतएव आत्माराम पुरुष को अकेले विचरण करना चाहिए ।

शरकार (बाण बनाने वाले) से प्राप्त शिक्षा का वर्णन करते हुए श्री दत्तात्रेयजी ने कहा कि शरकार बाण बनाने में इतना तन्मय था कि उसके सन्निकट से राजा की सवारी निकल गयी किन्तु उसे पता नहीं चला । इससे मैंने शिक्षा ली कि जब अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा मन को वश में करके पुरुष परमात्मा रूपी लक्ष्य में अपने मन को लगा देता है तो उसके अन्तःकरण के समस्त दोष दूर हो जाते हैं । और उसे मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है ।

उन्होंने कहा कि मैने साँप से यह खीखा है कि मुमुक्षु पुरुष को अकेले ही विचरण करना चाहिए, गुफाओं में निवास करना चाहिए । उसे अपने जीवन लक्ष्य के विषय में सदा सावधान रहना चाहिए और अपने लिए घर नहीं बनाना चाहिए । उसे बाह्याचारों का परित्याग कर देना चाहिए और कम बोलना चाहिए । सर्प जैसे दूसरे के बिल में निवास करता है उसी तरह से अपने लिए घर नहीं बनाना चाहिए । घर बनाना बड़ा ही दुःखद होता है ।

मकड़ी से प्राप्त हुई शिक्षा को बतलाते हुए अवधूत श्रीदत्तात्रेय महर्षि ने कहा कि सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा अपने सत्यसंकल्प मात्र

से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है और कल्पान्त में जब प्रलयकाल की बेला होती है तो वह सम्पूर्ण जगत् का संहार कर लेता है । उस समय, एक एवं अद्वितीय होने के कारण परमात्मा ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है । वह सम्पूर्ण जगत् का आश्रय है और स्वयं अपना आधार है । यह ठीक उसी तरह से होता है जिस तरह मकड़ी अपने से ही जाले का निर्माण करके अन्त में उसे स्वयं ही निगल जाती है । वह जिस तरह अपने में ही विहार करती है, उसी तरह मुमुक्षु पुरुष को भी स्वात्माराम होना चाहिए ।

भृङ्गी नामक कीट से प्राप्त हुई शिक्षा का वर्णन करते हुए अवधूत श्रीदत्तात्रेयजी ने कहा–

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद् वापि याति तत् तत् सरूपताम् ।।

मनुष्य जब भय से अथवा स्नेह से, या द्वेष से जिस-जिस वस्तु में अपना मन लगा लेता है, वह उसकी सरूपता को प्राप्त कर लेता है । भृङ्गी (बिलनी) किसी कीड़े को पकड़कर अपने बिल में ले जाकर उसके ऊपर गुनगुनाने लगता है । वह कीड़ा डरकर उसकी आवाज सुनते-सुनते उसी शरीर से स्वयं भृङ्गी बना जाता है । इसी तरह मुमुक्षु पुरुष यदि परमानन्द स्वरूप परमात्मा में अपना मन लगाए तो अवश्य ही परमात्म सरूपता को प्राप्त कर लेगा ।

श्रीदत्तात्रेयजी ने कहा कि मैंने अपने इस शरीर से भी शिक्षा प्राप्त की है । मैंने जाना है कि यह नश्वर शरीर है । यह यद्यपि समस्त अनुष्ठानों का साधकतम है; किन्तु इसका विनाश होना निश्चित है । शरीर में विद्यमान सभी इन्द्रियाँ अपने विषयों की ओर आकृष्ट किया करती हैं । अतएव मनुष्य को इन सबों से सावधान रहकर जीवन के परमलक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति के लिए जागरुक रहना चाहिए । इस शरीर और शरीर के संबन्धियों के प्रति होने वाली ममता का परित्याग कर देना चाहिए ।

अवधूत श्रीदत्तात्रेय महर्षि के उपदेश को सुनकर महाराज यदु ने उनकी पूजा की और वे संसार से ममता का परित्याग कर दिए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का
नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

दसवाँ अध्याय

सांसारिक एवं स्वर्गीय भोगों की निःसारता का प्रतिपादन

श्रीउद्धवजी को तत्त्वोपदेश करते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

मयोदितेश्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ।
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ।।

(भा० ११/१०/१)

अर्थात् जो मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति के विषय में सावधान है, उसे मुझको ही एक मात्र अपना आश्रय मानकर अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुकूल मेरे द्वारा प्रोक्त धर्मों का पालन निष्काम भाव से करना चाहिए । उसे सर्वदा अपनी आत्मा के स्वरूप का ध्यान करते हुए विषयभोगों के दुःख प्रदत्व का चिन्तन करना चाहिए जिस प्रकार से स्वप्न काल में प्रतीत होने वाले विषयों का कोई भी फल नहीं होता है, उसी प्रकार अनेक प्रकार के विषयों का भोग भी व्यर्थ ही होता है । अतएव–

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां संप्रवृत्तः नाद्रियेत् कर्मचोदनाम् ।।

(भा०११/१०/४)

जो भगवद् भक्त भगवत् प्राप्ति के लिए ही सदा प्रयत्नशील रहता है । जो ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्नवान रहता है, उसे चाहिए कि वह उन्हीं कर्मों का अनुष्ठान करे जिसके द्वारा उसका संसार से वैराग्य हो,जिन कर्मों के अनुष्ठान से संसार में अनुरक्ति होती है उन कर्मों को न करे । वह उसके विषय में विधिशास्त्र का भी महत्त्व न दे। जो मेरा भक्त होता है उसे यम तथा नियमों का निरन्तर पालन करते हुए गुरु की उपासना करनी चाहिए जो परमात्मतत्त्व का अभिज्ञ हो, जिसकी सम्पूर्ण सांसारिक वासनाएँ समाप्त हो गयी हैं तथा जो मुझको ही अपनी आत्मा जानता हो ।

यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान् मत्परः क्वचित् ।
मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ।।
(भा० ११/१०/५)

तत्त्वजिज्ञासु पुरुष को मानमत्सर इत्यादि का त्याग करके, आत्म दर्शन में सदा स्थिर रहकर ममतारहित होकर सबसे सौहार्द का भाव रखना चाहिए। वह किसी कार्य में शीघ्रता न करे, तत्त्वजिज्ञासा रखे व्यर्थ की बातें न करे । सांसारिक संबन्धों के विषय में उदासीन रहे तथा सबों के प्रति समानता का भाव रखे । वह जाने कि आत्मा स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीर से भिन्न ही प्रकार का है । आत्मा समस्त शरीरों के भीतर प्रविष्ट है । शरीर तो मायाजन्य है । जब तक शरीर है तब तक ही संसार का संबन्ध है । शरीर का संबन्ध समाप्त हो जाने पर संसार का भी बन्धन छूट जाता है ।

तस्माज्जिज्ञासयाऽऽत्मानमात्मस्थं केवलं परम् ।
संगम्य निरसेदेतद् वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ।।
(भा० ११/१०/११)

अतएव आत्मा के स्वरूप को जानने की इच्छा वाले पुरुष को चाहिए कि अपनी आत्मा के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान, परमपुरुष परमात्मा को जानकर, देह आदि में होने वाली आत्मबुद्धि का परित्याग कर दे । शरीर के भीतर विद्या (ज्ञान) का प्राकट्य होता है। उस ज्ञान के द्वारा माया तथा माया के कार्यों का विनाश करके वह ज्ञान स्वरूप आत्मा में उसी प्रकार से लीन हो जाता है जिस प्रकार जंगल में लगी हुई अग्नि सम्पूर्ण जलाने योग्य वस्तुओ को जलाकर अन्त में इन्धन के अभाव में महा अग्नि में लीन हो जाती है ।

वैशारदी साति विशुद्धबुद्धि ।
र्धुनोति मयां गुणसम्प्रसूताम् ।
गुणांश्च सन्दस्य यदात्ममेतत्,
स्वयं च शाम्यत्यसमिद् यथाग्निः ।।
भा० (११/१०/१३)

इस प्रकार से सांसारिक सुखों की असारता तथा संसार से वैराग्य का प्रतिपादन करके श्रीभगवान् ने उद्धवजी को बतलाया कि सकाम कर्मों के अनुष्ठान से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि सुख भी अनित्य हैं ।

पुण्य कर्मों के अनुष्ठान से उत्पन्न पुण्यादृष्ट जब तक बना रहता है तब तक जीव देव लोक में रहकर स्वाभिलषित सुखों का भोग करता है । अदृष्ट के समाप्त हो जाने पर उसे पुनः उस लोक में आना पड़ता है।

तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते ।
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कालचालितः ।
(भा० ११/१०/२६)

इस संसार में आकर यदि वह दुःसंग में पड़कर पाप कर्मों को करने लगता है तो फिर उसे विवश होकर नारकीय यातनाओं को भोगना पड़ता है । जीव अपने कर्मों के अनुसार चाहे कोई भी शरीर धारण करे उसका पारतन्त्र्य बना रहता है । जब तक पारतन्त्र्य है तब तक उसे परमशान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती है । अतएव मुमुक्षु को चाहिये कि वह आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए प्रयास करे ।

श्री भगवान् की बातों को सुनकर उद्धवजी ने उनसे बद्ध एवं मुक्त जीवों के स्वरूप के विषय में प्रश्न किया ।

इस तरह से श्रीमद् भागवत् साप्ताहिक कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

ग्यारहवाँ अध्याय

बद्ध, मुक्त एवं भक्तजनों के स्वरूप का निरूपण

उद्धवजी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

बद्धो मुक्तो इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ।
गुणस्य मायामूलत्वात् न मे मोक्षो न बन्धनम् ।।
(भा०११/११/१)

आत्मा के बद्ध एवं मुक्त होने का जो व्याहार तथा व्यवहार होता है, वह वास्तविक नहीं है, अपितु ये दोनों प्रकार के व्यवहार सत्त्वादि गुणों के संबन्ध के कारण होते हैं । इन गुणों का जब तक जीव के साथ संबन्ध बना रहता है तब तक वह बद्ध कहलाता है । गुणों के संबन्ध

का जीव से समाप्त हो जाने को ही मुक्त होना कहलाता है । यह गुण (संसार) माया मूलक है । माया से मेरा संबन्ध नहीं होता है, अतएव मेरा न तो बन्ध होता है और न तो मोक्ष होता है । सुख, दुःख, तथा शरीर की प्राप्ति ये सब-के-सब मायिक हैं। इनकी स्थिति स्वाप्निक संसार के समान है । शरीरधारी जीवों का बन्ध अविद्या के कारण होता है तथा विद्या के द्वारा मोक्ष होता है । ये दोनों मायाजन्य हैं तथा मेरी दो शक्तियाँ हैं ।

एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ।
बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्यया च तथेतरः ।
(भा० ११/११/४)

ज्ञानी उद्धवजी मेरे अंश स्वरूप जीव एक ही रहता है । किन्तु अविद्या (अज्ञान) के कारण उसका अनादिकाल से बन्ध बना हुआ है। जब उसको विद्या की प्राप्ति हो जाती है तो वह मुक्त हो जाता है । बद्ध जीव एवं मुक्त जीव में होने वाले भेद का निरूपण करते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

सुपर्णवेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयेतौ कृतनीडौ च वृक्षे ।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नम् अन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ।।
(भा० ११/११/६)

इस शरीर रूपी एक ही वृक्ष में जीवात्मा तथा परमात्मा नामक दो समान तथा मित्रभाव से रहने वाले पक्षियों का निवास है । उन दोनों में जीवात्मा तो अपने कर्म फलों का भोग करता है । उन दोनों में सर्वज्ञ परमात्मा तो अपने स्वरूप तथा जगत् दोनों को जानता है और जीवात्मा न तो स्वस्वरूप को जानता है, न परमात्मा के स्वरूप को और न तो जगत् के स्वरूप को । जीवात्मा नित्यवद्ध है तथा सर्वज्ञ परमात्मा नित्यमुक्त है । यद्यपि विषयों का ग्रहण करने वाली इन्द्रियाँ हैं किन्तु जीवात्मा अपने में ही कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व का आरोप कर लेता है । किन्तु जो ज्ञानी पुरुष हैं वे संसार में समस्त कर्मो को करते रहकर भी अपने को सदा कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व की भावना से असम्पृक्त रखते हैं । वे समस्त संगों से दूर रहकर सदा अपनी आत्मा में ही अवस्थित रहते हैं । वे जो कुछ करते हैं निष्काम भाव से करते हैं । यदि उनका कोई अपमान करता है तो वे उससे उद्विग्न नहीं होते हैं और यदि

कोई उनका सम्मान करता है तो वे उससे प्रहर्षातिरेक का अनुभव नहीं करते हैं ।

ऐसे महापुरुष सबों के प्रति समान दृष्टि रखने वाले होते हैं तथा सर्वत्र निरपेक्ष रहकर जड़वत् विचरण किया करते हैं ।

जो वेदों को जानकर भी ब्रह्मनिष्ठ नहीं है तो उसका सम्पूर्णश्रम व्यर्थ होता है । अतएव–

यस्यां न मे पावनमङ्ग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ।
लीलावतारेप्सितजन्म वा स्यात् बन्ध्यां गिरं तां विभृयान्न धीरः ।।
(भा० ११/११/२०)

जिस वाणी में मेरे संसार की सृष्टि, रक्षण तथा संहार रूपी पावन कर्मों का वर्णन न हो, अथवा मेरे लीलावतारों का वर्णन नहीं हो, ज्ञानी पुरुष उस वाणी को नहीं धारण करते हैं । उद्धवजी इस प्रकार से आत्मा और संसार के स्वरूप आदि को जानकर जीव मेरी लोककल्याणकारी कथाओं का गान करता है । वह मेरी ही प्रसन्नता के लिए समस्त कर्मों को करता है । ऐसा पुरुष मेरी भक्ति को प्राप्त करके अन्त में मेरे लोक को प्राप्त कर लेता है ।

इसके पश्चात् भक्तों का स्वरूप निरूपण करते हुए श्रीभगवान् ने कहा कि जो मेरा भक्त होता है वह कृपालु, किसी से द्रोह नहीं करने वाला, सत्यभाषी, पाप वासना से रहित, सबों का उपकार करने वाला, निष्काम, संयमी, मधुर स्वभाव वाला, पवित्र तथा अकिञ्चन होता है । वह मान रहित तथा सबों का सम्मान करने वाला होता है । वह समस्त धर्मों का परित्याग करके एकान्त मन से मेरा भजन करता है । वह मुझे स्वरूपतः एवं स्वभावतः जानकर मेरी अनन्य भावना से भक्ति करता है।

मल्लिङ्ग-मद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ।
परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ।।
(भा० ११/११/३४)

मेरे भक्त को चाहिए कि वह मेरी मूर्ति तथा मेरे भक्तों का दर्शन, स्पर्श, पूजन, सेवा, स्तुति तथा प्रणाम करे और मेरे गुणों एवं कर्मों का कीर्तन करे । श्रद्धापूर्वक मेरी कथा सुने, मेरा ध्यान करे । दास्य भावना से मुझे अपना सर्वस्व समर्पित करे । हर प्रकार से मेरी आराधना करते हुए सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, पृथिवी, आत्मा तथा समस्त प्राणियों के भीतर मेरी अर्चना करे ।

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ।
भूतात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ।।
(भा० ११/११/४२)

इन ग्यारहों स्थानों में जो पुरुष मेरी इष्टापूर्त आदि के द्वारा आराधना करता है उसे मेरी भक्ति तथा मेरी स्मृति की प्राप्ति हो जाती है । सत्सङ्ग तथा भक्तियोग इन दोनों का समकाल में अनुष्ठान करने वाला पुरुष मुझे प्राप्त कर लेता है ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बारहवाँ अध्याय

सत्संग की महिमा का वर्णन

उद्धवजी को तत्त्वोपदेश करते हुए श्रीभगवान् ने कहा कि सत्सङ्ग के द्वारा मानव की सारी आसक्ति विनष्ट हो जाती है । अतएव सांख्य, योग, धर्माचरण, वेदाध्ययन, तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त कर्म, दक्षिणाप्रदान, व्रत, यज्ञ, तीर्थ, यम, नियम इत्यादि के द्वारा मैं उस प्रकार से वश में नहीं होता हूँ जिस प्रकार से मैं सत्संग के द्वारा वश में जाता हूँ । उद्धवजी यह एक युग की बात नहीं है । सभी युगों में दैत्य, राक्षस, पशु, पक्षी, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, सिद्ध, चारण गुह्यक तथा विद्याधरों ने मुझे प्राप्त किया है । मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ तथा अन्त्यज आदि जो रजोगुणी तथा तमोगुणी प्रकृति के जीव हैं उन सबों ने मुझे प्राप्त किया है । वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, वाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान, गजेन्द्र, जटायु-गृध्र, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रज की गोपियाँ, यज्ञपत्नियाँ तथा दूसरे जीव भी मुझे सत्संग के ही प्रभाव से प्राप्त किए।

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासित महत्तमाः ।
अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ।।
(भा० ११/१२/७)

इन सबों ने न तो वेदाध्ययन किया था और न तो विधिपूर्वक महापुरुषों की उपासना ही की थी । इन सबों ने कोई कठोर व्रत अथवा तपस्या भी नहीं की थी । केवल सत्संग के प्रभाव से मुझे प्राप्त किया। गोपियाँ आदि तो साधन इत्यादि के विषय में कुछ जानती भी नहीं थीं, इन सबों ने केवल अपनी प्रेमपूर्ण भावना से मुझे प्राप्त कर लिया । जिस समय अक्रूरजी मुझे मथुरा लाए उस समय गोपियाँ मेरे वियोग की तीव्र व्यथा से व्यथित थीं । उनके लिए मेरे अभाव में एक-एक क्षण एक-एक कल्प के समान लगता था ।

ता नाविदन् मय्यनुषङ्गवद्ध धियःस्वमात्मानमदः तथेदम् ।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ।।

(भा० ११/१२/१२)

जिस तरह मुनिगण समाधिस्थ होकर; अथवा गंगा आदि नदियाँ समुद्र में मिलकर; अपना नाम तथा रूप खोकर तदाकार हो जाती हैं, उसी तरह गोपियाँ भी मेरे परम प्रेम में इतना तन्मयय थीं कि उन्हें लोक-परलोक, बन्धु-बान्धव की भी परवाह नहीं रह गयी थी । अनेक गोपियाँ तो मुझे केवल अपना प्रियतम ही मानती थीं किन्तु सत्संग के प्रभाव से उन सबों ने मुझे प्राप्त कर लिया ।

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ।
मामेकमेव शरणंमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयम् ।।

(भा० ११/१२/१४-१५)

उद्धवजी आप समस्त विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति, श्रोतव्य-अश्रोतव्य का परित्याग करके सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा स्वरूप सम्पूर्ण जगत् शरीर मुझको ही अपना आश्रय मानकर मेरी शरण को अपना लो मैं तुझे अभय प्रदान कर दूँगा । सम्पूर्ण वेद, सारे योग तथा तपस्याओं का एकमात्र प्रतिपाद्य मैं ही हूँ । सम्पूर्ण संसार मुझसे ओत-प्रोत है । इस संसार के प्रति आसक्ति का परित्याग करके सर्वात्मा रूप से मुझे जानने वाले जीव मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिए परमहंस पुरुष संसार का परित्याग करने वाले राजहंस के समान सर्वदा मेरा

चिन्तन करते हुए विचरण करते रहते हैं । अतएव आचार्योपासना के द्वारा तुम तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके आविर्भूत गुणाष्टक बन जाओ, आत्मभाव को प्राप्त कर लो ।

इस प्रकार साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तेरहवाँ अध्याय

हंसोपदेश

श्रीभगवान् ने उद्धवजी को उपदेश देते हुए कहा–

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ।
सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ।।

सत्त्व, रज एवं तम ये तीनों बुद्धि के गुण हैं, आत्मा के नहीं । सत्त्वगुण के द्वारा रजोगुण एवं तमोगुण पर विजय प्राप्त करके सत्त्व गुण की शान्त वृत्ति के द्वारा उसकी दया आदि वृत्तियों को भी शान्त कर देना चाहिए । जब सत्त्व गुण की वृद्धि होती है तब भक्तियोग समृद्ध होता है । सत्त्वोपासना के द्वारा रजोगुण का ह्रास होता है तथा सत्त्वगुण की वृद्धि होती है । शास्त्र, जल, प्रजाएँ, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र और संस्कार ये दस वस्तुएँ यदि सात्त्विक हों तो सत्त्वगुण समृद्ध होता है, राजसी हों तो रजोगुण तथा तामसी हों तो तमोगुण समृद्ध होता है । मुमुक्षु पुरुष को तब तक उपर्युक्त दसों सात्त्विक वस्तुओं का सेवन करना चाहिए जब तक तत्त्वज्ञान का उदय न हो जाय ।

उसके पश्चात् उद्धवजी ने श्रीभगवान् से पूँछा कि यद्यपि सभी लोग यह जानते हैं कि विषयों का सेवन विपत्तियों का घर है; फिर भी वे उन्हीं को क्यों भोगते हैं? तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् ने कहा कि अज्ञान के कारण मनुष्य अपने स्वरूप को भूल जाता है तथा शरीरादि में ही उसकी आत्मत्व बुद्धि हो जाती है । मन में रजोगुण की प्रधानता हो जाती है जिसके कारण वह कामनाओं के फाँस में फँसता जाता है। यद्यपि विवेकी पुरुष का भी मन कभी-कभी रजोगुण एवं तमोगुण के

वेग से विक्षिप्त हो जाता है फिर भी उसकी विषयों में दोष दृष्टि बनी रहती है, अतएव वह अपने मन को एकाग्र करके विषयों से विरक्त हो जाता है । मेरे शिष्य सनकादि महर्षियों ने कहा है कि मन को सब ओर से खींच कर परमात्मा में लगा देना चाहिए ।

सनकादिकोपदेश को बतलाते हुए श्रीभगवान् ने बतलाया कि एक बार सनकादिक महर्षियों ने ब्रह्माजी से प्रश्न किया कि–

गुणेष्वाविशते चेतो गुणश्चेतसि च प्रभो ।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ।।

(भा० ११/१३/१७)

पितः चित्त विषयों में लगा रहता है तथा विषय भी चित्त की एक-एक वृत्ति में लगे रहते हैं । अर्थात् वे वरस्पर में मिले रहते हैं । संसार सागर को पार करने की इच्छा वाला पुरुष किस प्रकार से दोनों को एक दूसरे से पृथक् कर सकता है ?

श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा कि ब्रह्माजी जब सनकादिक महर्षियों के इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके तो उन्होंने उक्त प्रश्न का समाधान करने के लिए मेरा ध्यान किया । इसके पश्चात् मैं हंस का रूप धारण करके उन सबों के समक्ष प्रकट हो गया । मुझे देखकर महर्षियों ने पूछा आप कौन हैं ? तो मैंने उन सबों से कहा–

वस्तुनोद्यनानात्वं आत्मनः प्रश्न इदृशः ।
कथं घटेत वो विप्राः वक्तुर्वा मे क आश्रयः ।।
पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः।।

(भा० ११/१३/२२-२३)

ब्राह्मणों यदि पारमार्थिक रूप से वस्तु अभिन्न है । उसमें नानात्व का अभाव है तो आत्मा के विषय में आप लोगों का यह प्रश्न युक्तियुक्त कैसे हो सकता है ? मैं अपना परिचय देने के लिए किस जाति, गुण आदि का आश्रय अपनाऊँ । देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सबों का शरीर समान रूप से पञ्चभूतात्मक है। ऐसी स्थिति में आप कौन हैं? इस प्रकार के आप लोगों के प्रश्न का कोई अर्थ नहीं है । संसार में जो कुछ भी है वह सब कुछ मैं ही हूँ । इस बात को आप तत्त्वविचार पूर्वक जान सकते हैं । यद्यपि विषय चित्त में मिले हुए हैं और चित्त विषयों में; फिर भी चित्त और विषय परमात्मात्मक जीवात्मा की उपाधि हैं । उनसे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है । कल्याणकामी

पुरुष को चाहिए कि वह सब ओर से चित्त को आकृष्ट करके मेरा साक्षात्कार करे और उसके पश्चात् उन दोनों का परित्याग कर दे । आत्मा तो जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओं का साक्षी है और उनसे बिल्कुल विलक्षण है । संसार से विरक्त होकर तुरीयावस्थावस्थित मनुष्य को संसार की वासनाओं का परित्याग कर देना चाहिए । जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति ये तीनों अवस्थाएँ माया कल्पित हैं, इस प्रकार का निश्चय करके आप लोग अनुमान, शस्त्रीय प्रमाण तथा ज्ञान रूपी तीक्ष्ण खड्ग के द्वारा समस्त संशयों का छेदन करके मेरा भजन करें ।

ज्ञानी पुरुष को जानना चाहिए कि यह सारा संसार मन का विलास मात्र है । आलातचक्र के समान अत्यन्त चंचल होने के कारण भ्रम पैदा करने वाला है । आत्म तो एक है; किन्तु माया के कारण अनेक की प्रतीति होती है । इसकी शरीर इन्द्रिय एवं मन रूप से प्रतीति माया के कारण होती है । जो मनुष्य अपनी आत्मा में स्थित हो जाता है, उसे अपने शरीर आदि का आभास समाप्त हो जाता है ।

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत् स्वरूपम् ।
दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ।।

जिस प्रकार मदिरा पीकर मदमत्त बना हुआ पुरुष यह नहीं जान पाता है कि मेरे द्वारा धारण किया हुआ वस्त्र मेरे शरीर पर है अथवा गिर गया, उसी तरह सिद्ध पुरुष जिस शरीर से परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है वह शरीर-दैववशात् मेरे साथ है, या नहीं है, यह नहीं जान पाता है । उसे अपने शरीर का भान रह ही नहीं जाता है । जब तक शरीरारम्भक कर्म रहता है तब तक शरीर बना रहता है; किन्तु योगारूढ़ पुरुष, शरीर तथा बान्धवों आदि से उदासीन हो जाता है।

मैं आप लोगों को धर्म की शिक्षा देने के लिए आया हुआ साक्षात् यज्ञ पुरुष हूँ । इस प्रकार से सनकादिक महर्षियों को मैंने आत्मोपदेश प्रदान किया।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह छठे दिन की साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा सम्पूर्ण हुई ।

श्रीभगवान् मथुरा नगरी में प्रवेश कर रहे थे उस समय मथुरा नगरी सजा दी गयी थी । अनेक प्रकार के बाजे बजाये जा रहे थे । नारियाँ अपनी अटारियों से श्रीभगवान् के ऊपर फूल तथा लावा की वर्षा कर रही थीं । भगवान् युद्ध से अपार सम्पत्ति लाये थे । उस सारी सम्पति को उन्होंने मथुराधिपति के पास भेजवा दिया ।

इस प्रकार जरासन्ध सत्रह बार अपनी तेइस-तेइस अक्षौहिणी सेना को लेकर मथुरा पर आक्रमण किया । श्रीभगवान् की कृपा से यदुवंशी उसे प्रत्येक बार पराजित कर देते थे और वह उपेक्षा पूर्वक छोड़ दिये जाने पर अपने देश लौट जाता था । जब वह अठारहवीं बार आक्रमण करने वाला था तो उस समय नारदजी द्वारा भेजा हुआ कालयवन जरासन्ध के पक्ष में गया । कालयवन ने जब यह सुना कि यदुवंशी हमारे जैसे ही वीर हैं तो उसने भी तीन करोड़ म्लेच्छों की सेना लेकर मथुरा नगरी पर आक्रमण किया ।

जब श्रीभगवान् ने देखा कि कालयवन अपनी विशाल सेना लेकर हमारी नगरी को घेर रहा है तो उन्होंने बलरामजी से कहा इस बार तो हमारी सेना को दो-दो विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा । कालयवन आ गया है और जरासन्ध भी चार दिन में आ जायेगा । हम लोग यदि इस सबों से लड़ने में लग जायेंगे तब तो यह हमारी नगरी में प्रवेश करके यदुवंशियों को मारेगा तथा उन्हें बन्दी बनाकर अपने देश में ले जायेगा । अतएव हमलोग समुद्र में अभेद्य किला बनाकर वहीं पर अपनी प्रजा को रखकर तब इन सबों का वध करेंगे। यह सोचकर भगवान् ने विश्वकर्मा को आदेश दिया और रात्रि में ही समुद्र के भीतर बाहर योजन की द्वारका नगरी बनकर तैयार हो गयी। वह सुवर्ण की बनी नगरी थी । उसके सारे उपकरण दिव्य थे ।

श्रीभगवान् ने अपनी अचिन्त्य योगमाया की शक्ति से सभी यदुवंशियों को रातो-रात द्वारका नगरी में पहुँचा दिया । शेष प्रजा की रक्षा के लिए मथुरा में बलरामजी को छोड़कर श्रीभगवान् बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के गले में कमल की माला पहनकर अकेले मथुरा से बाहर निकले ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

एकावनवाँ अध्याय

कालयवन का विनाश तथा मुचुकुन्द की कथा

श्रीशुकदेव जी ने कहा कि जब श्रीभगवान् पूर्व दिशा से निकले तो ऐसा लगा कि जैसे पूर्व दिशा में चन्द्रोदय हो रहा हो । उनके श्याम शरीर पर पीताम्बर सुशोभित हो रहा था । हृदय पर कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही थी । उनकी लम्बी भुजाएँ, 'मकराकृति कुण्डल' कमल के सदृश मनोहर नेत्र तथा चार भुजाएँ थीं । कालयवन ने सोचा यही श्रीकृष्ण हैं । इन्हें ही नारदजी ने बतलाया है । ये बिना आयुध के हैं अतएव बिना आयुध के ही इनके साथ युद्ध करूँगा । कालयवन को देखते ही भगवान् भागने लगे और उनको पकड़ने की इच्छा से कालयवन भी उनके पीछे दौड़ने लगा । बार-बार कालयवन को लग रहा था कि अब मैंने श्रीकृष्ण को पकड़ा । इसतरह भगवान् कालयवन को पर्वत कन्दरा पर्यन्त भगाकर लाये । कालयवन ने कहा तुम यदुवंश में पैदा हुए हो । इसतरह से तुम्हारा भागना ठीक नहीं है । ऐसा कहने पर भी भगवान् उस पर्वत की कन्दरा में प्रवेश कर गये । कालयवन ने भी उस कन्दरा में प्रवेश किया तथा देखा कोई पीताम्बर ओढे सोया है । उसने सोचा कृष्ण ही यहाँ आकर सो गये हैं । उसने उस सोए हुए पुरुष को पैर से मारा । पैर के आघात से वे पुरुष जगे और चारो तरफ नेत्रों को खोलकर देखे तो सामने कालयवन था । उनके नेत्रों की क्रोधाग्नि से कालयवन जलकर भस्म हो गया ।

राजा परीक्षित् ने पूँछा कि भगवन् उस पर्वत की कन्दरा में सोए हुए महापुरुष कौन थे ? जिनके देखने मात्र से कालयवन भस्म हो गया? यह कालयवन कौन था ? तथा उसे कौन सी शक्ति प्राप्त थी? श्रीशुकदेवजी ने कहा कि पर्वत की कन्दरा में सोने वाले महापुरुष इक्ष्वाकुवंशीय राजा मान्धाता के पुत्र मुचकुन्द थे । वे महाबलवान थे। असुरों से भयभीत होकर देवताओं ने उनसे प्रार्थना की तो वे प्रसन्न

होकर दीर्घकाल तक देवताओं की रक्षा उनके सेनापति बनकर करते रहे जब देवताओं के सेनापति स्वामी कार्तिकेय हो गये तो देवताओं ने उनसे कहा राजन् आपने हमलोगों के लिए बहुत बड़ा त्याग किया है। अपना समृद्ध राज्य और परिवार छोड़ा है । अब आपके राज्य में आपके समय का कोई भी नहीं बचा है, सब कालकवलित हो गये हैं। अब आप विश्राम कीजिए । आप जो चाहें हमसे वरदान माँग लें हम मोक्ष को छोड़कर सब कुछ आपको दे सकते हैं । मोक्ष देना तो श्रीभगवान् के ही हाथ में हैं । राजा मुचकुन्द बहुत थके थे । उन्होंने सोने का ही वरदान माँगा । देवताओं ने कहा कि आपको सोते समय जो जगा देगा वह आपकी दृष्टि पड़ते ही जलकर भस्म हो जायेगा ।

जब कालयवन भस्म हो गया तो भगवान् श्रीकृष्ण महाराज मुचकुन्द के समक्ष आये । उस समय श्रीभगवान् का अत्यन्त सुन्दर वेष था । पीताम्बर धारण किए हुए वे गले में वैजयन्ती की माला पहने हुए थे । भगवान् के वक्षस्थल पर श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभ मणि सुशोभित थी । मुचकुन्द जी श्रीभगवान् के सुन्दर श्रीविग्रह को देखकर आश्चर्य चकित हो गये और पूछे–

को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ।।
किंस्वित् तेजस्विनां तेजो भगवान् वा विभावसुः ।
सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालोऽपरोऽपि वा ।।

(भा० १०/५१/२८-२९)

प्रभो ! आप कौन हैं ? इस काण्टों से भरे धोर जंजाल में अपने कमल के समान कोमल पैरों से क्यों विचरण कर रहे हैं ? इस पर्वत की गुफा में पधारने का आपका क्या प्रयोजन हैं ? आप समस्त तेजस्वियों के तेजःस्वरूप अग्नि देव तो नहीं हैं ? क्या आप सूर्य, चन्द्रमा देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल तो नहीं हैं । मुझे तो लगता है कि आप साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं । आप अपना परिचय दें । मैं तो महाराज मान्धाता का पुत्र हूँ । युद्ध में बहुत थक गया था । इसलिए निर्जन वन में सो रहा था । एक व्यक्ति ने मुझे जगाया और वह अपने पापों के ही कारण विनष्ट हो गया । महाराज मुचुकुन्द की वाणी सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–

मुचकुन्दजी मेरे नाम और कर्म अनेक है । उनका पता कोई नहीं

लगा सकता । मेरे अनन्त जन्म हो चुके हैं । वर्तमाान में मैं ब्रह्माजी की पार्थना से प्रसन्न होकर पृथिवी का भार उतारने के लिए यदुवंश में अवतीर्ण हुआ हूँ । मैंने अनेक असुरों का विनाश किया । यह कालयवन था जो आपके देखते ही भस्म हो गया । मैं यहाँ आप पर कृपा करने के लिए आया हूँ । आपने पहले मेरी बहुत आराधना की है । आप जो चाहें वरदान माँग लें । मेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं है। इसके पश्चात् मुचकुन्दजी ने जान लिया कि श्रीभगवान् का यदुवंश में अवतार हो गया है । उन्होंने श्रीभगवान् को प्रणाम किया । और वे स्तुति करने लगे ।

विमोहितोऽयं जन ईश मायया,
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःख प्रभवेषु सज्जते,
गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ।।

(भा० १०/५१/४६)

भगवन् ! संसार के सभी प्राणी आपकी माया से मोहित हैं । वे आपसे पराङ्मुख होकर अनर्थ में ही फँसे रहते हैं । वे सुख प्राप्त करने के लिए धर गृहस्थी के झंझट में फँस जाते हैं । जो समस्त दुःखों का स्रोत है । इस तरह स्त्री पुरुष ठगे जाते हैं । इस भारत वर्ष नामक कर्म भूमि में मानव-जीवन प्राप्त करके आपकी आराधना अच्छी तरह से की जा सकती है । किन्तु अज्ञानी जीव भोगों को भोगने में ही अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देते हैं । आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की । मुझे आपने दर्शन दिया । प्रभो ! मैं विषयों को भोगते-भोगते ऊब चुका हूँ। कहीं भी मुझे शान्ति नहीं मिली । अब आप मुझे अपने शरण में ले लीजिए मैं आपके शरण में आया हूँ ।

श्रीभगवान् ने कहा– राजन् ! मैं आपको वरदान का प्रलोभन दे रहा था आपकी परीक्षा के लिए । आप अब निष्काम होकर इस पृथिवी पर विचरण करें । इस जन्म में की गयी हिंसाओं का पाप सब धुल जायेगा। अगले जन्म में तुम ब्राह्मण होओगे और मेरी आराधना से मुझे प्राप्त करोगे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
एकावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

बावनवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का द्वारका गमन, बलरामजी का विवाह तथा रुक्मिणीजी का सन्देश लेकर ब्राह्मण का श्रीभगवान् के पास आना

श्रीशुकदेवजी ने कहा– श्रीभगवान् का दर्शन करके मुचकुन्दजी उस कन्दरा से बाहर निकले तो देखे पृथिवी के मनुष्य, पशु, वृक्ष इत्यादि बहुत छोटे हो गये हैं। वे जान गये पृथिवी पर कलियुग आ रहा है वे वहाँ से चलकर भगवान् नारायण के आश्रम वदरिकाश्रम पहुँच गये। और तपस्यारत हो गये।

उधर भगवान् भी पर्वत कन्दरा से निकलकर आये और कालयवन की सेना का संहार श्रीबलरामजी के साथ मिलकर किये। वे वहाँ से बहुत अधिक सम्पत्ति लेकर द्वारका की ओर चले। उसी समय अपनी सेना के साथ जरासन्ध भी आ गया। इस बार भगवान् जरासन्ध से लड़े नहीं बल्कि भागने लगे। दोनों भाई को भागते हुए देखकर जरासन्ध उनका पीछा रथ पर चढ़कर करने लगा। जरासन्ध को लगा हम से डरकर दोनों भाई भागते हुए बहुत थक गये है। भगवान् और बलराम जी प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ गये। जरासन्ध ने उन दोनों भाइयों को बहुत खोजवाया किन्तु पता नहीं चला। उसने उस पर्वत में चारो ओर से आग लगवा दी। पर्वत को जलते हुए देखकर भगवान् उस पर्वत के शिखर से पृथिवी पर कूद पड़े। श्रीभगवान् तथा बलरामजी को कोई भी देख नहीं सका और वे द्वारका में चले गये। जरासन्ध ने भी जान लिया कि दोनों भाई जलकर मर गये। वह भी अपनी सेना लौटाकर मगध देश चला गया।

इसके बाद आनर्त देश के राजा रैवत ने अपनी पुत्री रेवतीजी का विवाह श्रीबलरामजी से कर दिया। इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने शिशुपाल आदि को परास्त करके विदर्भ देश की राजकुमारी रुक्मिणी

के साथ विवाह किया । रुकमिणीजी राजा भीष्मक की पुत्री तथा लक्ष्मीजी का अवतार थीं ।

राजा परीक्षित् ने पूँछा श्रीभगवान् ने रुक्मिणीजी का अपहरण करके राक्षस विधि से उनके साथ विवाह क्यों किया ? आप हमें श्रीभगवान् की इस लीला को सुनाइये ।

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि विदर्भ देश के राजा भीष्मक थे । उनके पाँच पुत्र थे– रुक्मी, रक्मरथ, रक्मवाहु, रुक्मकेश तथा रुक्ममाली। उनकी पुत्री का नाम रुक्मिणी था । रुक्मिणी ने जब भगवान् श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, पराक्रम इत्यादि का वर्णन सुना तो निश्चय कर लिया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही हमारे अनुरूप पति हैं । भगवान् श्रीकृष्ण भी समझते थे कि रुक्मिणी अद्वितीय सुन्दरी हैं और वे ही हमारी अनुरूप पत्नी हैं । अतएव उन्होंने निश्चय किया कि मुझे रुक्मिणाी से ही विवाह करना है । रुक्मिणी का बड़ा भाई रुक्मी श्रीकृष्ण से द्वेष रखता था और अपनी बहन का विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहता था ।

रुक्मिणी ने जब यह जाना कि रुक्मी मेरा विवाह शिशुपाल से करना चाहता है तो वे उदास हो गयीं और उन्होंने एक पत्र लिखकर एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को भगवान् के पास भेज दिया । ब्राह्मण देवता द्वारकापुरी में जाकर देखे कि श्रीभगवान् स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं । ब्राह्मण देवता को देखते ही श्रीभगवान् सिंहासन से उतरकर ब्राह्मण देवता को अपने आसन पर बैठाकर उनकी पूजा किये। जब ब्राह्मण देवता विश्राम कर चुके थे तो श्रीभगवान् उनके पास गये तथा अपने हाथों से उनके पैरों को दबाते हुए पूँछे– ब्राह्मण देवता आप हर प्रकार से सन्तुष्ट तो हैं ?

विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूतसृहृत्तमान् ।
निरहंकारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत् ।।

(भा० १०/५२/३३)

अपने आप प्राप्त वस्तुओं से सन्तुष्ट रहने वाले, मधुर स्वभाव वाले, समस्त प्राणियों के परम हितैषी, अहंकार रहित तथा शान्त ब्राह्मणों को मैं सिर से नमस्कार करता हूँ । ब्राह्मण देवता आप कहाँ से पधारे हैं ? और आपके आने का प्रयोजन क्या है ? यदि कोई गोपनीय बात न हो तो उसे आप अवश्य बतलाइये । आपकी हम

कौन सी सेवा करें ? भगवान् की बातों को सुनकर ब्राह्मण देवता ने रुक्मिणी का सन्देश सुनाया–

श्रुत्वा गुणान् भुवन सुन्दर शृणवतां ते,
निर्विश्य कर्णविवरैः हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं,
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ।।

(भा० १०/५२/३७)

त्रिभुवन सुन्दर ! जो सुनने वालों के श्रवणमार्ग से हृदय में प्रवेश करके प्रत्येक अंग के सन्ताप को हर लेते हैं, तथा अपने रूप सौन्दर्य को जो नेत्र वाले जीवों के नेत्रों के लिए सभी प्रकार के पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं, आपके उन गुणों को सुनकर मेरा अन्तःकरण लज्जा को छोड़कर आपमें ही प्रवेश कर रहा है । प्रभो ! आप शौर्य,वीर्य पराक्रम, सौन्दर्य, शील इत्यादि समस्त विषयों में अद्वितीय हैं । संसार के सभी प्राणी आपका दर्शन करके परम शान्ति का अनुभव करते हैं । आप ही बतलायें कि ऐसी कौन सी कुलवती, गुणवती तथा धैर्यवती कन्या होगी जो विवाह के योग्य समय आने पर आपको ही पति के रूप में वरण नहीं करेगी । प्रियतम आपको ही मैंने पति के रूप में वरण किया है । अतएव यहाँ आकर आप मुझे अपनी पत्नी के रूप में अवश्य स्वीकार करें । आप ऐसा करें कि शिशुपाल मेरा स्पर्श न कर सके । यदि मैंने अपने पूर्वजन्मों में कोई पुण्य किया है तो भगवान् श्रीकृष्ण मुझे पति रूप में अवश्य प्राप्त हों । कोई भी दूसरा पुरुष मेरा स्पर्श न कर सके । मेरे विवाह से एकदिन पूर्व गुप्त रूप से मेरे नगर में आ जायँ तथा शिशुपाल एवं जरासन्ध इत्यादि की सेना को मथकर राक्षस विधि से मेरा प्राणिग्रहण करें । विवाह से एक दिन पूर्व कन्य को जाने वाली कुमारी को शोभापात्र के साथ नगर के बाहर कुलदेवी गिरिजा देवी का पूजन करने जाना होता है । उसी समय आप हमारा हरण करें । यदि आप ऐसा नहीं कर सके तो मैं अपना प्राण त्याग दूँगी। ब्राह्मणा देवता ने कहा यही रहस्यात्मक सन्देश है । आप जैसा चाहें वैसा करें ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणी हरण

श्रीशुकदेवजी ने कहा– ब्राह्मण देवता के मुख से रुक्मिणी का सन्देश सुनकर श्रीभगवान् ने उनका हाथ पकड़कर हँसते हुए कहा– जिस तरह विदर्भ राजकुमारी मुझे चाहती है, उसी तरह मैं भी उसे चाहता हूँ । मैं जानता हूँ कि रुक्मी ने द्वेष वश मेरा विवाह रोक दिया है । किन्तु मैं युद्ध में सभी क्षत्रियों को परास्त करके राजकुमारी रुक्मिणी को अवश्य लाऊँगा । विवाह का नक्षत्र जानकर श्रीभगवान् ने दारुक से कहा कि तुम मेरा रथ तैयार करो । दारुक भी भगवान् के रथ में शैव्य, सुग्रीव, मेघपुरुष तथा बलाहक इन चार घोड़ों को जोड़कर शीघ्र रथ लाए । भगवान् श्रीकृष्ण पहले ब्राह्मण देवता को रथ पर बैठाकर रथ में बैठे और एक ही रात में द्वारका से विदर्भ देश पहुँच गये । महाराज भीष्मक रुक्मी के स्नेहवश रुक्मिणी का शिशुपाल के साथ विवाह की तैयारी में लगे थे । पूरा नगर सजाया गया था । चारो ओर छिड़काव हो रहा था । सम्पूर्ण नगर से धूप की सुगन्धि आ रही थी । ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और फिर स्वस्तिवाचन कराया गया । राजकुमारी को स्नान कराकर सभी अलंकारो से अलंकृत किया गया । राजा ने ब्राह्मणों को विविध प्रकार का दान दिया ।

इधर चेदिनरेश दमघोष ने भी अपने पुत्र शिशुपाल के विवाह का मङ्गल किया । उसके बाद वे अपनी चतुरङ्गिणी सेना सजाकर कुण्डीन पुर नगरी में बारत लेकर चले आये । महाराज भीष्मक ने सबों का स्वागत किया । शिशुपाल के साथ शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र इत्यादि अनेक राजा भी अपनी सेना के साथ आये थे । वे सब इसलिए आये थे कि कहीं किसी तरह श्रीकृष्ण रुक्मिणी का अपहरण न कर लें।

इधर जब बलरामजी ने यह जाना कि श्रीकृष्ण अकेले ही कुण्डीन पुरी रुक्मिणी का अपहरण करने गये है तो वे भी चतुरङ्गिणी सेना लेकर कुण्डीनपुरी के लिए शीघ्रता से प्रस्थान किए ।

इधर रुक्मिणीजी भी अत्यन्त चिन्तित थीं कि अब तक न तो भगवान् आये और न तो ब्राह्मण देवता ही लौटे । अब मेरे विवाह में केवल एक रात्रि की देर है । श्रीभगवान् तो मेरे शुद्ध प्रेम को जानते ही हैं । हो सकता है कि वे मुझमें कोई दोष देखे हों इसीलिए अभी तक यहाँ नहीं पधारे ।

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखा गौरी, रुद्राणी गिरिजा सती ।।

(भा० १०/५३/२५)

मेरे भाग्य ही मन्द हैं । विधाता और भगवान् शंकर भी मेरे अनुकूल नहीं जान पड़ते हैं । हो सकता है रूद्रपत्नी गिरिराज किशोरी पार्वतीजी भी मुझसे प्रसन्न न हों । श्रीभगवान् का ध्यान करती हुई रुक्मिणीजी का मन भर आया । उनके आँखों में आँसू भर गये । उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर ली । जब वे श्रीभगवान् का चिन्तन कर रही थीं उस समय उनकी वायी जंघा, वायीं भुजा तथा वायीं आँख फरकने लगे । इसके पश्चात् वे ब्राह्मण देवता रुक्मिणीजी के पास आये और बतलाये श्रीभगवान् आ गये हैं । इस समाचार को सुनकर रुक्मिणीजी समझ नहीं पायीं कि इस खुशी के बदलें में मैं ब्राह्मण देवता को क्या दूँ । मन ही मन अपार सम्पत्ति प्रदान करके भी वे सन्तुष्ट नहीं थीं । उन्होंने ब्राह्मण देवता को प्रणाम किया । राजा भीष्मक ने जब यह सुना कि श्रीकृष्ण जी हमारी पुत्री का विवाह देखने के लिए आये हैं तो राजा ने उनकी अगवानी बाजे-गाजे से की । राजा ने श्रीभगवान् की पूजा की और उन्हें उचित स्थान पर ठहराया । श्रीभगवान् के आगमन का सुनकर विदर्भ वासी लोगों ने मन भरकर उनका दर्शन किया । वे सब लोग कह रहे थे कि रुक्मिणी तो श्याम सुन्दर की ही पत्नी होने लायक थी ।

इधर रुक्मिणीजी गिरिजा देवी की पूजा करने के लिए राज भवन से निकल कर चलीं । श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान करके वे पैदल ही पार्वतीजी की पूजा करने के लिए चलीं । उनकी सखियाँ उन्हें चारो ओर से घेरे थीं । उनके पीछे अनेक सैनिक चल रहे थे। अनके प्रकार के बाजे बज रहे थे । देवी के मन्दिर में पहुँचकर रुक्मिणीजी ने श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान करते हुए पूजा की ।

और भगवान् श्रीकृष्ण के पति होने का वरदान माँगा । पूजा के पश्चात् अपनी एक सखी का हाथ पकड़कर वे मन्दिर से निकलीं ।

यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदार हास
व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः।
पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयती स्वशोंभाम् ।
सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ,
प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा।
उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः
प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान् ददृशेऽच्युतं सा ।।

(भा० १०/५३/५३-५४)

रुक्मिणीजी उत्सव यात्रा के बहाने पैदल चलकर भगवान् श्रीकृष्ण पर अपना राशि-राशि सौन्दर्य निछावर कर रही थीं । रुक्मिणीजी को देखकर उनकी खुली मुसुकान तथा लजीली चितवन पर बड़े-बड़े वीर राजा इतने मोहित और बेहोश हो गये कि उनके हाथों से अस्त्र-शस्त्र छूटकर पृथिवी पर गिर पड़े तथा वे स्वयं भी अपने वाहनों से पृथिवी पर गिर पड़े । रुक्मिणीजी श्रीभगवान् के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं तथा कमल कली के समान कोमल पैरों को धीरे-धीरे आगे बढ़ा रही थीं । उन्होंने बायें हाथ की अंगुलियों से मुख पर लटके हुए बालों को हटाया तथा राजाओं की ओर लजीली चितवन से देखा । उसी समय उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हुए । वे रथ पर चढ़ना ही चाहती थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण सबों के देखते-देखते ही रुक्मिणी जी को उठा लिए और अपने रथ पर बैठा लिए तथा बलरामजी आदि यदुवंशियों के साथ द्वारका के लिए चल पड़े । श्रीभगवान् के इस पराक्रम को देखकर सभी दूसरे राजा अपने आप को धिक्कारने लगे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

चौवनवाँ अध्याय

राजाओं का पराजय तथा श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि सभी राजा क्रोध में भरकर अपने बाहनों पर चढ़कर तथा अस्त्र शस्त्र लेकर यदुवंशी सेना का पीछा करने लगे । जरासंध की सेना के सभी वीर धनुर्विद्या विशारद थे । वे सब यदुवंशियों पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके उस सेना को मानों ढंक दिये यह स्थिति देखकर रुक्मिणीजी ने भयभीत नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण की ओर लज्जापूर्वक देखा । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं है । अभी तुम्हारी सेना शत्रुओं को विनष्ट कर देगी। इसके बाद यदुवंशियों ने अपना युद्धकौशल दिखाते हुए शत्रुओं की सारी सेना को विनष्ट कर दिया । शिशुपाल तो अपनी भावी पत्नी का अपहरण जानकर मरणासन्न हो गया था । उससे जरासन्ध ने कहा कोई भी बात सदा अपने मन के ही अनुकूल हो यह संभव नहीं है । सब कुछ दैवाधीन है । श्रीकृष्ण ने तो मुझे सत्रह बार पराजित कर दिया मुझे केवल एक बार विजय मिली किन्तु मैं इसके लिए कभी भी शोक नहीं करता हूँ । यद्यपि हमलोग वीर सेना के सेनापति हैं किन्तु इस समय श्रीकृष्ण की छोटी सी सेना ने हमलोगों को परास्त कर दिया । कभी समय आयेगा जब हम भी शत्रु श्रीकृष्ण को परास्त कर देंगे । इसके बाद शिशुपाल भी अपने चेदिदेश को लौट गया ।

रुक्मिणी का बड़ा भाई रुक्मी ने जब सुना कि मेरी छोटी बहन का अपहरण श्रीकृष्ण ने कर लिया तो वह एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा करने लग़ा । क्रोध में भरकर रुक्मी कवच पहनकर तथा धनुष हाथ में लेकर सभी राजाओं से कहने लगा–

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यहृत्य च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ।।

(भा० १०/५४/२०)

मैं आप लोगों के समक्ष यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि श्रीकृष्ण को मारे बिना तथा रुक्मिणी को लौटाये बिना कुण्डिन पुरी में प्रवेश नहीं करुँगा । वह रथ पर सवार होकर सारथि से कहा जहाँ श्रीकृष्ण हो वहाँ मेरे रथ को ले चलो । आज मेरा युद्ध श्रीकृष्ण के ही साथ होगा। आज मैं श्रीकृष्ण को मारे बिना नहीं छोड़ सकता । उसने श्रीकृष्ण भगवान् को युद्ध करने के लिए ललकारा । उसने कहा जब तक मेरे बाणों से तुम मर नहीं जाते उससे पहले ही मेरी बहन को छोड़ दो । रुक्मी की बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कुराने लगे । इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने बाणों से रुक्मी के धनुष तथा उसके रथ के ध्वज को काट दिया । रुक्मी ने एक के बाद एक धनुष को ग्रहण किया और भगवान् ने सब को काट डाला । भगवान् ने रुक्मी के सभी अस्त्र शस्त्रों को काट डाला । इसके पश्चात् रुक्मी हाथ में तलवार लेकर भगवान् पर झपटा तो भगवान् ने अपने बाणों से उसके ढाल को खण्ड-खण्ड कर दिया और हाथ में तीव्र कृपाण ले लिया। रुक्मिणीजी ने देखा अब श्रीभगवान् रुक्मी को मार डालेंगे तो वे भगवान् के पैरों पर गिर पड़ी और कहने लगीं– भगवन् आप परम बलवान् हैं आप मेरे भाई को मत मारिए ।

श्रीरुक्मिणीजी ने जब श्रीभगवान् का पैर पकड़ लिया था और वे घबरा गयी थीं तो यह देखकर श्रीभगवान् ने रुक्मी को मारने का मन बदल दिया, फिर भी रुक्मी श्रीभगवान् के अनिष्ट की चेष्टा से विरत नहीं हुआ तो भगवान् ने उसे अपने दुपट्टे से बाँध दिया उसकी दाढ़ी मूछ कई जगह से मूंडकर उसे कुरूप बना दिया । तब तक यादव वीरों ने उसकी सेना को भी विनष्ट कर दिया । श्रीबलरामजी ने जब रुक्मी को अधमरा अवस्था में देखा तो उसे बन्धन से खोल दिया और श्रीकृष्ण भगवान् से कहा– हे कृष्ण तुमने अपने सम्बन्धी को कुरुप बनाया यह अच्छा काम नहीं है । इसके पश्चात् श्रीबलरामजी ने अपने भाई को कुरुप बनाने के कारण दुःखी रुक्मिणीजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण दोनों को समझाया बुझाया ।

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को बतलाया कि श्रीबलरामजी के द्वारा समझाये जाने के पश्चात् श्रीरुक्मिणीजी का मन शान्त हुआ। उधर रुक्मी और उसकी सेना परास्त हो चुकी थी । वे लोग वहीं पर एक

भोजकट नामक नगरी बसाये और वहीं रहने लगे, फिरकर कुण्डिन पुरी में नहीं गये ।

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त राजाओं को परास्त करके तथा रुक्मिणीजी का अपहरण करके उन्हें द्वारका ले जाकर विधिपूर्वक उनका पाणिग्रहण किये । उस समय द्वारका में महोत्सव मनाया गया। सम्पूर्ण द्वारका नगरी सजायी गयी । सब लोगों ने विभिन्न प्रकार के उत्सव मनाये तथा रुक्मिणी एवं भगवान् श्रीकृष्ण के विवाह को देखकर अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव किए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के दसवें स्कन्ध का
चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह पाँचवे दिन की साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा सम्पूर्ण हुई।

❀❀❀

साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा

के

सातवें दिन की कथा

पृष्ठ ७९१ से ९०२ तक

(सप्तमे दिवसे कुर्याच्छ्रीमद्भागवत पूरणम्)

(ग्यारहवें स्कन्ध के चौदहवे अध्याय से ग्रन्थ समाप्ति पर्यन्त)

चौदहवाँ अध्याय

उद्धवजी को भक्तियोग की महिमा का उपदेश

उद्धवजी ने श्रीभगवान् से पूँछा कि ब्रह्मज्ञानियों ने कल्याण के अनेक साधन बतलाये हैं, क्या वे सब-के-सब एक समान हैं अथवा उनमें से किसी एक की प्रधानता है । आपने तो बतलाया है कि भक्तियोग एक ऐसा साधन है जिससे मनुष्य का मन परमात्मा में लग जाता है । इस पर श्रीभगवान् ने कहा–

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ।।

(भा० ११/१४/३)

अर्थात् प्रलय काल में यह भागवत धर्म से सम्पन्न वेदवाणी नष्ट हो गयी थी । सृष्टि के प्रारम्भ में अपने सत्यसंकल्प से पूर्वकल्प में विद्यमान वेद को स्मरण करके मैंने ब्रह्माजी को उसका उपदेश दिया। उन्होंने मनु को तथा भृगु आदि सात प्रजापतियों को उसका उपदेश दिया । जिसकी जैसी प्रकृति थी उसने उस वेद वाणी का वैसा ही अर्थ समझा। कुछ लोग तो विचार किए बिना ही पाखण्ड मतावलम्बी हो गए । सबों की बुद्धि मेरी माया के द्वारा मोहित है, इसीलिए भिन्न-भिन्न लोगों ने अपने कर्म तथा रुचि के अनुसार कल्याण के भिन्न-भिन्न साधनों को माना । कोई धर्म को कल्याण का साधन मानता है तो कोई यश को, कोई काम को, कोई सत्य को, कोई शम एवं दम को । इस तरह से भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न कल्याण के साधनों को बतलाते हैं। किन्तु ये सब-के-सब कर्म की कोटि में आते हैं और सब-के-सब नाशवान् हैं । इन सबों का फल दुःख, शोक, अज्ञान तथा क्षुद्र आनन्द होता है । जिसकी सारी कामनाएँ समाप्त हो गयी हैं, जिसका मन मुझमें लगा है; उस पुरुष को जिस सुख की प्राप्ति होती है, उस सुख की प्राप्ति विषयी जीवों को कैसे संभव है ?

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।
मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमयाः दिशः ।।
(भा० ११/१४/१३)

जो सब प्रकार के संग्रह एवं परिग्रह से रहित होकर अञ्चिन है; जो अपने इन्द्रियों को वश में करके शान्त, दान्त एवं समदर्शी हो गया है, जो मुझको प्राप्त करके सदा सन्तुष्ट रहा करता है उसके लिए सर्वत्र सुख ही सुख है । जिस पुरुष का मन मुझमें ही लगा हुआ है, वह न तो ब्रह्माजी का पद प्राप्त करना चाहता है और न तो इन्द्र का पद प्राप्त करना चाहता है । वह सम्पूर्ण पृथिवी का सार्वभौम सम्राट् भी नहीं होना चाहता, वह न तो योग की सिद्धियों को प्राप्त करना चाहता है और न तो मोक्ष ही प्राप्त करना चाहता है वह केवल मुझको चाहता है।

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनि र्न शङ्करः ।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ।।
(भा० ११/१४/१५)

उद्धव मुझको जिस तरह प्रियतम आप हैं उतना प्रियतम न ब्रह्माजी हैं, न शंकरजी, न बलरामजी, न लक्ष्मीजी और न तो अपनी आत्मा ही उतनी प्रिय है । मैं अपने निरपेक्ष, समदृष्टि भक्तों के पीछे-पीछे इसलिए घूमता हूँ कि उसके चरणों की धूलि मुझ पर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ । अकिञ्चन, शान्त, सबों से मित्रता का भाव रखने वाले मेरे भक्तों को सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है । मेरे भक्तों को विषयों का आकर्षण अभिभूत नहीं कर पाता है। मेरी भक्ति भक्तों के समस्त पापों को जलाकर भस्म कर देती है ।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।।
(भा० ११/१४/२१)

मैं सन्तों की प्रियतम आत्मा हूँ । कोई भी अनन्या भक्ति तथा अनन्या श्रद्धा से मुझको अपने वश में कर सकता है । मेरी भक्ति चाण्डालों को भी पवित्र बना देती है । जिसके मन में मेरी भक्ति नहीं है उसको धर्म, सत्य, दया, दान तथा तपस्या आदि नहीं पवित्र कर पाते हैं । मेरे भक्त की वाणी, मेरे प्रेम से गद्‌गद बनी रहती है । वह मेरे प्रेम में मग्न होकर कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी गाता है तथा कभी नृत्य करने लगता है ।

जब मनुष्य विषयों का चिन्तन करता है तो उसका अन्तःकरण विषयों में संसक्त हो जाता है । जब व्यक्ति मेरा चिन्तन करता है तो उसका मन मुझमें ही तल्लीन हो जाता है । अतएव सबों की चिन्ता छोड़कर मुझमें ही अपना मन लगा दो । स्त्रियों तथा स्त्रियों के प्रेमियों की संगति से सदा दूर रहो। ऐसा करने से तुम्हारा परम कल्याण हो जायेगा ।

इसके पश्चात् उद्धवजी ने कहा कि भगवन् ! आप अपने ध्यान के प्रकार का मुझे उपदेश दें । इसका उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा कि उपासक समान आसन पर शरीर को सीधा करके सुखपूर्वक बैठे। फिर प्राणायाम के द्वारा प्राणमार्ग की शुद्धि करे । इसके पश्चात् हृदय कमल के मृणाल के सूत्र के समान ओंकार का चिन्तन करना चाहिए। प्राण के द्वारा उसे ऊपर ले जाना चाहिए । धण्टानाद के समान स्वरस्थिर करे । उस स्वर का संतान टूटे नहीं ।

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ।
दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग् जितानिलः ।।

(भा० ११/१४/३५)

इस तरह प्रतिदिन तीनों सन्ध्यायों में दस-दस बार ओंकार सहित प्राणायाम का अभ्यास करे । ऐसा करने से एक महीने में ही प्राणवायु वश में हो जाती हैं । इसके पश्चात् ध्यान करे कि हृदय एक ऐसा कमल है जिसकी नाल ऊपर की ओर है तथा मुख नीचे की ओर है । वह अष्टदल कमल ऊपर की ओर मुख करके विकसित हैं । उसके बीच में पीली-पीली सुकुमार कर्णिका है । उस कर्णिका में उत्तरोत्तर सूर्य, सोम तथा अग्नि का न्यास करना चाहिए । श्रीभगवान् प्रशान्त मुख हैं चार भुजाएँ हैं, वर्षाकालीन मेघ के समान शरीर पर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है । वक्षस्थल में श्रीवत्सचिह्न सुशोभित हो रहा है । वहीं पर लक्ष्मीजी का निवास है । मेरा दिव्य विग्रह समस्त अलंकारों से अलंकृत है। सम्पूर्ण वासनाओं से ऊपर उठकर मेरे मुस्कुराते हुए मुखड़े का ध्यान करना चाहिए ।

एवं समाहितमति र्मामेवात्मानमात्मनि ।
विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ।।

(भा० ११/१४/४५)

अर्थात् जब इस प्रकार से उपासक का चित्त समाहित हो जाता है; तब जैसे एक ज्योति दूसरी ज्योति से मिलकर एक हो जाती है; वैसे ही ज्योतिस्वरूप अपने में मुझे और सम्पूर्ण जगत् की आत्मा में अपना अनुभव करने लगता है । इस अवस्था में पहुँचे हुए योगी के सारे संशय समाप्त हो जाते हैं और वह मुझमे ही अपने चित्त का संयम कर लेता है ।

इस तरह श्रीमद्भागवत साप्ताहिक कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न सिद्धियों के नाम तथा उनके लक्षण

श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा–

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेतः उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ।।

(भा० ११/१५/१)

जब योगी अपनी इन्द्रियों, मन तथा प्राण को वश में करके मुझमें अपने अन्तःकरण को लगा देता है तब उसके समक्ष अनेक प्रकार की सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं । धारणा योग में पारङ्गत योगी के समक्ष आने वाली सिद्धियों की संख्या अट्ठारह हैं । किन्तु उनमें आठ सिद्धियाँ तो प्रधान रूप से मुझमें रहती हैं और शेष दश सिद्धियाँ सत्त्वगुण के विकास से प्राप्त होती हैं ।

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ।।
गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ।
एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टा वौत्यपत्तिका मताः ।।

(भा० ११/१५/४-५)

अणिमा, महिमा तथा लघिमा ये तीन सिद्धियाँ शरीर की हैं ।

प्राप्ति नामक सिद्धि इन्द्रियों की हैं । लौकिक तथा पारलौकिक पदार्थों का इच्छानुसार अनुभव कराने वाली सिद्धि का नाम ईशिता है । विषयों के बीच में रहकर भी उनमें आसक्त न होना ही वशिता नाम की सिद्धि है । अभिप्रेत सुख की सीमा तक पहुँच जाने को ही कामावसायित्व नामक सिद्धि कहते हैं । ये आठों सिद्धियाँ मुझमें ही रहती हैं और वे उसी को अंशतः प्राप्त होती हैं जिसको मैं प्रदान करता हूँ ।

निम्नांकित दस सिद्धियाँ सत्त्वगुण के विकास से प्राप्त हो जाती हैं- (१) शरीर में भूख-प्यास का वेग न होना (२-३) बहुत दूर की बात देख लेना और बहुत दूर की बात को सुन लेना, (४) मन के साथ शरीर को भी अभिप्रेत स्थान पर पहुँच जाना (५) अपने मनोऽनुकूल रूप बना लेना (६) दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाना (७) अपनी इच्छा के अनुसार शरीर त्याग करना (८) अप्सराओं के साथ होने वाली देवक्रीडा का दर्शन करना (९) संकल्प की सिद्धि (१०) सर्वत्र सबके द्वारा बिना किसी हिचक के आज्ञा का पालन किया जाना ।

इसके अतिरिक्त योगियों को और भी पाँच सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भो ऽपराजयः ।।

(भा० ११/१५/८)

तीनों कालों की बातें को जानना, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि के वश में न होना, दूसरों के मन की बातों को जान लेना, अग्नि, सूर्य, जल तथा विष आदि की शक्ति को अवरुद्ध कर देना तथा किसी से पराजित न होना।

जो योगी पञ्चतन्मात्रात्मक मेरे शरीर की उपासना करते हुए अपने मन को उसी में लगाकर तदाकाराकारित कर देता है उसे अणिमा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है । इस सिद्धि के द्वारा उसको पत्थर के चट्टान आदि में भी प्रवेश करने की शक्ति मिल जाती है । इस रूप में मैं समस्त ज्ञानों का केन्द्र हूँ । महत्त्व मेरा शरीर है मेरे उस रूप में मन को लगाने वाले को महिमा नामक सिद्धि होती है । जो साधक मेरे वायु आदि चार भूतों के पारमाणु शरीरक मेरा ध्यान करता है उसे लघिमा नामक सिद्धि प्राप्त होती है ऐसा योगी काल के समान सूक्ष्म शरीर

धारण करने का सामर्थ्य रखता है । इस तरह से उपर्युक्त सभी सिद्धियाँ उस योगी को प्राप्त हो जाती हैं, जो योगी जितेन्द्रिय होकर मेरी आराधना करता है उसके लिए कोई भी सिद्धि अलभ्य नहीं होती किन्तु—

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ।
मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ।।

(भा० ११/१५/३३)

श्रेष्ठ पुरुषों का मानना है कि जो मुमुक्षु पुरुष भक्तियोग रूपी उत्तम साधन के माध्यम से मुझमें मिल रहे हैं, उनके लिए ये प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ विघ्न स्वरूप होती हैं । इनके द्वारा योगी के समय का दुरुपयोग ही होता है । संसार में जन्म, औषधि, तपस्या, मन्त्र इत्यादि के द्वारा जिन सिद्धियों की प्राप्ति होती है, वे सभी प्रकार की सिद्धियाँ योग के द्वारा प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु योग की चरमावधि मेरे सारूप्य, सालोक्य, सायुज्य आदि की प्राप्ति तो बिना मुझमें भक्ति पूर्वक मन लगाए नहीं होती है ।

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ।
अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ।।

ब्रह्मज्ञानियों ने योग, सांख्य तथा धर्म आदि अनेक आत्मोज्जीवन के साधन बतलाए हैं मैं उन समस्त साधनों तथा सिद्धियों का एकमात्र हेतु, स्वामी तथा प्रभु हूँ । मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा हूँ । सबों के भीतर एवं बाहर सब प्रकार से व्याप्त हूँ । अतएव कल्याणकामी पुरुष को अनन्यमना होकर मेरी उपासना करनी चाहिए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का
पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

सोलहवाँ अध्याय

श्रीभवान् की विभूतियों का वर्णन

उद्धवजी ने श्रीभगवान् से कहा– प्रभो ! आप साक्षात् परब्रह्म हैं। आप अनादि एवं अनन्त हैं । आप सबों की सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं । ब्रह्मनिष्ठ वेदज्ञ पुरुष आपकी ही उपासना करते हैं । यद्यपि आप सबों में व्याप्त हैं; किन्तु माया मोहित जीव आपका साक्षात्कार नहीं कर पाते हैं । अतएव–

याः काश्च भूमौ दिविवैरसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते ।
ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदांघ्रिपद्मम् ।।
(भा० ११/१६/५)

प्रभो ! आप अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न हैं । पृथिवी, स्वर्ग, पाताल, दिशाओं तथा विदिशाओं में आपकी जो-जो विभूतियाँ हैं, आप उनका वर्णन करें । मैं आपके उन चरणों की वन्दना करता हूँ जो चरण तीर्थों को भी पवित्र बना देते हैं । उद्धवजी की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने कहा– उद्धव आपने जो प्रश्न किया है, उसी प्रश्न को अर्जुन ने भी मुझे महाभारत युद्धकाल में किया था । मैंने जो अर्जुन को बतलाया उसे ही आपको भी बतला रहा हूँ ।

उद्धवजी ! मैं सम्पूर्ण प्राणियो की आत्मा हूँ, हितैषी, सुहृद और नियामक हूँ । सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण हूँ, गतिशील पदार्थों की गति हूँ । अपने वश में करने वालों में काल हूँ, समस्त गुणवान पदार्थों का स्वाभाविक गुण हूँ । मैं ज्ञान वालों का ज्ञान हूँ । सूक्ष्म वस्तुओं में मैं जीव हूँ । मैं वेदों का अभिव्यक्ति स्थान हिरण्यगर्भ हूँ । मन्त्रों में त्रिमात्रात्मक प्रणव हूँ । छन्दों में मैं त्रिपदा गायत्री हूँ । अक्षरों में अकार हूँ, देवताओं में इन्द्र हूँ, आठ वसुओं में अग्नि हूँ, द्वादश आदित्यों में मैं विष्णु हूँ, एकादश रुद्रों में नीललोहित नामक रुद्र हूँ । मैं ब्रह्मर्षियों में भृगु तथा राजर्षियों में मनु हूँ । देवर्षियों

में नारद तथा गौओं में कामधेनु हूँ । सिद्धों में कपिल और पक्षियों में गरुड़ हूँ । प्रजापतियों में दक्ष और पितरों में अर्यमा हूँ । मैं दैत्यों में प्रह्लाद तथा नक्षत्रों में चन्द्रमा तथा लताओं में सोम हूँ । यक्षों एवं राक्षसों में मैं कुबेर हूँ । गजराजों में ऐरावत तथा अश्वों में उच्चैःश्रवा हूँ। दण्डधारियों में यम तथा सर्पों में वासुकि हूँ। नागराजों में मैं शेष हूँ तथा मृगों में मृगराज सिंह हूँ । मैं नदियों में गंगा तथा जलाशयों में समुद्र हूँ ।

इसी तरह पुरोहितों में वसिष्ठ तथा ब्रह्मिष्ठों में बृहस्पिति हूँ । मैं सेनापतियों में स्कन्द तथा सन्मार्गप्रवर्तकों में ब्रह्मा हूँ । मैं पञ्चमहायज्ञों में ब्रह्मयज्ञ तथा व्रतों में अहिंसा व्रत हूँ । इस तरह विस्तार पूर्वक अपने ऐश्वर्य का वर्णन करके श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा कि–

संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया
न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ।।

(भा० ११/१६/३९)

यदि मैं गणना करना चाहूँ तो परमाणुओं को गिन सकता हूँ किन्तु अपनी अनन्त विभूतियों को नहीं गिन सकता हूँ। यदि मेरे द्वारा रचित कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की ही गणना नहीं की जा सकती है तो मेरी विभूतियों की गणना कैसे संभव है? बस यह आप जानें कि जिसमें भी श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा तथा विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण प्राप्त हों वहीं मेरा अंश है।

मैने आपके प्रश्न का संक्षेप में उत्तर दिया किन्तु ये सबके-सब मन के विकार हैं, वाणी के विषय हैं । अतएव आप–

वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान् यच्छेन्द्रियाणि च ।
आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ।।

(भा० ११/१६/४२)

आप अपनी वाणी को स्वच्छन्द भाषण से रोकें, मन के संकल्प विकल्प को रोकें, प्राणों को वश में करें और इन्द्रियों का दमन करें । बुद्धि को सात्त्विक बनाएँ । ऐसा करने से पुनः इस जन्म-मरण रूप संसार में नहीं भटकना पड़ेगा । सात्त्विक बुद्धि के द्वारा मन एवं वाणी को वश में नहीं करने वाले योगी के तप, व्रत एवं दान क्षीण हो जाते हैं ।

तस्मान्मनोवचः प्राणान् नियच्छेन्मत्परायणः ।
मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ।।
(भा० ११/१६/४४)

अतएव मेरे भक्तों को चाहिए कि वे मेरे आश्रित होकर भक्ति सम्पनन बुद्धि के द्वारा वाणी, मन और प्राणों को संयमित करे । ऐसा करके वह कृतकृत्य हो जाता है, उसे कुछ भी करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता है।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य एवं गार्हस्थ्य धर्म का निरूपण

उद्धवजी ने श्री भगवान् से कहा–

यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः
वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि
यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत्
स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तत् समाख्यातुमर्हसि ।।
(भा० ११/१७/१-२)

कमल नयन भगवन् श्रीकृष्ण ! आपने पहले वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वालों के लिए तथा समस्त मनुष्यों के लिए उस धर्म का उपदेश किया जिससे आपकी भक्ति मिलती है । अब आप यह बतलाएँ कि मनुष्य किस प्रकार से अपने धर्म का अनुष्ठान करे, जिससे कि उसे आपकी भक्ति प्राप्त हो जाय । आपने पहले हंसावतार ग्रहण करके ब्रह्माजी को परम धर्म का उपदेश दिया था, किन्तु बहुत समय बीत जाने के कारण उसका लोप हो गया है । ब्रह्माजी की सभा में भी आज उस धर्म का उपदेश करने वाला कोई नहीं रह गया है । उस भागवत धर्म के प्रवर्तक, रक्षक और उपदेशक आप ही हैं । आपके इस

लीला के संवरण कर लेने के पश्चात् उस धर्म का उपदेश कौन करेगा? अतएव आप आपनी भक्ति प्रदान करने वाले धर्म का उपदेश करें और यह भी बतलाएँ कि उसका किस व्यक्ति को कैसे अनुष्ठान करना चाहिए।

शुकदेवजी कहते हैं कि उद्धवजी के प्रश्न को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक श्रीभगवान् ने कहा–

धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयस्करो नृणाम् ।
वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ।।

(भा० ११/१७/९)

उद्धवजी आपका प्रश्न धर्ममय है । इससे वर्णाश्रम धर्मावलम्बी मनुष्यों का परम कल्याण होता है । सत्य युग में सभी मनुष्यों का वर्ण हंस ही था । जन्म से ही सभी लोग कृतकृत्य होते थे इसलिए उस युग का नाम कृतयुग है। उस समय प्रणव ही वेद था । मैं ही वृषरूपधारी धर्म था । सभी तपस्वी पुरुष मेरी हंस रूप से उपासना करते थे । त्रेता युग में मेरे श्वास से ऋक, यजु एवं साम तीनों वेद प्रकट हुए और मैं यज्ञरूप से प्रकट हुआ । विराट् के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, ऊरू से वैश्य तथा पैरों से शूद्र वर्ण की उत्पत्ति हुई मैं विराट् पुरुष हूँ । मेरे हृदय से ब्रह्मचर्याश्रम, ऊरू स्थल से गार्हस्थ्याश्रम, वक्षःस्थल से वानप्रस्थ तथा मस्तक से संन्यासाश्रम की उत्पत्ति हुई ।

गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ।
वक्षःस्थानाद् वने वासो न्यासः शीर्षणि मे स्थितः ।।

(भा० ११/१७/१४)

सभी वर्णों में स्वभावानुसार कर्म भी भिन्न-भिन्न हैं– शम, दम, तपस्या, शौच, सन्तोष, क्षान्ति, ऋजुता, भगवद्भक्ति, दया तथा सत्य ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं । तेज, वल, धैर्य, वीरता, सहनशीलता, ब्राह्मणभक्ति आदि क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं । आस्तिकता, दानशीलता, दम्भहीनता, ब्राह्मणों की सेवा, धन संचय आदि वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं । ब्राह्मण, गौ आदि की निष्कपट भाव से सेवा करना शूद्रों का स्वाभाविक धर्म है । अपवित्र रहना, झूठ बोलना, चोरी करना अन्त्यजों के स्वाभाविक कर्म हैं ।

सभी वर्णों एवं सभी आश्रमों का स्वाभाविक धर्म है– अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, काम, क्रोध तथा लोभ से बचना । ब्राह्मण,

क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीनों वर्णों का यज्ञोपवीत संस्कार के द्वारा दूसरा जन्म होता है इसलिए ये द्विज कहलाते हैं । यज्ञोपवीत के पश्चात् ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह गुरुकुल में जाकर वेदाध्ययन करे । ब्रह्मचारी मौञ्जी मेखला, मृगचर्म, दण्ड, माला, यज्ञोपवीत तथा कमण्डलु धारण करे । वह स्नान, भोजन, होम तथा जप के समय मौन रहे । ब्रह्मचर्य का पालन करे, उसे एकाग्र चित्त से अग्नि, सूर्य आचार्य तथा वृद्धजनों की उपासना करनी चाहिए । मौन होकर सायंकाल एवं प्रातःकाल सन्ध्या वन्दन करना चाहिए । उसे आचार्य में परमात्मा बुद्धि रखना चाहिए, सायं-प्रातः भिक्षाटन करके उसे आचार्य को प्रदान करे और आचार्य की आज्ञा प्राप्त करके उसका उपभोग करे । वह हर प्रकार से आचार्य की सेवा तब तक करे जब तक कि उसका अध्ययन न पूरा हो । यदि वह मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक प्राप्त करना चाहे तो उसे आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहना चाहिए । ब्रह्चारी को स्त्रियों से किसी भी प्रकार का संसर्ग नहीं रखना चाहिए। वेदाध्ययन पूरा होने पर वह चाहे तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकता है । एक आश्रम के पश्चात् दूसरे आश्रम में प्रवेश करना चाहिए विपरीत क्रम से आश्रम परिवर्तन न करे ।

गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्बहेदजुगुप्सिताम् ।
यवीयसीं तु वयसा तां सवर्णामनुक्रमात् ।।

(भा० ११/१७/३९)

ब्रह्मचारी को यदि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना हो तो उसे अपने अनुरूप शास्त्रोक्त लक्षणों से सम्पन्न तथा अपने से कम उम्र की कन्या से विवाह करना चाहिए । वह अपने समान वर्ण की कन्या से विवाह करे । अथवा अपने से निम्नवर्ण की कन्या से विवाह कर सकता है । ब्राह्मण अध्यापन तथा यज्ञ कराकर ही जीविका चलाए, दान लेने से उसके तेज और तपस्या नष्ट होते हैं । जो ब्राह्मण शिलोञ्छ वृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करता है, वह बिना संन्यास लिए ही परमशान्ति को प्राप्त कर लेता है । जो लोग दुःखी ब्राह्मण का दुःख दूर करते हैं, उन जीवों का मैं उद्धार करता हूँ । राजा को चाहिए कि वह अपनी रक्षा तथा प्रजाओं की रक्षा स्वयं करे । ऐसा करने वाला इस संसार को त्यागने के पश्चात् इन्द्र पद को प्राप्त करता है ।

गृहस्थ को चाहिए कि वह प्रतिदिन वेदाध्ययन, ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, होम, भूतयज्ञ तथा अतिथि पूजन करे । उसे किसी भी व्यक्ति को कष्ट पहुँचाए बिना शास्त्रीय रीति से ही यज्ञ करना चाहिए । उसे कुटुम्ब में आसक्त नहीं होना चाहिए । सबों का संबन्ध शरीर रहने तक ही रहता है । उसे परिवार में अनासक्त भाव से रहना चाहिए । अहंकार ममकार से दूर रहना चाहिए ।

कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ।
तिष्ठेद् वनं वोपविशेत् प्रजावान् वा परिव्रजेत् ।।

(भा० ११/१७/५५)

भक्तिमान पुरुष को चाहिए कि वह गृहस्थोचित् शास्त्रीय विधि से कर्मों को करते हुए घर में ही रहे, यदि पुत्रवान् हो तो वन में चला जाय या संन्यास ग्रहण कर ले । जो गृहस्थ इस प्रकार से अपना जीवन नहीं बिताता है वह गृहासक्त होने के ही कारण आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

अठारहवाँ अध्याय

वानप्रस्थ एवं संन्यास धर्म का वर्णन

वानप्रस्थ आश्रम के धर्मों का वर्णन करते हुए श्रीभगवान् ने कहा—

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ।
वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ।।

(भा० ११/१८/१)

यदि गृहस्थ पुरुष वानप्रस्थ आश्रम को स्वीकार करना चाहे तो उसे चाहिए कि पत्नी को अपने पुत्रों के हाथ सौंप दे अथवा पत्नी को अपने साथ ही लेकर शान्त चित्त से अपनी आयु के तीसरे भाग को वन में व्यतीत करे । वह वन के कन्दमूल से ही अपने जीवन का निर्वाह

करे । वल्कल वस्त्र और मृगचर्म पहने । त्रिकालसन्ध्या करे और पृथिवी पर सोए। तपोमय जीवन बिताए। अपने भोजन के लिए वह स्वयं ही कन्दमूल फल को लाए किसी दूसरे पर आश्रित न रहे । नीवार आदि वनैले अन्न से ही चरु-पुरोडाश आदि बनाकर आग्रायण आदि वैदिक कृत्यों को सम्पन्न करे । वह चातुर्मास्य, दर्श एवं पौर्णमास आदि यागों को करे ।

एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धामनि सन्ततः ।
मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ।।
(भा० ११२१८/९)

इस तरह घोर तपस्या करते-करते उसके शरीर का मांस जब सूख जाता है तब उसके शरीर की नसें दीखने लगती हैं । इस तपस्या के फलस्वरूप शरीर त्यागकर पहले तो वह ऋषियों के लोक में जाता है और उसके पश्चात् मेरे लोक में आता है । उसे देवलोक और ब्रह्मलोक की प्राप्ति की कामना से तप नहीं करना चाहिए । उसे निष्काम होकर यह तपस्या करनी चाहिए ।

वानप्रस्थी पुरुष जब बुढ़ापे के कारण अपने नियमों का पालन करने में असमर्थ हो जाय तो वह अपने अन्तःकरण में अग्नियों को स्थापित कर अग्नि में प्रवेश कर जाय ।

जब वानप्रस्थाश्रमी को लौकिक एवं पारलौकिक समस्त विषयों से विराग हो जाय तो उसे चाहिए कि वह विधिपूर्वक यज्ञाग्नियों का परित्याग करके संन्यास ले ले ।

विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ।
विघ्नान् कुर्वन्त्ययं ह्यस्मान् आक्रम्य समियात् परम् ।।
(भा० ११/१८/१४)

ब्राह्मण जब संन्यास ग्रहण करने लगता है, तब देवता आदि उसकी पत्नी-पुत्र आदि का रूप धारण करके इसलिए विघ्न डालते हैं कि यह तो हम लोगों को भी लांधकर परमात्मा को प्राप्त करने जा रहा है । संन्यासी लंगोटी के ऊपर इतना ही बड़ा कपड़ा लपेटे कि उससे उसकी लंगोटी ढंक जाय । अपने पास केवल दण्ड एवं कमण्डलु धारण करे । देखकर चले, छानकर जल पीए, सत्य बोले और कोई भी काम सोच-विचार कर करे ।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वदेद् वाचं मनः पूतं समाचरेत् ।।
(भा० ११/१८/१६)

वह मौन रहे, निश्चेष्ट रहे तथा प्रणायाम करे । वह पतित के घर से भिक्षा न ले । किन्हीं सात घरों से जितनी भिक्षा मिल जाय उतने से ही सन्तुष्ट हो जाय । भिक्षान्न को गाँव के बाहर जाकर जल से शुद्ध करके शस्त्रोक्त विधि से दान देकर अवशिष्ट भिक्षान्न को खा ले । बचाकर न रखे । अनासक्त रहकर, मन तथा इन्द्रियों को वश में करके समदर्शी तथा आत्मनिष्ट रहे । मेरा ध्यान करे और एकान्त में निवास करे । वह मन तथा इन्द्रियों को अपने वश में रखे तथा भगवद् भावना से भरकर पृथिवी पर विचरण करे । केवल भिक्षा के लिए ही गाँवों में जाय । ज्ञानी पुरुष जड़ एवं बाल के समान आचरण करे । पागल के समान बोले । वह कर्मकाण्ड भाग की व्याख्या न करे, पाखण्ड न करे। शुष्कवाद-विवाद में भाग न ले । न तो किसी से उद्विग्न होए और न किसी को उद्विग्न करे । वह शरीर के लिए किसी से वैर न करे । सबों को परमात्मात्मक माने । भिक्षा नहीं मिलने पर दुखी न होए और भिक्षा मिल जाने पर प्रसन्न न हो । भोजन जैसा मिले उससे प्रसन्न रहे। वह अनासक्त होकर शौच आदि का पालन करे ।

दुखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ।
अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ।।
(भा० ११/१८/३८)

यदि जितेन्द्रिय पुरुष को यह ज्ञान हो जाय कि समस्त भोगों का परिणाम दुःख ही है तो उसे विरक्त हो जाना चाहिए । जिसे मेरी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान नहीं है, उसे भगवन्निष्ठ सदाचार्य की शरणागति करनी चाहिए। वह गुरु में श्रद्धा भक्ति रखे । जब तक उसे ज्ञान की प्राप्ति न हो जाय तब तक आचार्य को परमात्मा के समान समझे और उनकी सेवा करे । जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है, वह यदि त्रिदण्डी संन्यासी का वेष धारण कर पेट पालता है, वह समस्त देवताओं के साथ-साथ मुझे भी ठगता है । उसके लोक-परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं । संन्यासी का मुख्य धर्म शान्ति और अहिंसा है । वानप्रस्थी का

मुख्य धर्म तपस्या और भगवद्भक्ति है । गृहस्थ का मुख्य धर्म प्राणियों की रक्षा तथा यज्ञादि है । ब्रह्मचारी का मुख्य धर्म-आचार्य की सेवा करना है । सबों को मेरी उपासना करनी चाहिए । वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले को मेरी अविचल भक्ति प्राप्त होती है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत् कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उन्नीसवाँ अध्याय

भक्तिज्ञान आदि साधनों का वर्णन

श्रीउद्धवजी को तत्वोपदेश करते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

यो विद्याश्रुतसम्पन्नो आत्मवान् नानुमानिकः ।
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ।।
(भा० ११/१९/१)

जो पुरुष शास्त्रों के श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करके इस सम्पूर्ण दृश्यमान प्रपञ्च को मायिक मानता है । जिसका निश्चय शुष्क अनुमान पर आश्रित नहीं है उसे अपने ज्ञान को मुझमें संन्यस्त कर देना चाहिए । ज्ञानी पुरुष का अभीष्ट पदार्थ मैं ही हूँ । ज्ञानी पुरुष केवल मुझसे प्रेम करता है अतएव ज्ञानी पुरुष मुझे सबसे प्रिय हैं । अतएव आप ज्ञान के साथ अपने स्वरूप को जानकर मेरा भजन करो ।

ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ।
सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ।।
(भा० ११/१९/६)

मुनियों ने ज्ञान-विज्ञान रूपी यज्ञ के द्वारा अपनी आत्मा के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान मुझ सर्वयज्ञपति परमात्मा की आराधना करके मोक्ष प्राप्त कर लिया । यह शरीर तो मायिक एवं नश्वर है । श्रीभगवान् की वातें सुनकर उद्धवजी ने कहा–

ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथेतदद्वैराग्य विज्ञानयुतं पुराणम् ।
आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद् विमृग्यम् ।।
(भा० ११/१९/८)

विश्वरूप परमात्मन् ! आप विश्व के स्वामी हैं । आपका यह वैराग्य सम्पन्न विशुद्ध एवं विपुल ज्ञान जिस तरह से सुदृढ हो सके उस प्रकार से आप मुझे बतलाएं । जिसे महापुरुष प्राप्त करना चाहते हैं आप अपने उस भक्तियोग का मुझे उपदेश करें । इस संसार के सन्ताप से रक्ष केवल आपके चरणों की कृपा से ही संभव है । मैं संसार सागर में पड़ा हूँ । मेरी विषयों की तृष्णा समाप्त नहीं हो रही है । आप उपदेश देकर मेरा उद्धार करें ।

उद्धवजी की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने कहा कि जब महाभारत युद्ध समाप्त हो चुका था, उस समय शोक संतप्त महाराज युधिष्ठिर ने यही प्रश्न पितामह से किया था । उस समय भीष्मजी ने ज्ञान-वैराग्यपूर्ण मोक्ष धर्म का उपदेश युधिष्ठिर को दिया था । मैं उसी को आपको सुना रहा हूँ ।

नवैकादश पञ्चत्रीन् भावान् भूतेषु येन वै ।
ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ।।
(भा० ११/१९/१४)

जिस ज्ञान से प्रकृति, पुरुष, महत् तत्त्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्राएँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, मन, पञ्च महाभूत, तथा तीन गुण सब मिलाकर अट्ठाइस तत्त्वों को ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त जगत् में प्रतीत होता है तथा उन सबों में एक परमात्मा की अनुगत प्रतीति होती है । यह ज्ञान परोक्ष ज्ञान है । अपरोक्षज्ञान वह है जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् में परमात्मकता की प्रतीति होती है । श्रुति, प्रत्यक्ष ऐतिह्य तथा अनुमान इन चारों प्रमाणों से संसार नश्वर प्रतीत होता है, इसलिए ज्ञानी पुरुष इस संसार से विरक्त हो जाता है । वह जानता है कि सांसारिक सुखों के ही समान, यज्ञादिजन्य स्वर्गादि सुखों का भी परिणाम दुःख में ही होता है । अतएव कल्याणकामी पुरुष को मेरी भक्ति ही प्राप्त करना चाहिए । इसके लिए वह मेरी कथाओं में श्रद्धा रखे, मेरे दिव्य गुणों, लीलाओं और नामों का संकीर्तन करे, मेरी स्तुति करे, मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम करे, मेरे भक्तों का मेरे ही समान समादर करे, मेरी ही प्रसन्नता के लिए जप, तप, दान होम इत्यादि करे ।

एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।
मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ।।
(भा० ११/१९/२४)

जो मनुष्य इस प्रकार से धर्माचरण करता है, मेरे लिए आत्मनिवेदन कर देता है; उसके अन्तःकरण मे मेरी भक्ति उत्पन्न हो जाती है । इस तरह से उसको सब कुछ प्राप्त हो जाता है । वही धर्म है जिससे मेरी भक्ति मिले, वही ज्ञान ज्ञान है जिससे सर्वत्र परमात्मा की आत्मा रूप से व्याप्ति की प्रतीति हो । विषयों से विराग हो जाने को वैराग्य कहते हैं तथा, अणिमा आदि को ऐश्वर्य कहते हैं ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बीसवाँ अध्याय

उद्धवजी को ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग का उपदेश

उद्धवजी ने श्रीभगवान् से कहा—

विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ।
अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ।।
(भा० ११/२०/१)

भगवन् ! आपकी आज्ञा ही वेद है । वह कुछ कर्मों का विधान करता है तथा कुछ कर्मों क निषेध करता है । भगवन् कमलनयन ! इन विधियों तथा निषेधों का आधार कर्मों के गुण एवं दोष ही तो हैं । वर्णाश्रम भेद, वर्णसांकर्य, कर्मानुकूल द्रव्य, देश एवं काल, स्वर्ग-नरक आदि का ज्ञान भी वेदों से होता है । वेद ही देवों तथा पितृगणों के नेत्र का काम करता है । इस तरह वेद अनेक प्रकार के भेदों का वर्णन करता है किन्तु वही भेद का निषेध भी करता है । अब प्रश्न यह है कि आपकी किस वाणी को अपनाया जाय ।

उद्धवजी की शंका का समाधान करते हुए श्रीभगवान् ने कहा— कि मैने मनुष्यों के कल्याणार्थ कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग इन तीनों सर्वोत्तम साधनों का उपदेश दिया है । जो लोग कर्म एवं कर्म के

फलों से विरक्त होकर उनका त्याग कर चुके हैं, वे ज्ञानयोग के अधिकारी हैं । जिन लोगों का कर्मों तथा उनके फलों से वैराग्य नहीं हुआ है, वे कर्मयोग के अधिकारी हैं । जिन लोगों के अन्तःकरण में किसी प्राचीन अदृष्ट के कारण मेरे प्रति तथा मेरी लीलाओं के प्रति भक्ति उत्पन्न हो गई है, वे लोग भक्तियोग के अधिकारी हैं ।

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथा श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ।।
(भा० ११/२०/९)

अर्थात् मनुष्यों को विधि एवं निषेधशास्त्र के अनुसार तब तक कर्मों को करते रहना चाहिए जब तक कि कर्मों तथा उनके फलों के प्रति वैराग्य न हो जाय अथा मेरी (श्रीभगवान् की) कथा आदि के श्रवण आदि में श्रद्धा नहीं उत्पन्न हो जाय ।

यह मानव शरीर एक वृक्ष के समान है । उसी में जीव रूपी पक्षी का निवास है । इस शरीर वृक्ष को यम दूत प्रतिक्षण काट रहे हैं, यह जानकर जीव रूपी पक्षी को इसका परित्याग करके मुक्ति प्राप्त कर लेना चाहिए ।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ।।
(भा० ११/२०/१७)

यह मानव शरीर समस्त सुकर्मों के फलों की प्राप्ति का साधन है । यह अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी सुलभ हुआ है । इस संसार रूपी सागर को पार करने के लिए यह सुदृढ़ नौका है । शरण ग्रहण करने मात्र से गुरुदेव इसका केवट बनकर पतवार का सञ्चालक बन जाते हैं। स्मरण करने मात्र से प्रसन्न होकर मैं अनुकूल वायु के समान इसे लक्ष्य की ओर ले जाने लगता हूँ । इतनी सुविधा होने पर भी जो व्यक्ति अपना आत्मोज्जीवन इस शरीर से नहीं कर सकता तो उसका अधःपतन हो जाता है । जब मनुष्य संसार से उदास हो जाय तो उसे योगरत होकर मुझमें अपने मन को लगा देना चाहिए । मन के चञ्चल होने पर बड़ी सावधानी से उसको पुनः पुनः मुझमें लगाना चाहिए । मन, इन्द्रिय एवं प्राण को क्षण भर के लिए भी स्वतन्त्र न छोड़ो । सदा अपने वश में रखना चाहिए । हर प्रकार से मन को अपने वश में रखना ही परम योग है । संसार से उद्विग्न पुरुष को आचार्य के

सन्निकट में अपने स्वरूप आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । ऐसा करने से देहात्मभ्रम इत्यादि का विनाश हो जाता है ।

यदि कुर्यात् प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ।
योगेनैव दहेदंहो नान्यत् तत्र कदाचन ।।

(भा० ११/२०/२५)

योगी पुरुष स्वभावतः कोई पाप कर्म नहीं करता है । यदि प्रमाद वश कोई पाप हो भी जाय तो उसको योग के द्वारा ही भस्म कर देना चाहिए उसके लिए चन्द्रायणादि प्रायश्चित कर्मों को न करे । मनुष्य को अपने अधिकार के अनुसार ही कर्मों को करना चाहिए। विधि-निषेध शास्त्र का तात्पर्य विषयों की असक्ति के परित्याग में है । कर्म स्वभावतः अशुद्ध हैं । शास्त्र उनका नियमन करता है । सांसारिक विषयोपभोग को दुःख रूप से जान लेने के पश्चात् भी विषयोपभोग यदि नहीं छूट रहा हो तो मन ही मन विषयोपभोग के प्रति घृणा की भावना करनी चाहिए और दृढ़ विश्वास के साथ श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करना चाहिए । इस तरह से जब जीव के हृदय में मैं प्रवेश कर जाता हूँ तो उसकी कामासक्ति समाप्त हो जाती है । इस तरह से–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।

(भा० ११/२०/३०)

जब जीव को मेरा साक्षात्कार हो जाता है तब उसके हृदय की ग्रन्थि छूट जाती है, उसके सारे संशय दूर हो जाते हैं तथा उसके समस्त कर्म विनष्ट हो जाते हैं। मानव का सबसे कल्याणकारी भक्ति ही है, ज्ञान और कर्म नहीं । मेरा भक्त अनायास ही स्वर्ग, अपवर्ग सब कुछ भक्ति के बल से ही प्राप्त कर लेता है । मेरी भक्ति तो उसी व्यक्ति को प्राप्त होती है जो निष्काम होता है, निरपेक्ष होता है । वह किसी भी वस्तु की कामना करता ही नहीं । मेरे जो समदर्शी भक्त होते हैं उनका पुण्य-पाप से भी संबन्ध नहीं होता है । वे निर्लेप रहते हैं। मेरे द्वारा उपदिष्ट मार्ग को अपनाने वाले भक्तजन मेरे कल्याण-स्वरूप परमधाम को प्राप्त करते हैं ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इक्कीसवाँ अध्याय

गुणदोष व्यवस्था का रहस्य

गुणदोष व्यवस्था का निरूपण प्रारम्भ करते हुए श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा–

य एतान् मत्पथे हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ।
क्षुद्रान् कामान् चलैः प्राणैः जुषन्तः संसरन्ति ते ।।
(भा० ११/२१/१)

मेरे द्वारा उपदिष्ट मेरी प्राप्ति के साधनभूत तीन मार्ग हैं– कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग । जो इनको छोड़कर चञ्चल इन्द्रियों के द्वारा क्षुद्र भोगों को भोगते रहते हैं वे बार-बार संसार चक्र में पड़ते रहते हैं । मनुष्य को अपने-अपने अधिकार के अनुसार धर्म में दृढ़निष्ठा रखनी चाहिए । धर्म में दृढ़निष्ठा रखना ही गुण कहलाता है और अनधिकार चेष्टा करना ही दोष है । गुण एवं दोष की व्यवस्था अधिकार के अनुसार होती है वस्तु के अनुसार नहीं। वस्तु के एक समान रहने पर भी शुद्धि तथा अशुद्धि का विधान किया गया है उसका उद्देश्य वस्तु का ठीक-ठीक परीक्षण है, जिससे कि स्वाभाविक प्रवृत्ति को नियन्त्रित किया जा सके । ऐसा करने से धर्म का निर्वाह होता है, व्यवहार चलता है तथा जीवन यात्रा चलती है तथा मानसिक प्रवृत्ति पर शास्त्रीय अंकुश लगता है । समस्त शरीरों के उपादान कारण पञ्चभूत हैं । अतएव सबों का शरीर एक ही तरह का है । शरीर की समानता होने पर भी वेदों ने वर्ण एवं आश्रमों का विभाग वासनाजन्य प्रवृत्तियों पर अंकुश चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिए किया है । देश-काल आदि पदार्थों के गुणदोषों का विधान कर्मों के नियमनार्थ हैं, जिससे लोगों की उच्छृंखल प्रवृत्ति न हो सके ।

अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ।
कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम् ।।
(भा०११/२१/८)

जिस देश में कृष्णसार मृग नहीं होते तथा जहाँ के लोग ब्राह्मण भक्त नहीं होते हैं । कृष्णसार मृग युक्त भी कीकट देश का वही भाग पवित्र है जहाँ संत पुरुष रहते हैं । समय वही पवित्र है जिसमें कर्म किए जा सकें तथा कर्मोपयोगी सामग्री मिल सके । वस्तु की शुद्धि ब्राह्मणों के आशीर्वचन से हो जाती है । आचार्य के मुख से सुनकर हृदयंगम कर लेने से मन्त्र की शुद्धि होती है । भगवान् को समर्पित कर देने से कर्म की शुद्धि होती है । देश, काल, पदार्थ, मन्त्र एवं कर्म इन छह के शुद्ध होने से धर्म होता है और अशुद्ध होने पर अधर्म होता है । यदि कोई पतित व्यक्ति पतित का आचरण करता है तो उसे पाप नहीं लगता किन्तु श्रेष्ठ व्यक्ति द्वारा वैसा आचरण किए जाने पर पाप होता है।

यतो यतो निवर्तेत विमुच्येत ततस्ततः ।
एष धर्मो नृणां क्षेमः शोक-मोह-भयापहः ।।

(भा० ११/२१/१८)

मनुष्य का मन जैसे-जैसे दोषों और गुणों से उपरत होता है वह वैसे ही वैसे वस्तुओं के बन्धन से मुक्त होता है । यह निवृत्ति का मार्ग ही मानव के लिए कल्याणकारी है । उसी से उसके शोक, मोह तथा भय दूर होते हैं । मनुष्य जब विषयों में गुण बुद्धि करता है तो उसकी उस वस्तु में आसक्ति बढ़ती है, उसकी संग्रहेच्छा होती है । फिर उसकी कामना होती है । कामना के बाधित होने पर कलह होता है । उससे क्रोध उत्पन्न होता है । क्रोध से अज्ञान उत्पन्न होता है । अज्ञान से मनुष्य की सोचने की शक्ति समाप्त हो जाती है । फिर तो मनुष्य पशु के सदृश हो जाता है । वह अस्तित्वहीन हो जाता है । उसकी स्थिति मूर्छित और मुर्दे के समान होती है । विषयों का चिन्तन करते-करते वह वृक्ष के समान जड़ हो जाता है और वह आत्मवञ्चित हो जाता है ।

फलश्रुतिरियं पुंसां न श्रेयो रोचनं परम् ।
श्रेयो विवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ।।

(भा० ११/२१/२३)

स्वर्गादि फलों का प्रतिपादन करने वाली श्रुति स्वर्गादि को परम पुरुषार्थ नहीं बतलाती है अपितु उसका उद्देश्य परमात्मपराङ्मुख मनुष्य के अन्तःकरण की शुद्धि पूर्वक विहित कर्मानुष्ठान द्वारा जीवों का परम

कल्याण करना है । जैसे बच्चों को दवा खिलाने के लिए उनको माता-पिता किसी वस्तु का लालच देते हैं, उसी तरह स्वर्गादि का उपदेश तो प्ररोचना मात्र है । लौकिक एवं पारलौकिक सभी फलों में आसक्ति दुःखप्रद है । अतएव ज्ञानी पुरुष उन सबों के लोभ में नहीं पड़ता है। वेदों के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

वेदा ब्रह्मात्मविषयाः त्रिकाण्डविषया इमे ।
परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ।।
(भा० ११/२१/३५)

वेदों के तीन काण्ड हैं– उपासनाकाण्ड, ब्रह्मकाण्ड और कर्मकाण्ड और तीनों के प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म और आत्मा हैं । वेदों के द्रष्टा ऋषि भी किसी अर्थ का प्रतिपादन परोक्षरूप से करते हैं और मुझे भी परोक्षवाद ही प्रिय है । शब्द ब्रह्म वेद दुर्बोध है, और समुद्र के समान दुर्विग्राह्य है । वेदों के अभिप्राय को सामान्य व्यक्ति नहीं समझ पाता । अतएव वेदों के तीन काण्डों का रहस्य मैं जानता हूँ । अतएव आप समझें ।

मां विधतेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ।
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थय मां भिदाम् ।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ।।
(भा० ११/२१/४३)

कर्मकाण्ड की श्रुतियाँ मेरा ही विधान करती हैं, उपासना काण्ड में वे मुझे ही उपास्य बतलाती हैं तथा ज्ञानकाण्ड में वे विभिन्न पदार्थों का वर्णन करके उनकी स्वतन्त्र सत्ता का निषेध करती हैं । वे मेरा ही आश्रय लेकर अनेक भेदों का प्रतिपादन करके, सम्पूर्ण भेदों को मायाजन्य बतलाकर उनकी पारमार्थिकता का निषेध करके शान्त हो जाती हैं । यही सम्पूर्ण वेदों का सार है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

बाइसवाँ अध्याय

प्रकृतिपुरुष विवेक

उद्धवजी ने श्रीभगवान् से पूँछा कि तत्त्वों की संख्या कितनी है? आपने अभी-अभी अट्ठाइस तत्त्वों को बतलाया है । कुछ लोग छब्बीस तत्त्व मानते हैं, कुछ पच्चीस, कुछ सात, कुछ लोग नव, कुछ लोग छह, कुछ लोग चार, कुछ लोग ग्यारह, कुछ लोग सत्रह, कुछ लोग सोलह, तथा कुछ लोग तेरह । इनमें से कौन सी संख्या वास्तविक मानी जाय ? यह आप बतलाएँ । उद्धवजी के प्रश्न का समाधान करते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ।
मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ।।

(भा० ११/२२/४)

उद्धवजी तत्त्वों के विषय में वेदज्ञ ब्राह्मण जो कुछ भी कहते हैं वह सब ठीक है क्योंकि सभी तत्त्वों में सभी तत्त्व मिले हुए हैं । मेरी माया को स्वीकार करने वाले सब कुछ सिद्ध कर सकते हैं । लोग मेरी माया की शक्ति को नहीं जानने के कारण परस्पर मे विवाद करते हैं और अपनी ही बात सिद्ध करना चाहते हैं । जीव को जब शम तथा दम की प्राप्ति हो जाती है तब यह सारा विवाद समाप्त हो जाता है । चूकि एक तत्त्व दूसरे में अनुप्रविष्ट है अतएव उनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है ।

तत्त्वों की संख्या छब्बीस मानने वाले कहते हैं कि जीव आदिकाल से अविद्या ग्रस्त हैं । अतएव उसको आत्मज्ञान कराने के लिए सर्वज्ञ परमात्मा को स्वीकार करना आवश्यक है । इस तरह चतुर्विंशति तत्त्वात्मिका प्रकृति के साथ जीव और परमात्मा को मिला देने से तत्त्वों की संख्या छब्बीस हो जाती है ।

पच्चीस तत्त्व मानने वालों का कहना है कि जीव तथा ईश्वर में

कल्याण करना है । जैसे बच्चों को दवा खिलाने के लिए उनको माता-पिता किसी वस्तु का लालच देते हैं, उसी तरह स्वर्गादि का उपदेश तो प्रोचना मात्र है । लौकिक एवं पारलौकिक सभी फलों में आसक्ति दुःखप्रद है । अतएव ज्ञानी पुरुष उन सबों के लोभ में नहीं पड़ता है। वेदों के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए श्रीभगवान् ने कहा—

वेदा ब्रह्मात्मविषयाः त्रिकाण्डविषया इमे ।
परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ।।
(भा० ११/२१/३५)

वेदों के तीन काण्ड हैं— उपासनाकाण्ड, ब्रह्मकाण्ड और कर्मकाण्ड और तीनों के प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म और आत्मा हैं । वेदों के द्रष्टा ऋषि भी किसी अर्थ का प्रतिपादन परोक्षरूप से करते हैं और मुझे भी परोक्षवाद ही प्रिय है । शब्द ब्रह्म वेद दुर्बोध है, और समुद्र के समान दुर्विग्राह्य है । वेदों के अभिप्राय को सामान्य व्यक्ति नहीं समझ पाता । अतएव वेदों के तीन काण्डों का रहस्य मैं जानता हूँ । अतएव आप समझें ।

मां विधतेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ।
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थय मां भिदाम् ।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ।।
(भा० ११/२१/४३)

कर्मकाण्ड की श्रुतियाँ मेरा ही विधान करती हैं, उपासना काण्ड में वे मुझे ही उपास्य बतलाती हैं तथा ज्ञानकाण्ड में वे विभिन्न पदार्थो का वर्णन करके उनकी स्वतन्त्र सत्ता का निषेध करती हैं । वे मेरा ही आश्रय लेकर अनेक भेदों का प्रतिपादन करके, सम्पूर्ण भेदों को मायाजन्य बतलाकर उनकी पारमार्थिकता का निषेध करके शान्त हो जाती हैं । यही सम्पूर्ण वेदों का सार है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बाइसवाँ अध्याय

प्रकृतिपुरुष विवेक

उद्धवजी ने श्रीभगवान् से पूँछा कि तत्त्वों की संख्या कितनी है? आपने अभी-अभी अट्ठाइस तत्त्वों को बतलाया है । कुछ लोग छब्बीस तत्त्व मानते हैं, कुछ पच्चीस, कुछ सात, कुछ लोग नव, कुछ लोग छह, कुछ लोग चार, कुछ लोग ग्यारह, कुछ लोग सत्रह, कुछ लोग सोलह, तथा कुछ लोग तेरह । इनमें से कौन सी संख्या वास्तविक मानी जाय ? यह आप बतलाएँ । उद्धवजी के प्रश्न का समाधान करते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ।
मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ।।
(भा० ११/२२/४)

उद्धवजी तत्त्वों के विषय में वेदज्ञ ब्राह्मण जो कुछ भी कहते हैं वह सब ठीक है क्योंकि सभी तत्त्वों में सभी तत्त्व मिले हुए हैं । मेरी माया को स्वीकार करने वाले सब कुछ सिद्ध कर सकते हैं । लोग मेरी माया की शक्ति को नहीं जानने के कारण परस्पर मे विवाद करते हैं और अपनी ही बात सिद्ध करना चाहते हैं । जीव को जब शम तथा दम की प्राप्ति हो जाती है तब यह सारा विवाद समाप्त हो जाता है । चूकि एक तत्त्व दूसरे में अनुप्रविष्ट है अतएव उनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है ।

तत्त्वों की संख्या छब्बीस मानने वाले कहते हैं कि जीव आदिकाल से अविद्या ग्रस्त हैं । अतएव उसको आत्मज्ञान कराने के लिए सर्वज्ञ परमात्मा को स्वीकार करना आवश्यक है । इस तरह चतुर्विंशति तत्त्वात्मिका प्रकृति के साथ जीव और परमात्मा को मिला देने से तत्त्वों की संख्या छब्बीस हो जाती है ।

पच्चीस तत्त्व मानने वालों का कहना है कि जीव तथा ईश्वर में

अणुमात्र भी भेद नहीं है । अतएव दोनों में भेद नहीं मानना चाहिए । रही ज्ञान की बात तो वह प्रकृति का गुण है । सत्त्व, रज एवं तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है । इन्हीं गुणों के द्वारा जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं । यहाँ पर सत्त्व को ही ज्ञान, रजस को कर्म तथा तमस को अज्ञान माना जाता है । अतएव तत्त्व पच्चीस ही हैं । यदि तीनों गुणों को प्रकृति से पृथक मान लिया जाय तो तत्त्वों की संख्या अट्ठाइस हो जाती है । उन तीनों से अतिरिक्त पच्चीस तत्त्व हैं, पुरुष, प्रकृति, महान् अहंकार, पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच विषय तथा मन ।

तत्त्वों की संख्या सात स्वीकार करने वाले मानते हैं कि पञ्चमहाभूत ही हैं । इनका साक्षी जीव तथा उन सबों का आधार परमात्मा मिलकर सात तत्त्व हैं । उन्हीं से देह, इन्द्रिय एवं प्राण होते हैं । छह तत्त्व मानने वाले पञ्चमहाभूत तथा परमात्मा मात्र को तत्त्व मानते हैं इन्हीं से जगत् की सृष्टि होती है । चार तत्त्व मानने वालों के अनुसार पृथिवी, जल, तेज तथा परमात्मा मिलकर चार ही तत्त्व हैं । सत्रह तत्त्व मानने वालों के अनुसार पञ्चचमहाभूत, पञ्चतन्मात्राएँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ आत्मा एवं मन ये ही तत्त्व हैं । सोलह तत्त्व मानने वाले आत्मा में ही मन का समावेश कर लेते हैं । तेरह तत्त्व मानने वाले पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, आत्मा, मन और परमात्मा को तत्त्व मानते हैं । एकादश तत्त्व मानने वाले पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ तथा आत्मा को तत्त्व मानते हैं । नव तत्त्वों को मानने वाले पञ्चमहाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार और आत्मा को तत्त्व मानते हैं । अतएव तत्त्वज्ञानी की दृष्टि में सभी मत ठीक हैं ।

इसके पश्चात् उद्धवजी ने पूँछा कि पृकृति एवं पुरुष परस्पर में पृथक् हैं पर इतने घुल-मिल गए हैं कि इनकी स्पस्ट प्रतीति नहीं होती इनका पार्थक्य कैसे हो? श्रीभगवान् ने कहा–

> प्रकृतिः पुरुषश्चैव विकल्पः पुरुषर्षभ ।
> एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ।।
>
> (भा० ११/२२/२९)

प्रकृति तथा पुरुष में अत्यन्त भेद है । प्राकृतिक जगत् में जन्म मरण, वृद्धि, ह्रास आदि विकार होते रहते हैं । जगत् प्राकृतिक क्षोभ

से बना है । मेरी त्रिगुणात्मिका माया की सृष्टि के विस्तार का आधार है । किन्तु इसके तीन भेद किए जाते हैं

आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक । जैसे– चक्षुरिन्द्रिय आध्यात्म है, उसका विषय रूप अधिभूत है तथा उसका अधिष्ठाता सूर्य देवता का अंश अधिदैव है । ये तीनों परस्पर में सापेक्ष हैं किन्तु आकाशस्थित सूर्यमण्डल स्वतः सिद्ध एवं मुक्त है । इस तरह तीनों प्रकार की सृष्टियों का साक्षी आत्मा उनसे परे हैं । आत्मा ही सबों का प्रकाशक है । प्रकृति से महान् उत्पन्न होता है, उससे अहंकार उत्पन्न होता है । अतएव गुणों के क्षोभ से उत्पन्न होने वाला अहंकार एक प्राकृतिक विकार है । अहंकार तीन प्रकार का होता है– सात्त्विक, राजस एवं तामस । सम्पूर्ण विवादों का मूल भेददृष्टि है ।

इसके पश्चात् उद्धवजी ने पूँछा कि आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में कैसे जाता है ? श्रीभगवान् ने कहा–

मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् ।
लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ।।
(भा० ११/२२/३६)

मानव का मन कर्म संस्कारमय होता है । उन संस्कारों के अनुसार भोग प्राप्त करने के लिए उसके साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ लगी रहती हैं । इसी को लिङ्ग शरीर कहते हैं । यही कर्मानुसार एक शरीर से दूसरे शरीर में तथा एक लोक से दूसरे लोक में जाता है । आत्मा उससे भिन्न है । फिर भी वह लिङ्ग शरीर का अनुसरण करता है । कर्म संस्कार संस्कृत मन विषयों में लीन हो जाता है। उसे देवादि शरीर में अत्यधिक तल्लीनता के कारण पूर्व शरीर का स्मरण भी नहीं रहता है। भगवान् ने कहा–

निषेकगर्भजन्मानि वाल्य-कौमार-यौवनम् ।
वयो मध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ।।
(भा० ११/२२/४६)

गर्भाधान, गर्भबुद्धि, जन्म, बाल्यकाल, कुमारावस्था, युवावस्था, मध्यावस्था, बुढ़ापा तथा मृत्यु; ये शरीर की नव अवस्थाएँ होती हैं । अज्ञानी जीव शरीर को ही आत्मा मान कर भटकता रहता है और ज्ञान होने पर उसे त्याग भी देता है । वास्तविकता यह है कि

आत्मा और शरीर परस्पर में अत्यन्त भिन्न हैं । संसार में भटकता हुआ जीव अपने कर्मों के अनुसार देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियों में जाता है । यद्यपि भोगे जाने वाले विषय सत्य नहीं हैं किन्तु विषयों का ही सदा चिन्तन करते रहने से जन्म-मृत्यु रूपी संसार चक्र नहीं निवृत्त होता है । ये इन्द्रियाँ कभी भी तृप्त नहीं होने वाली हैं अतएव विषयो को मत भोगो, अज्ञानी पुरुषों द्वारा सताए जाने पर भी विचलित मत होओ तभी संसार चक्र से निकल सकोगे ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का बाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तेइसवाँ अध्याय

तितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास

श्रीशुकदेवजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने उद्धवजी की प्रशंसा करके कहा कि दुष्टों के वाग्वाणों से मनुष्य का हृदय विंध जाता है । उसे बड़ा ही कष्ट होता है । इसके विषय में एक इतिहास है । उसे मैं सुना रहा हूँ । किसी भिक्षुक को दुष्टों ने बहुत सताया किन्तु उसे वह अपने पूर्व जन्म का पाप समझकर जो कहा वही इतिहास है ।

प्राचीन काल में उज्जैन में कोई ब्राह्मण रहता था । खेती व्यापार आदि करके उसने बहुत बड़ी सम्पत्ति एकत्रित कर ली किन्तु वह महा कंजूस, लोभी और क्रोधी था । उसने जीवन में अपने बान्धवों तथा अतिथियों का वाणी से भी सत्कार नहीं किया । वह अकेले अपने घर में रहता था । उसकी कृपणता तथा दुष्टता से दुःखी होकर कोई भी उसके अनुकूल व्यवहार नहीं करता था । स्त्री, पुत्र, बान्धव सब उसके विपरीत रहते थे । उसके लोक और परलोक बिगड़ चुके थे । वह किसी यक्ष के समान धन की रखवाली करता था । बहुत दिनों के पश्चात् पञ्चमहायज्ञ के अधिकारी देवता उससे नाराज हो गये । उन देवताओं का तिरस्कार करने से उसके सामने ही उसकी सारी सम्पत्ति विनष्ट हो गयी । कुछ धन कुटुम्बियों ने छीन लिया । कुछ आग लगने से विनष्ट हो गया । कुछ शासकों ने दण्ड के रूप में हड़प लिया ।

उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी । उस धन का उसने न तो दान किया और न तो उसका भोग ही भोगा । उसके सभी सम्बन्धी उससे नाराज हो गए थे । चिन्ता करते-करते उसका संसार के प्रति वैराग्य हो गया। वह कहने लगा– जिस धन से न तो मैने धर्म किया और न तो सुख ही भोगा उस धन को कमाया ही क्यों ?

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ।
यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ।
लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूप मिवेप्सितम् ।।

(भा० ११/२३/१५-१६)

यह देखा जाता है कि कृपण व्यक्तियों को धन से कोई सुख नहीं मिलता है । वे तो धन कमाने और कमाए हुए धन की रक्षा करने की चिन्ता से चिन्तित रहते हैं तथा मरने पर नरक में जाते हैं । जिस तरह छोटा सा भी श्वित्र सम्पूर्ण शरीर की मनोहरता को विनष्ट कर देता है उसी तरह थोड़ा सा भी लोभ यशस्वियों के यश और गुणियों के गुण को विनष्ट कर देता है । मनुष्य सारे अनर्थों को धन के लोभ में ही करता है । अतएव कल्याणकामी को परमार्थ विरोधी धन का परित्याग कर देना चाहिए । धनी एवं कृपण पुरुष के सब बान्धव पराए हो जाते हैं ।

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्यलोकमिमं पुमान् ।
द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ।।

(भा० ११/२३/२३)

स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्ति के साधन स्वरूप मानव शरीर को प्राप्त करके कौन बुद्धिमान मनुष्य उसे धनार्जन में व्यतीत कर सकेगा । देखता हूँ बड़े-बड़े ज्ञानी मनुष्य भी धनार्जन के चक्कर में पड़े रहते हैं। निश्चय ही मेरे ऊपर श्रीभगवान् की कृपा हुई है जिसके कारण मेरे मन में संसार से वैराग्य हो गया है। अब शेष आयु को आत्मलाभ के ही प्रयास में बिताऊँगा ।

तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः ।
मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वाङ्गः समसाधयत् ।।

(भा० ११/२३/३०)

तीनों लोकों के स्वामी देवगण मेरे इस संकल्प का अनुमोदन करें। राजा खट्वाङ्ग ने तो दो घड़ी में ही ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लिया था । उसके पश्चात् वह ब्राह्मण मौन हो गया । उसने संन्यास ले लिया। गावों में भिक्षा के लिए ऐसे जाता कि कोई पहचान ही नहीं पाता था। वह बूढ़ा हो गया था । लोग उसका नाना प्रकार से अपमान करते थे । अनेक प्रकार से सताये जाने पर भी वह बूढ़ा अवधूत ब्राह्मण यही समझता था कि यह सब कुछ मुझे पूर्व कर्मों का फल मिल रहा है । अतएव वह बोलता नहीं था चुपचाप सब कुछ सह लेता था । अतएव आवश्यकता है कि कल्याणकामी पुरुष मन को अपने वश में करे । मन को भगवान् में लगाये । जिस व्यक्ति का मन समाहित है उसको समस्त दानों का फल प्राप्त हो जाता है । जिसका मन चञ्चला है उसको दान इत्यादि किसी भी कर्म से कोई भी फल प्राप्त नहीं होता। चंचल मन मानव का परम शत्रु है । उस पर विजय प्राप्त करना चाहिए। आत्मा तो नित्य है । ये सभी सुख-दुःख मन के धर्म हैं । अतएव आवश्यकता है परमात्मा में मन लगाने की ।

एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दांघ्रिनिषेवयैव ।।
(भा० ११/२३/५८)

महान् ऋषियों ने इस परमात्मनिष्ठा को अपनाया है मैं भी इसे ही अपनाऊँगा । मुक्ति तथा प्रेम दान प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करके अपार अज्ञान सागर को पार करूँगा ।

श्रीभगवान् ने कहा कि उस ब्राह्मण की सम्पत्ति क्या नष्ट हुई उसका सारा दुःख ही दूर हो गया । दुष्टों के द्वारा अनेक प्रकार से सताए जाने पर भी वह मौनी संन्यासी कभी विचलित नहीं होता था । वह मुझमें ही निष्ठित था । उद्धवजी ! आप भी इसी प्रकार मुझमें निष्ठित हो जाइये । सम्पूर्ण योग साधन का यही सारांश है ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का तेइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौबीसवाँ अध्याय

सांख्ययोग का वर्णन

श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा–

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैं र्विनिश्चितम् ।
यद् विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्यात् वैकल्पिकं भ्रमम् ।।
(भा० ११/२४/१)

अब मैं आपको सांख्यशास्त्र को सुनाता हूँ । इसका निश्चय प्राचीन महर्षियों ने किया । इस ज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य अत्यन्त शीघ्र वैकल्पिक भ्रम का परित्याग कर देता है । युगों पूर्व आदि सत्ययुग में जब मनुष्य विवेकी होते थे, सम्पूर्ण जीव जगत् द्रष्टा, दृश्य आदि विकल्पों से शून्य एकमात्र ब्रह्म ही था । निर्विकल्पक ब्रह्म अपनी माया के कारण दो भागों में विभक्त सा हो गया । प्रकृति एवं पुरुष के रूप में । प्रकृति ने जगत् का रूप धारण किया और पुरुष ज्ञानस्वरूप है । सृष्टि के प्रारम्भ में मैंने जीवों के शुभ एवं अशुभ कर्मों के अनुसार प्रकृति को क्षुब्ध किया तो प्रकृति से सत्त्व, रजस एवं तमस ये तीन गुण प्रकट हुए । उनसे क्रियाशाक्ति प्रधनसूत्र तथा ज्ञान शक्ति प्रधन महत्तत्व प्रकट हुए । उनके परस्पर में मिलने से अहंकार की उत्पत्ति हुई । यह तीन प्रकार का है सात्त्विक, राजस एवं तामस । अहंकार जड़चेतनात्मक है तथा पञ्चतन्मात्राओं और मन का कारण है। राजस अहंकार से ग्यारह इन्द्रियाँ, सात्त्विक अहंकार से इन्द्रियों के ग्यारह अधिष्ठातृ देवता तथा तामस अहंकार से पञ्चतन्मात्राएँ हुईं । मेरे द्वारा प्रेरित ये सभी मिलकर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किए जो मेरा उत्तम आवास स्थान हैं । वह ब्रह्माण्ड जब जल में स्थित हो गया तो मैं उसमें नारायण रूप से विराजमान हो गया । मेरी नाभि से विश्वकमल उद्भूत हुआ और उसी पर ब्रह्माजी आविर्भूत हुए । ब्रह्माजी ने तपस्या की और मेरी कृपा से उन्होंने भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक की सृष्टि की और

उनके लोकपालों की सृष्टि की । भूर्लोक मनुष्यों का , भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) भूत प्रेतादि का तथा स्वर्लोक देवताओं का निवास स्थान बना । इन लोकों से ऊपर महार्लोक आदि सिद्धों के निवास स्थान हैं। नागों तथा असुरों के निवासार्थ उन्होंने पृथिवी से नीचे अतल, वितल आदि सात पातालों की रचना की । इन तीनों लोकों में त्रिगुणात्मक कर्मों के अनुसार विविध गतियाँ प्राप्त होती हैं । योग, तपस्या तथा संन्यास के द्वारा महर्लोक से सत्य लोक पर्यन्त की उत्तम गतियाँ प्राप्त होती हैं । भक्ति के द्वारा मेरा (परमात्मा का) लोक प्राप्त होता है। सम्पूर्ण जगत् कर्म तथा उनके संस्कारों से युक्त है । मैं कालरूप से कर्मानुसार फल प्रदान करता हूँ । गुणप्रवाह में पड़े जीव की अधोगति एवं ऊर्ध्वगति होती रहती है । संसार के सभी पदार्थ प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से बने हैं ।

प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ।
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्मतत्त्रितयं त्वहम् ।।
(भा० ११/२४/१९)

इस सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण प्रकृति है परमात्मा अधिष्ठान है । इसको प्रकट करने वाला काल है । वस्तुतः ये तीनों ब्रह्म हैं, और वह ब्रह्म मैं ही हूँ । यह सृष्टिचक्र तब तक चलता रहता है जब तक परमात्मा की ईक्षण शक्ति चलती रहती है । यह विराट् ही परमात्मा की सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूपी लीला की भूमि है । जगत् में कालरूप से व्याप्त होकर मैं इसका संहार करता हूँ । यह सारा संसार अपने-अपने कारण में लीन होते हुए अन्त में मुझमें लीन हो जाता है। इस विवेक की प्राप्ति होने पर प्रपञ्च भ्रम उसी प्रकार नहीं रह जाता है जिस तरह सूर्योदय हो जाने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भावत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

पच्चीसवाँ अध्याय

सत्त्वादि तीनों गुणों की वृत्तियों का वर्णन

श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा कि प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग गुणों का प्रकाश होता है और उसके फलस्वरूप मनुष्यों के स्वभाव में भेद हुआ करता है । अब मैं प्रत्येक गुण का स्वभाव पृथक्-पृथक् वर्णन करता हूँ ।

शमोदमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ।
तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा हीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ।।
(भा० ११/२५/२)

शम, दम, तितिक्षा, विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, विषयों की अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा, आत्मरति, दान, विनय तथा सरलता ये सत्त्व गुण की वृत्तियाँ हैं । इच्छा, प्रयत्न, अभिमान, तृणा, यश की कामना, हास्य, पराक्रम प्रदर्शन आदि रजोगुणी वृत्तियाँ हैं । क्रोध, लोभ, असत्यभाषण, हिंसा, याचना, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक, मोह तथा अकर्मण्यता ये तमोगुणी वृत्तियाँ हैं । अहंत्व एवं ममत्व तो तीनों गुणों में मिश्रित रहते हैं । जब जीव धर्म, अर्थ एवं काम में संलग्न रहता है तो उसे सत्त्वगुण से श्रद्धा होती है, रजोगुण से रति एवं तमोगुण से धन की अभिलाषा होती है । सकाम कर्म करने में भी तीनों गुणों का मिश्रण रहता है ।

पुरुषं सत्त्व संयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ।
कामादिभीरजो युक्तं क्रोधाद्यैस्तमसायुतम् ।।
(भा० ११/२५/९)

शमादि गुणों को देखकर सत्त्वगुण सम्पन्न व्यक्ति का अनुमान करना चाहिए, कामना आदि को देखकर रजोगुणी व्यक्ति का तथा क्रोध इत्यादि को देखकर तमोगुणी व्यक्ति का अनुमान करना चाहिए। सत्त्वगुणी व्यक्ति निष्काम भाव से भक्ति पूर्वक मेरी आराधना करता है।

उनके लोकपालों की सृष्टि की । भूर्लोक मनुष्यों का , भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) भूत प्रेतादि का तथा स्वर्लोक देवताओं का निवास स्थान बना । इन लोकों से ऊपर महार्लोक आदि सिद्धों के निवास स्थान हैं। नागों तथा असुरों के निवासार्थ उन्होंने पृथिवी से नीचे अतल, वितल आदि सात पातालों की रचना की । इन तीनों लोकों में त्रिगुणात्मक कर्मों के अनुसार विविध गतियाँ प्राप्त होती हैं । योग, तपस्या तथा संन्यास के द्वारा महर्लोक से सत्य लोक पर्यन्त की उत्तम गतियाँ प्राप्त होती हैं । भक्ति के द्वारा मेरा (परमात्मा का) लोक प्राप्त होता है। सम्पूर्ण जगत् कर्म तथा उनके संस्कारों से युक्त है । मैं कालरूप से कर्मानुसार फल प्रदान करता हूँ । गुणप्रवाह में पड़े जीव की अधोगति एवं ऊर्ध्वगति होती रहती है । संसार के सभी पदार्थ प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से बने हैं ।

प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ।
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्मतत्त्रितयं त्वहम् ।।
(भा० ११/२४/१९)

इस सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण प्रकृति है परमात्मा अधिष्ठान है । इसको प्रकट करने वाला काल है । वस्तुतः ये तीनों ब्रह्म हैं, और वह ब्रह्म मैं ही हूँ । यह सृष्टिचक्र तब तक चलता रहता है जब तक परमात्मा की ईक्षण शक्ति चलती रहती है । यह विराट् ही परमात्मा की सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूपी लीला की भूमि है । जगत् में कालरूप से व्याप्त होकर मैं इसका संहार करता हूँ । यह सारा संसार अपने-अपने कारण में लीन होते हुए अन्त में मुझमें लीन हो जाता है। इस विवेक की प्राप्ति होने पर प्रपञ्च भ्रम उसी प्रकार नहीं रह जाता है जिस तरह सूर्योदय हो जाने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भावत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

पच्चीसवाँ अध्याय

सत्त्वादि तीनों गुणों की वृत्तियों का वर्णन

श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा कि प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग गुणों का प्रकाश होता है और उसके फलस्वरूप मनुष्यों के स्वभाव में भेद हुआ करता है । अब मैं प्रत्येक गुण का स्वभाव पृथक्-पृथक् वर्णन करता हूँ ।

शमोदमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ।
तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ।।
(भा० ११/२५/२)

शम, दम, तितिक्षा, विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, विषयों की अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा, आत्मरति, दान, विनय तथा सरलता ये सत्त्व गुण की वृत्तियाँ हैं । इच्छा, प्रयत्न, अभिमान, तृणा, यश की कामना, हास्य, पराक्रम प्रदर्शन आदि रजोगुणी वृत्तियाँ हैं । क्रोध, लोभ, असत्यभाषण, हिंसा, याचना, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक, मोह तथा अकर्मण्यता ये तमोगुणी वृत्तियाँ हैं । अहंत्व एवं ममत्व तो तीनों गुणों में मिश्रित रहते हैं । जब जीव धर्म, अर्थ एवं काम में संलग्न रहता है तो उसे सत्त्वगुण से श्रद्धा होती है, रजोगुण से रति एवं तमोगुण से धन की अभिलाषा होती है । सकाम कर्म करने में भी तीनों गुणों का मिश्रण रहता है ।

पुरुषं सत्त्व संयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ।
कामादिभीरजो युक्तं क्रोधाद्यैस्तमसायुतम् ।।
(भा० ११/२५/९)

शमादि गुणों को देखकर सत्त्वगुण सम्पन्न व्यक्ति का अनुमान करना चाहिए, कामना आदि को देखकर रजोगुणी व्यक्ति का तथा क्रोध इत्यादि को देखकर तमोगुणी व्यक्ति का अनुमान करना चाहिए। सत्त्वगुणी व्यक्ति निष्काम भाव से भक्ति पूर्वक मेरी आराधना करता है।

जो सकाम भाव से मेरी आराधना करता है वह रजोगुणी तथा अपने शत्रुओं को मारने आदि के लिए जो मेरा भजन करता है वह तमोगुणी है।

यदाचित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृत्तिः ।
देहेऽभयं मनोऽसंगं तत्सत्त्वं विद्धिमत्पदम् ।।

(भा० ११/२५/१६)

जब चित्त प्रसन्न हो, इन्द्रियाँ शान्त हो, देह निर्भय हो, मन अनासक्त हो तो सत्त्वगुण की समृद्धि जानना चाहिये । सत्त्वगुण से मेरी प्राप्ति होती है । जब मन असन्तुष्ट, इन्द्रियाँ चंचल हों कर्मेन्द्रियाँ विकृत हो गयी हों, मन भ्रान्त हो तो रजोगुण की वृद्धि जानना चाहिए । जब मन किंर्तव्यविमूढ हो, विषाद एवं अज्ञान बढ़ जाय तो तमोगुण की समृद्धि समझना चाहिए ।

एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ।
असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ।।

(भा० ११/२५/१९)

उद्धव सत्त्वगुण के समृद्ध होने पर देवताओं का रजोगुण के बढ़ने पर असुरों का तथा तमोगुण के बढ़ने पर राक्षसों का बल बढ़ता है । सत्त्वगुण से जागरण होता है, रजोगुण से स्वप्नावस्था तथा तमोगुण से सुषुप्ति होती है । सात्त्विक वेदज्ञ ब्राह्मण ऊपर के लोकों में जाते हैं, राजसी जीव मनुष्य शरीर पाते हैं तथा तामसी जीव अधोगति को प्राप्त करते हैं । निष्काम भाव से किया गया धर्म का आचरण सात्त्विक होता है, सकाम कर्म राजस होते हैं तथा अभिचार आदि कर्म तामस होते हैं। इसी तरह से श्रीभगवान् ने उद्धवजी को भोजन, सुख, द्रव्य, देश, काल, ज्ञान तथा कर्म आदि के भी त्रिगुणात्मकता का उपदेश दिया । उन्होंने कहा कि मनुष्यों के समस्त भाव त्रिगुणात्मक होते हैं । जीवों को प्राप्त होने वाली योनियाँ भी गुणों के ही अनुसार होती हैं । श्रीभगवान् ने कहा–

तस्माद् देहामिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम् ।
गुणसंगंविनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ।।

(भा० ११/२५/३३)

मानव शरीर दुर्लभ है । इस शरीर से ही तत्त्वज्ञान तथा विज्ञान की प्राप्ति होती है । अतएव इस शरीर को पाकर मनुष्य को

परमात्माराधन करना चाहिए । सत्त्वगुण का सेवन करते हुए जितेन्द्रिय होकर मेरा भजन करे और अनासक्त रहे । अन्त में वह जीवभाव को भी त्यागकर मुझे ही प्राप्त कर ले ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का पच्चीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छब्बीसवाँ अध्याय

पुरुरवा का वैराग्य

श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा–

मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ।
आनन्दं परमात्मानं आत्मस्थं समुपैति माम् ।।

(भा० ११/२६/१)

यह मानव शरीर मेरे स्वरूपज्ञान तथा मेरी प्राप्ति का मुख्य साधन है । इसे प्राप्तकर जो मनुष्य सच्चे प्रेम से मेरी उपासना करता है वह अपने अन्तःकरण में स्थित मुझे प्राप्त कर लेता है । जीवों की सभी योनियाँ एवं सभी गतियाँ त्रिगुणात्मक हैं । ज्ञान निष्ठा के द्वारा मनुष्य उनसे मुक्त होता है । जो लोग विषयों के सेवन तथा उदरपोषण में लगे हुए हैं, उन असत् पुरुषों का सङ्ग कभी नहीं करना चाहिए । उनका अनुगमन करने वाले पुरुष की वैसी ही दुर्दशा होती है जिस तरह अन्धे के सहारे चलने वाले अन्धे की ।

पुरुरवोपाख्यान को उपन्यस्त करते हुए श्रीभगवान् ने कहा– उर्वशी जब महाराज पुरुरवा को छोड़कर जाने लगी तो वे नंगे ही उसके पीछे दौड़ने लगे। किन्तु जब वह चली गयी तो उन्हें विषयों से विराग हो गया । उनके हृदय में ज्ञान सूर्य का उदय हो गया । वे अपने अतीत पर पछता रहे थे । वे सोच रहे थे– उर्वशी ने तो मुझे अपने मोह-पाश में इस तरह से जकड़ लिया था कि मै काल की गति को भी

उसके मोह को मैं नहीं जान सका । मैं उसका क्रीड़ा मृग बन गया था। वह मुझे त्यागकर चली गयी और निर्लज्ज मैं उसके पीछे दौड़ रहा था।

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ।।
(भा० ११/२६/१२)

जिसका मन स्त्री ने चुरा लिया है, उसकी विद्या, तपस्या, त्याग तथा शास्त्राभ्यास सब व्यर्थ है । मैं चक्रवर्ती सम्राट् होकर भी बैल की तरह स्त्री के फँदे में फँसा रहा । उस कुलटा ने मेरा चित्त चुरा लिया। परमात्मा ही अब मेरे मन को स्वस्थ्य कर सकते हैं ।

मानव शरीर तो समस्त मलों का आश्रय है, और उसके आकर्षण में इतना आकृष्ट हो जाना मेरी महा मूर्खता है । इस शरीर का अन्त तो कीट, वीट एवं भस्म में होता है । इस नश्वर शरीर के प्रति मेरा बहुत बड़ा आकर्षण बढ़ गया था । अतएव भलाई चाहने वाले मनुष्य को स्त्री का कभी भी संग नहीं करना चाहिए ।

श्री भगवान् ने कहा–

एवं प्रगायन् नृप देवदेवः स उर्वशी लोकमथो विहाय ।
आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञान विधूतमोहः ।।
(भा० ११/२६/२५)

राजा पुरुरवा के मन में जब इस प्रकार की भावनाएँ भर गयीं तो उन्होंने उर्वशी लोक का परित्याग करके अपने अन्तःकरण में ही विद्यमान आत्मरूप मेरा साक्षात्कार कर लिया और ज्ञान के प्रकाश से विषय के मोह को विनष्ट कर दिया । वे सन्त समागम में रत रहने लगे। सन्तों को किसी से किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती है । वे सर्वदा मेरा चिन्तन किया करते हैं । वे सम्पूर्ण जगत् को परमात्मात्मक रूप से देखते हैं । वे अहंकार एवं ममकार की भावना से निर्लिप्त रहकर सभी प्रकार के परिग्रहों से दूर रहते हैं । वे सदा मेरी लीलाओं का वर्णन किया करते हैं । श्रद्धा पूर्वक मेरी लीलाओं तथा कथाओं का श्रवण करने वाले पुरुषों को मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है । मेरी भक्ति से सम्पन्न पुरुष सर्वदा परमानन्दमग्न रहा करता है । उनके एकमात्र आश्रय सन्त पुरुष ही होते हैं ।

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ।
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ।।
(भा० ११/२६/३४)

जिस तरह सूर्य उदित होकर लोगों को जगत् तथा अपने को देखने के लिए नेत्र प्रदान करते हैं, उसी तरह सन्त पुरुष मनुष्यों को आत्मा एवं परमात्मा का ज्ञान करने वाली अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं । सन्त पुरुष देवताओं के बान्धव हैं, सन्त ही मेरी आत्मा हैं, प्रियतम हैं, इस तरह संसार से निर्वेद प्राप्त करके पुरुरवा आत्माराम हो गए ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भावगत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सत्ताइसवाँ अध्याय

क्रियायोग का वर्णन

श्रीउद्धवजी ने कहा– भगवन् ! आप हमें क्रियायोग का स्वरूप बतलाएँ ।

एतद् वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ।
नारदो भगवान् व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ।।
(भा० ११/२७/२)

देवर्षि नारद, भगवान् व्यास तथा आचार्य बृहस्पति इत्यादि महर्षि तथा ऋषि मुनि बतलाते हैं कि क्रियायोग के द्वारा भगवदाराधना ही मनुष्य की परम कल्याणकारिणी है । इस क्रियायोग का उपदेश आपने ही सर्वप्रथम ब्रह्माजी को दिया था । उनसे ही भृगु आदि महर्षियों तथा भगवान् शंकर ने प्राप्त किया था । यह क्रियायोग समस्त जीवों की कल्याणकारिणी है ।

उद्धवजी को उपदेश देते हुए श्रीभगवान् ने कहा– मेरी पूजा की तीन विधियाँ हैं– वैदिक, तान्त्रिक एवं मिश्रित । इन तीनों में से किसी भी विधि से मेरी आराधना की जा सकती है । अधिकारानुसार समय से यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात द्विजत्व प्राप्त करके मेरी आराधना करनी चाहिए । पूजक मुझे ही अपना पिता एवं आचार्य माने । तथा

मेरी पूजा मूर्ति, वेदी, अग्नि, सूर्य, जल अथवा हृदय में करे । प्रातःकाल शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर स्नान के पश्चात् तान्त्रिक अथवा वैदिक मन्त्रों से शरीर में भस्म अथवा मिट्टी का लेप करके पुनः स्नान करना चाहिए । फिर सन्ध्योपासन के पश्चात् वैदिक अथवा तान्त्रिक विधि से मेरी आराधना करनी चाहिए ।

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ।।
(भा०११/२७/१२)

मेरी मूर्ति आठ प्रकार की होती है– पत्थर की, लकड़ी की, धातु की, चन्दन इत्यादि की, चित्रमयी, बालू की, मनोमयी और मणिकी । मेरी प्रतिमा के और दो भेद होते हैं, चल एवं अचल । अचल प्रतिमा का प्रतिदिन आवाहन एवं विसर्जन नहीं करना पड़ता है । चल प्रतिमा का प्रतिदिन आवाहन एवं विसर्जन किया जा सकता है । बालू की प्रतिमा का प्रतिदिन आवाहन एवं विसर्जन करना चाहिए । चन्दन के लेप से बनी तथा चित्रमयी प्रतिमा का केवल मार्जन कर देना चाहिए स्नान नहीं कराना चाहिए । स्नान, वस्त्र तथा आभूषण आदि अर्चन सामग्री पत्थर की ही मूर्ति में उपयोगी है । बालू की बनी हुई तथा मिट्टी के मूर्ति के तत्-तत् अंगों की कल्पना कर लेनी चाहिए । यदि अग्नि में मेरी आराधना करे तो घृत मिश्रित होम सामग्री से आहुति देनी चाहिए। सूर्य के भीतर आराधना में अर्ध्य दान तथा सूर्योपस्थान की प्रधानता होती है । भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक दिए गए जल दान को भी मैं प्रेमपूर्वक ग्रहण करता हूँ ।

उपासक को चाहिए कि पूजन की सामग्री को एकत्रित करके कुश के आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर मेरी आराधना प्रारम्भ करे । पूजन के लिए तीन पात्रों को रखकर उनको क्रमशः हृदय मन्त्र, शिरोमन्त्र तथा शिखामन्त्र से अभिमन्त्रित करके अन्त में गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करे । फिर अन्तःकरण में जीव काल का ध्यान करना चाहिए । सिद्धों, त्रिषियों आदि को तो अन्तःकरण में अकार, उकार, मकार, नाद एवं विन्दु प्रणव की पाँच कलाओं का ध्यान करना चाहिए। इसके पश्चात् सविधि षोडशोपचार अथवा राजोपचार से अथवा अभीप्सित उपचारों से मेरी आराधना करना चाहिए ।

चन्दनोशीरकर्पूर कुंकुमागुरुवासितैः ।
सलिलैः स्नापयेन्मत्रैः नित्यदाविभवे सति ।।
स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ।
पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ।।
(भा० ११/२७/३०-३१)

यदि सामर्थ्य हो तो प्रतिदिन चन्दन, खस, कपूर, केसर तथा अरगजा आदि सुगन्धित पदार्थों से सुगन्धित जल से स्नान कराए तथा स्वर्णधर्मानुवाक अथवा जितन्तेपुण्डरीकाक्ष इत्यादि महापुरुषविद्या पुरुषसूक्त अथवा राजनादिभि इत्यादि साम मन्त्रों का पाठ करें ।

पूजन के पश्चात् कुण्ड अथवा स्थण्डिल पर कुशकण्डिका इत्यादि पुरस्सर होम करना चाहिए । इसके पश्चात् अग्नि में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए चार भुजाओं वाले पीताम्बर धारण किए हुए किरीट, कंगन कटिसूत्र धारण किए हुए कौस्तुभमणि तथा वनमाला से समलंकृत तप्त सुवर्ण के समान देदीप्यमान मेरी मूर्ति का ध्यान करना चाहिए । फिर मूल मन्त्र (ओं नमो नारायणाय) से अथवा पुरुष सूक्त के सोलह मन्त्रों से होम करना चाहिए अन्त में प्रतिमा के समक्ष बैठकर यथाशक्ति मूलमन्त्र का जप करना चाहिए । पुष्पाञ्जलि प्रदान कर भगवान् की लीलाओं का गायन तथा अभिनय श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक करना चाहिए । प्रार्थना के पश्चात् मेरे प्रसाद स्वरूप माला को धारण करना चाहिए ।

श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा–

एवं क्रियायोग पथैः पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः ।
अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ।।
(भा० ११/२७/४९)

जो मनुष्य इस प्रकार से वैदिक अथवा तान्त्रिक विधि से मेरी अर्चना करता है वह इस लोक तथा परलोक में अभीष्ट अर्थ को प्राप्त करता है । यदि शक्ति हो तो उपासक को मेरा मन्दिर बनाना चाहिए। देवांश अथवा ब्रह्मांश का अपहरण करने वाला मनुष्य करोड़ो वर्ष तक विष्ठा का क़ीड़ा होता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का सत्ताइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

अट्ठाइसवाँ अध्याय

परमार्थ का निरूपण

इस सम्पूर्ण विश्व में दो प्रकार के तत्त्व हैं प्रकृति तत्त्व एवं पुरुष (जीव) तत्त्व । इन दोनों प्रकार के तत्त्वों की एकमात्र आत्मा विश्वात्मा परमात्मा है । अतएव सम्पूर्ण जगत् को परमात्मात्मक जानकर किसी के भी कर्मों की निन्दा अथवा प्रशंसा नहीं करना चाहिए । दूसरों की निन्दा अथवा प्रशंसा करने वाला व्यक्ति अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाता है । जिस तरह निद्राकाल में चैतन्य समाप्त हो जाता है, और जीव अनेक प्रकार के स्वप्नों को देखता रहता है । उसी तरह भेद बुद्धि वाला व्यक्ति माया में पड़कर अनेक प्रकार के अनर्थों का दर्शन करता है । भेद बुद्धि अवास्तविक है । सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है, पालन करता है और संहार करता है। परमात्मा की त्रिगुणात्मिका माया से यह सम्पूर्ण जगत् कल्पित है । श्रीभगवान् ने कहा—

एतद् विद्वान् मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ।
न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ।।

(भा० ११/२८/८)

यह जो मैने ज्ञान का निपुण निरूपण किया है, उसको जानने वाला पुरुष न तो किसी की निन्दा करता है और न तो किसी की प्रशंसा करता है । वह संसार में निरपेक्ष होकर सूर्य के समान संचरण करता है वह संसार से निःसंग हो जाता है ।

उद्धवजी ने श्रीभगवान् से पूँछा—

आत्माव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयं ज्योतिरनावृतः ।
अग्निवद्दारुबदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ।।

(भा० ११/२८/११)

यह आत्मा तो निर्विकार, गुणत्रय से रहित, शुद्ध, स्वयम्प्रकाश

तथा समस्त प्रकार के आवरणों से रहित है । वह अग्नि के समान प्रकाशमान है तथा शरीर काष्ठ के समान जड़ है फिर यह सृष्टि किसकी है ? उद्धवजी की बातों का उत्तर देते हुए श्रीभगवान् ने कहा–

यावद् देहेन्द्रियप्रभवैरात्मनः सन्निकर्षणम् ।
संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ।।
(भा०११/२८/१२)

यद्यपि यह संसार अपार्थ है फिर भी अज्ञानी जीवों के लिए तब तक फलवान् बना रहता है जब तक आत्मा का देह, इन्द्रिय एवं प्राणों से संबन्ध बना रहता है । जिस तरह बिना जागे स्वप्न भ्रमों की समाप्ति नहीं होती है, उसी तरह बिना ज्ञान हुए यह संसार भ्रम समाप्त नहीं होता है । वेदाध्ययन, तपस्या, विवेक इन सबों का एकमात्र प्रयोजन है कि प्रकृति पुरुष विवेक को प्राप्त कर सम्पूर्ण जगत् को परमात्मात्मक समझना । वह परमात्मा ही परमार्थ है यह सम्पूर्ण जगत् तो व्यवहार मात्र है तथा मायिक है । ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष सांसारिक भोगों से विरक्त हो जाते हैं और निःसंग विचरण किया करते हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि, अहंकार, आकाश तथा प्रकृति इत्यादि भी आत्मव्यतिरिक्त वस्तुएँ हैं ।

यथा नभो वाय्वनाम्बुभूगुणैः गतागतैर्वर्तु गुणैर्न सज्जते ।
तथाऽक्षरं सत्त्वराजस्तमोमलै रहंमतेः संसृहेतुभिः परम् ।।
(भा०११/२८/२६)

जिस तरह आकाश को न तो वायु सुखा सकती है न आग जला सकता है न जल भिंगो सकता है न तो पृथिवी, जल, धूल आदि उसे मैला ही कर सकते है, क्योंकि ये सबके सब गिने जाने वाले हैं, आकाश इन सबों का आश्रय है, उसी तरह सत्त्व, रजस, एवं तमस आत्मा को स्पर्श भी नहीं कर सकते हैं । इन सबों के द्वारा जीव संसार में भटकता रहता है और वह इन सबों में आत्मत्व की भावना कर लेता है । अतएव मेरी सुदृढ भक्ति के लिए मायिक कार्यों का संबन्ध त्याग देना चाहिए ।

श्रीभगवान् ने कहा कि जब तक योग की सिद्धि न हो तो तब तक रोगादि की निवृत्ति के लिए विभिन्न उपायों का आश्रय लेना चाहिए। काम, क्रोध आदि विघ्नों को मेरे चिन्तन तथा नाम संकीर्तन

आदि के द्वारा नष्ट कर देना चाहिए तथा महापुरुषों की सेवा के द्वारा दम्भ, मद आदि को विनष्ट करना चाहिए ।

योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत् कल्पतामियात् ।
तच्छ्रध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्यमत्परः ।।
(भा० ११/२८/४३)

यदि कदाचित् बहुत दिनो तक निरन्तर और आदर पूर्वक योग साधना करते रहने पर शरीर सुदृढ भी हो जाय तो भी ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह योग साधना का त्याग कर उतने मात्र से संतुष्ट न हो जाय । वह निरन्तर मेरी प्राप्ति के लिए प्रयास करता रहे । इस योगमार्ग को अपनाने वाले पुरुष की सारी कामनाएँ विनष्ट हो जाती हैं और वह आत्मानन्द में मग्न हो जाता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का अट्ठाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

उनतीसवाँ अध्याय

भागवत धर्म का निरूपण और उद्धवजी का वदरिकाश्रम गमन

श्रीउद्धवजी ने कहा कि जिसका मन अपने वश में नहीं है उसके लिए यह योगसाधना का मार्ग कठिन है, अतएव आप सुगमता पूर्वक परमपद प्राप्ति का मार्ग बतलाएँ ।

अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजं हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ।
सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिः त्वन्माययामी विहिता न मानिनः ।।
(भा० ११/२९/३)

हे कमलनयन भगवन् ! आप जगत् के स्वामी हैं । आप ही इस जगत् का नियमन करते हैं । इसीलिए ज्ञानी पुरुष आपके आनन्दप्रद चरणों को शरण रूप से अपनाते हैं । जो लोग आपके चरणों की शरणागति नहीं करते हैं, उनकी बुद्धि का अपहरण माया कर लेती है।

प्रभो ! आप तो अपने शरणागत भक्तों के अधीन रहते हैं । आपके ऐसे भक्त विषयों के भोग में नहीं फँसते हैं।

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा–

इत्युद्धवनात्यनुरक्त चेतसा पृष्टो जगत् क्रीडनकः स्वशक्तिभिः
गृहीत मूर्तित्रय ईश्वरेश्वर जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ।।

(भा० ११/२९/७)

भगवान् श्रीकृष्ण सभी स्वामियों के भी स्वामी हैं । वे सत्त्वगुण सम्पन्न होकर विष्णु रूप धारण करते हैं, रजोगुण सम्पन्न होकर ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं तथा तमोगुण सम्पन्न होकर रुद्ररूप धारण करते हैं तथा सृष्टि पालन तथा संहार की क्रीड़ा किया करते हैं । उद्धवजी के द्वारा अनुरागपूर्ण चित्त से पूछे जाने पर मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए श्रीभगवान् प्रेम पूर्वक कहना प्रारम्भ किया।

श्रीभगवान् ने कहा– भागवत धर्म को अपनाकर मनुष्य अनायास ही संसार सागर को पार कर लेता है । भक्त को चाहिए कि वह अपने समस्त कर्मों को मेरी प्रसन्नता के लिए करे तथा सर्वदा मेरा स्मरण करते हुए कर्मों को मेरी प्रसन्नता के लिए करे । सर्वदा मेरा स्मरण करता रहे । ऐसा करने वाले भक्तों के मन में मेरा निवास हो जाता है। वह मेरे भक्तों के साथ निवास करे तथा मेरे भक्तों के ही आचरण का अनुसरण करे । समयानुसार मेरा महोत्सव करे । वह जाने कि परमात्मा का सबों के अन्तःकरण में निवास है यही निर्मल बुद्धि है । इस बुद्धि से युक्त पुरुष समदृष्टि हो जाता है ।

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ।।

(भा० ११/२९/१४)

उपर्युक्त ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य ब्राह्मण तथा चाण्डाल, चोर तथा ब्राह्मण, सूर्य तथा चिनगारी तथा कृपालु एवं क्रूर में समदृष्टि हो जाता है । वही वस्तुतः ज्ञानी है । ऐसे पुरुष के अन्तःकरण में ईर्ष्या, द्वेष तथा मोह आदि का सद्भाव नहीं रह जाता है । उसकी देहदृष्टि समाप्त हो जाती है । वह सबको मन से प्रणाम करता रहता है । जब तक समस्त प्राणियों में परमात्मा की भावना न होने लगे तब तक मुमुक्षु जीव को चाहिए कि वह अपने समस्त कर्मों से मेरी आराधना करता रहे ।

अयं हि सर्व कल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायबुद्धिभिः ।।
(भा० ११/२९/१९)

मेरी प्राप्ति के जितने भी साधन बतलाए गए हैं, उन सबों में श्रेष्ठ साधन मैं यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में मन, वाणी एवं शरीर की समस्त वृत्तियों से मेरी ही भावना की जाय । इसे ही भागवत धर्म कहते हैं । यही सर्वोत्तम एवं निष्काम धर्म है । ऐसा भक्त जो भी कर्म करता है, उसी से मेरी प्रसन्नता होती है । किन्तु इस भागवत धर्म को देवता भी नहीं समझ पाते हैं । मनुष्यों को कौन कहे। इस भागवत धर्म को अपनाने वाला कोई भी जीव मुक्त हो जाता है । यही वेदों का परम रहस्य है । इस भागवत धर्म को सुनने वाले तथा सुनाने वाले सभी परमपवित्र हो जाते हैं । इस धर्म को ब्राह्मण भक्तों को तथा साधुस्वभाव के ही प्राणियों को सुनाना चाहिए । इस धर्म को जान लेने पर जानने के लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है ।

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को बतलाया कि श्रीभगवान् की बातों को सुनकर उद्धवजी की आँखों में प्रेमाश्रु भर गया । उद्धवजी ने कहा कि भगवन् ! अब तक मैं अज्ञान सागर में निमग्न था । आपकी माया ने मुझे मोहित कर रखा था, किन्तु अब मेरा अज्ञान विनष्ट हो गया । अब आप ऐसी कृपा करें कि मैं आपके चरणों की भक्ति कर सकूँ । श्रीभगवान् ने कहा–

गच्छोद्धवमयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ।
तत्र मत्पादतीर्थोद स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ।।
(भा० ११/२९/४१)

उद्धवजी ! यह मेरा आदेश है कि आप मेरे आश्रम वदरिकाश्रम में चले जायँ, मेरे चरणामृत गंगाजल में स्नान करके उसका पान करके तथा उसका स्पर्श करके आप पवित्र हो जायेंगे । अलकनन्दा के दर्शन मात्र से ही आपके समस्त पाप ताप विनष्ट हो जायेंगे । आप वहाँ निःसंग होकर निवास करें । समस्त सुख-दुःख को सहन करें । इस प्रकार से रहते हुए आप मेरे परमपद को प्राप्त कर लेंगे । श्रीभगवान् की बातों को सुनकर उद्धवजी ने श्रीभगवान् की प्रदक्षिणा एवं प्रणाम किया । उन्होंने भगवान् की चरण पादुका को अपने सिर पर रख लिया

और वहाँ से बदरिकाश्रम के लिए प्रस्थान किया । वहाँ जाकर श्रीभगवान् के उपदेशानुसार अपना जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में श्रीभगवान् को प्राप्त किया । इस भगवदुपदेश का अध्ययन करने वाला प्राणी समस्त पापों एवं तापों से विमुक्त हो जाता है ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत् कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का उनतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तीसवाँ अध्याय

यदुकुल का संहार

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूँछा कि श्रीउद्धवजी के वदरिकाश्रम चले जाने के पश्चात् श्रीभगवान् ने कौन सी लीला की ? सबों को मोहित करने वाले अपने शरीर का उन्होंने किस प्रकार से परित्याग किया । शुकदेवजी ने बतलाया कि द्वारका में अनेक प्रकार के होते हुए उत्पातों को देखकर श्रीभगवान् ने कहा–

एते घोरा महोत्पाताः द्वार्वत्यां यमकेतवः ।
मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुंगवाः ।।
(भा० ११/३०/५०)

श्रेष्ठ यदुवंशियों इस समय द्वारका में भयंकर उत्पात हो रहे हैं। ये यमराज की पताका के समान हैं । अतएव यहाँ पर हम लोगों को क्षण भर भी नहीं रुकना चाहिए । यहाँ से हम सभी स्त्रियों, वृद्धों एवं बच्चों के साथ शंखोद्वार (प्रभास) क्षेत्र चलेंगे, जहाँ पर सरस्वती पूर्व की ओर बहती हुई समुद्र में मिलती हैं । वहाँ पर स्नान करें समाहित होकर देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन करेंगे । उनको विविध प्राकर का दान देने से हम सबों का मंगल होगा ।

विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायानमुत्तमम् ।
देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ।।
(भा० ११/३०/९)

अयं हि सर्व कल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायबुद्धिभिः ।।
(भा० ११/२९/१९)

मेरी प्राप्ति के जितने भी साधन बतलाए गए हैं, उन सबों में श्रेष्ठ साधन मैं यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में मन, वाणी एवं शरीर की समस्त वृत्तियों से मेरी ही भावना की जाय । इसे ही भागवत धर्म कहते हैं । यही सर्वोत्तम एवं निष्काम धर्म है । ऐसा भक्त जो भी कर्म करता है, उसी से मेरी प्रसन्नता होती है । किन्तु इस भागवत धर्म को देवता भी नहीं समझ पाते हैं । मनुष्यों को कौन कहे। इस भागवत धर्म को अपनाने वाला कोई भी जीव मुक्त हो जाता है । यही वेदों का परम रहस्य है । इस भागवत धर्म को सुनने वाले तथा सुनाने वाले सभी परमपवित्र हो जाते हैं । इस धर्म को ब्राह्मण भक्तों को तथा साधुस्वभाव के ही प्राणियों को सुनाना चाहिए । इस धर्म को जान लेने पर जानने के लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है ।

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित् को बतलाया कि श्रीभगवान् की बातों को सुनकर उद्धवजी की आँखों में प्रेमाश्रु भर गया । उद्धवजी ने कहा कि भगवन् ! अब तक मैं अज्ञान सागर में निमग्न था । आपकी माया ने मुझे मोहित कर रखा था, किन्तु अब मेरा अज्ञान विनष्ट हो गया । अब आप ऐसी कृपा करें कि मैं आपके चरणों की भक्ति कर सकूँ । श्रीभगवान् ने कहा–

गच्छोद्धवमयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ।
तत्र मत्पादतीर्थोद स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ।।
(भा० ११/२९/४१)

उद्धवजी ! यह मेरा आदेश है कि आप मेरे आश्रम वदरिकाश्रम में चले जायँ, मेरे चरणामृत गंगाजल में स्नान करके उसका पान करके तथा उसका स्पर्श करके आप पवित्र हो जायेंगे । अलकनन्दा के दर्शन मात्र से ही आपके समस्त पाप ताप विनष्ट हो जायेंगे । आप वहाँ निःसंग होकर निवास करें । समस्त सुख-दुःख को सहन करें । इस प्रकार से रहते हुए आप मेरे परमपद को प्राप्त कर लेंगे । श्रीभगवान् की बातों को सुनकर उद्धवजी ने श्रीभगवान् की प्रदक्षिणा एवं प्रणाम किया । उन्होंने भगवान् की चरण पादुका को अपने सिर पर रख लिया

और वहाँ से बदरिकाश्रम के लिए प्रस्थान किया । वहाँ जाकर श्रीभगवान् के उपदेशानुसार अपना जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में श्रीभगवान् को प्राप्त किया । इस भगवदुपदेश का अध्ययन करने वाला प्राणी समस्त पापों एवं तापों से विमुक्त हो जाता है ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत् कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का उनतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तीसवाँ अध्याय

यदुकुल का संहार

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूँछा कि श्रीउद्धवजी के वदरिकाश्रम चले जाने के पश्चात् श्रीभगवान् ने कौन सी लीला की ? सबों को मोहित करने वाले अपने शरीर का उन्होंने किस प्रकार से परित्याग किया । शुकदेवजी ने बतलाया कि द्वारका में अनेक प्रकार के होते हुए उत्पातों को देखकर श्रीभगवान् ने कहा–

एते घोरा महोत्पाताः द्वार्वत्यां यमकेतवः ।
मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुंगवाः ।।
(भा० ११/३०/५०)

श्रेष्ठ यदुवंशियों इस समय द्वारका में भयंकर उत्पात हो रहे हैं। ये यमराज की पताका के समान हैं । अतएव यहाँ पर हम लोगों को क्षण भर भी नहीं रुकना चाहिए । यहाँ से हम सभी स्त्रियों, वृद्धों एवं बच्चों के साथ शंखोद्वार (प्रभास) क्षेत्र चलेंगे, जहाँ पर सरस्वती पूर्व की ओर बहती हुई समुद्र में मिलती हैं । वहाँ पर स्नान करें समाहित होकर देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन करेंगे । उनको विविध प्राकर का दान देने से हम सबों का मंगल होगा ।

विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायानमुत्तमम् ।
देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ।।
(भा० ११/३०/९)

यह विधि सभी प्रकार के अरिष्टों का नाश करने वाली है परममङ्गल को प्रदान करने वाली है । देवता, ब्राह्मण एवं गौओं की पूजा, ये ही प्राणियों के इस जन्म के परम लाभ हैं । श्रीभगवान् की बातों का सब लोगों ने अनुमोदन किया और सबके-सब समुद्र पार कर रथ पर सवार होकर प्रभास क्षेत्र आ गए। वहाँ पर स्नान कर श्रद्धा पूर्वक मंगल कृत्य किया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् की माया से मोहित होकर सबों ने मैरेयक नामक मदिरा का पान किया जिसके नशे में सबों की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी तथा परस्पर में वे कलह करने लगे । उन लोगों में भयंकर युद्ध होने लगा । समुद्र के तट पर वे एक दूसरे पर अनेक प्रकार के आयुधों से प्रहार करने लगे । अनेक प्रकार के वाहनों पर सवार होकर प्रद्युम्न, साम्ब, सत्यकि, अक्रूर इत्यादि युदवंशी वीर क्रोध में भरकर एक दूसरे का नाश कर देना चाहते थे । कोई किसी को नहीं पहचान पा रहा था । अन्त में जब उनके सभी आयुध समाप्त हो गये तो समुद्र तट पर उगी हुई एरका नामक घास को उन सबों ने उखाड़ लिया । युदवंश के हाथ में आते ही वह घास वज्र के समान कठोर मुद्‌गर के रूप में परिणत हो गयी । उससे वे परस्पर में एक दूसरे पर प्रहार करने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण जब उन्हें रोकने के लिए आए तो उन्हें भी अपना शत्रु मानकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी पर भी उन सबों ने प्रहार करना चाहा । इस पर भगवान् और बलरामजी ने भी उन पर उस एरका घास से प्रहार करना प्रारम्भ किया । इस तरह समस्त युदवंशियों का जब नाश हो चुका था तो श्रीभगवान् ने सोचा कि पृथिवी का पूरा भार समाप्त हो गया । इसके पश्चात्—

रामः समुद्रबेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ।
तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ।।

(भा० ११/३०/२६)

श्रीबलरामजी ने समुद्र तट पर बैठकर परमात्मचिन्तन करते हुए आत्मनिष्ठ होकर आत्मा को परमात्मा में मिलाकर इस मानव शरीर का परित्याग कर दिया । बलरामजी का शरीर त्याग देखकर उदास भगवान् श्रीकृष्ण पिप्पलवृक्ष के नीचे पृथिवी पर लेट गये । उस समय उनका चतुर्भुज रूप था । वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल शरीर पर

पीताम्बर सुशोभित हो रहा था । समस्त अलंकारों से अलंकृत श्रीभगवान् का दिव्यमङ्गल विग्रह बनमाला से सुशोभित था श्रीभगवान् अपनी दाहिनी जंघा पर बायाँ चरण रखे हुए थे । उनका लाल-लाल तलवा रक्त कमल के समान चमक रहा था ।

मूसलावशेषायः खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा ।
मृगस्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ।।

(भा० ११/३०/३३)

मूसल के बचे हुए टुकड़े से जरा नामक बहेलिये ने अपने वाण की गासी बनाया था । भगवान् के लाल-लाल तलवे को हरिण का मुख जानकर श्रीभगवान् के तलवे में उसने बाण मारा । सन्निकट आकर जब उसने चतुर्भुज रूपधारी श्रीभगवान् को देखा तो अपने पापों के लिए क्षमा माँगने लगा । श्रीभगवान् ने उससे कहा कि मेरी ऐसी ही इच्छा थी; तुमने मेरे मन के अनुसार काम किया है अतएव तुम विमान पर बैठकर पुण्यवान् पुरुषों के लोक स्वर्ग चले जाओ । उसने श्रीभगवान् की तीन परिक्रमा की और स्वर्ग लोक चला गया ।

श्रीभगवान् के सारथि द्वारुक भगवान् का पता लगते हुए भगवान् की तुलसी की सुगन्धि के बल पर वहाँ आये जहाँ चतुर्भुज रूपधारी भगवान् अश्वत्थ वृक्ष के नीचे सोए थे । उन्होंने भगवान को प्रणाम किया और रोते हुए कहा कि भगवन् ! आपके बिना मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है । मुझे दिशाओं का भी ज्ञान नहीं रह गया है । दारुक की आँखों के सामने ही भगवान् का गरुड़ ध्वज, रथ ध्वजा पताका के साथ आकाश में उड़ गया । इसके पीछे भगवान् के दिव्य आयुध भी चले गये । आश्चर्य चकित दारुक को श्रीभगवान् ने कहा–

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ।
संकर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ।।

(भा० ११/३०/४६)

दारुक तुम यहाँ से द्वारका चले जाओ और मेरे बान्धवों को यादवों का परस्पर में संघर्ष करके विनाश, बलरामजी की मृत्यु तथा मेरा स्वधाम गमन सुना देना । तुम लोगों को अब द्वारका में नही रहना चाहिए । मेरे नहीं रहने पर समुद्र द्वारका पुरी को डुबो देगा । सब लोग

अपनी-अपनी सम्पत्ति लेकर अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ चले जायँ । तुम स्वयं भागवत धर्म को अपनाकर ज्ञाननिष्ठ हो जाना यह सारा संसार मेरी माया की रचना है । दारुक ने श्रीभगवान् की तीन परिक्रमा की और वह उदास होकर द्वारका चला गया ।

इस तरह श्रीमद्भागवत साप्ताहिक कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

एकतीसवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का स्वधाम गमन

श्रीशुकदेवजी ने राजा परिक्षित से कहा– दारुक के चले जाने पर श्रीभगवान् की अपनी लीला संवरण का दर्शन करने के लिए ब्रह्माजी, पार्वतीजी के साथ शंकरजी, इन्द्रादि देवता वहाँ पधारे । सभी यक्ष, किन्नर आदि भी आये । वे श्रीभगवान् की लीलाओं का गान कर रहे थे । तथा विमान से पुष्पों की वर्षा कर रहे थे ।

भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ।
संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रेन्यमीलयत् ।।
(भा० ११/३१/५)

सर्वव्यापक श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी तथा अपनी विभूति स्वरूप अन्य देवताओं को देखा तथा अपनी आत्मा को स्वरूप में स्थित करके कमल के समान मनोहर नेत्रों को बन्द कर लिया । इसके पश्चात् वे योगियों के लिए ध्यानमङ्गल अपने शरीर के साथ स्वधाम को चले गये। उन्होंने अपने शरीर को योगाग्नि में भस्म नहीं किया । उस समय स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे । आकाश से पुष्पों की वर्षा हो रही थी । श्रीभगवान् के पीछे-पीछे इस लोक से सत्य, धर्म, कीर्ति तथा श्रीदेवी भी चली गयीं । श्रीभगवान् को सशरीर अपने धाम में प्रवेश करते हुए ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं देख सके । श्रीभगवान् की गति अगोचर है। इसके पश्चात् सभी देवता भी अपने-अपने लोक चले गये ।

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा–

राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा,
मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ।
सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते,
संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ।।

(भा० ११/३१/११)

राजन् ! जिस प्रकार कोई नट अनेक प्रकार का स्वांग बनाता है, किन्तु वह सबों से निर्लेप रहता है, उसी तरह श्रीभगवान् का शरीर धारण करना तथा पुनः उसे संवृत कर लेना उनकी माया का विलास मात्र है । सृष्टि के प्रारम्भ में वे इस जगत् की सृष्टि करके, उसमें प्रवेश करके विहार करते हैं तथा संहार लीला करके वे अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं । वे इसी शरीर से यमपुरी जाकर अपने गुरु के मृत पुत्र को लाए; तुम्हारा शरीर ब्रह्मास्त्र से जल गया था,और तुम्हें भी उन्होंने जीवित कर दिया । उन्होंने काल के भी काल महाकाल शंकरजी को भी युद्ध में जीत लिया, तथा अपने शरीर पर प्रहार करने वाले जरा नामक व्याध को स्वर्ग प्रदान कर दिया । वे सदा के लिए भी अपने शरीर को यहाँ स्थिर कर सकते थे, किन्तु वे ऐसा करना नहीं चाहे । श्रीभगवान् सर्वशक्तिमान हैं । उन्होंने लोगों को शिक्षा दी कि आत्मनिष्ठ पुरुष को शरीर रखने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए । जो व्यक्ति प्रातःकाल भगवान् के परमधाम गमन का पाठ करेगा उसे भगवान् का परमंपद प्राप्त होगा ।

दारुक ने द्वारका आकर वसुदेवजी तथा उग्रसेनजी को सारा हाल सुना दिया । यादवों के विनाश की बात सुनकर द्वारका के सभी लोग मूर्छित हो गए। देवकीजी, रोहिणीजी तथा वसुदेवर्जी ने यह समाचार सुनकर अपने प्राण त्याग दिए । बलरामजी की पत्नियों ने उनके शरीर को तथा श्रीभगवान् की पुत्र वधुओं ने अपने पतियों के शरीर को लेकर चिता पर बैठकर अपने शरीर को भस्म कर दिया । श्रीभगवान् की पटरानियाँ भी अग्नि में प्रवेश कर गयीं । इसके पश्चात् शोकार्त अर्जुन ने अपने बान्धवों का पारलौकिक कर्म सम्पन्न किया। समुद्र ने भी श्रीभगवान् के मन्दिर को छोड़कर सारी द्वारका को डुबो दिया । आज भी भगवान् द्वारका के अपने भवन में नित्य निवास करते हैं । अर्जुन

ने द्वारका में वज्र को राज्याभिषिक्त किया तथा द्वारका के बचे हुए बाल, वृद्ध तथा श्रीभगवान् की रानियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान किया । श्रीभगवान् की इस पावन कर्म लीला का श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक श्रवण करने वाले व्यक्ति के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं।

इत्थं हरे र्भगवतो रुचिरावतारं,
वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि ।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्ये,
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ।।
(भा० ११/३१/२८)

जो मनुष्य इस तरह से भक्तों के भय को दूर करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार सम्बन्धी मनोहर पराक्रम जो इस श्रीमद्भागवत पुराण में तथा अन्य पुराणों में वर्णित है उन बाल लीलाओं और कैशोर लीलाओं का कीर्तन करता है, वह परमहंसों के प्राप्य भगवान् श्रीकृष्ण की परमा भक्ति को प्राप्त करता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के ग्यारहवें स्कन्ध का
इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह साप्तााहिक श्रीमद्भागवत कथा का
ग्यारहवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।

बारहवाँ स्कन्ध

पहला अध्याय

कलियुग के राजाओं के वंश का वर्णन

महाराज परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से पूछा–

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ।
कस्य वंशोऽभवत् पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ।।

(भा० १२/१/१)

महाराज ! यदुवंश विभूषण भगवान् श्रीकृष्ण के अपने धाम पधार जाने पर इस पृथिवी पर किसका राज्य हुआ? यह हमें आप बतलाएँ । श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि जरासंध के पिता बृहद्रथ के वंश में अन्तिम राजा पुरञ्जय हुआ । उसका सुनन्द नाम का मन्त्री अपने स्वामी का वध करके अपने पुत्र प्रद्योत को राज्याभिषिक्त करेगा। प्रद्योत के वंश में और चार राजा होगें– पालक, विशाखयूप, राजक तथा नन्दिवर्धन । ये एक सौ अड़तीस वर्ष तक राज्य करेंगे । इसके बाद शिशुनाग के वंश में क्रमशः दस राजा होगे–

शिशुनाग, काकवर्ण, क्षेमधर्मा, क्षेत्रज्ञ, विधिसार, अजातशत्रु, दर्भक, अजय, नन्दिवर्धन तथा महानन्दि ये सभी कलियुग में तीन सौ साठ वर्ष तक राज्य करेंगे। महापद्मनिधि के स्वामी महानन्दी की शूद्रा पत्नी में उत्पन्न नन्द नाम का राजा होगा । इसके पश्चात् प्रायः सभी राजा शूद्र एवं अधार्मिक होंगे । महापद्म के बलवान् प्रशासक होने के कारण उसे लोग परशुराम ही समझेंगे । उसके आठ पुत्र होगें और वे सौ वर्ष तक राज्य करेंगे । चाणक्य नामक ब्रह्मण उसके वंश का विनाश करेंगा ।

उसके पश्चात् पृथिवी पर मौर्यवंश का राज्य होगा । मौर्यवंश के क्रमशः ये राजा होंगे– चन्द्रगुप्त, वारिसार, अशोक, सुयश, संगत, शालिशूक, सोमशर्मा, शतधन्वा तथा वृहद्रथ । ये सभी राजा पृथिवी

पर एक सौ तैतीस वर्ष तक राज्य करेंगे । इसके पश्चात् पृथिवी पर एक सौ बारह वर्ष तक शुंङ्ग वंश का राज्य होगा । इस वंश के राजा होंगे– पुष्प मित्रशुंङ्ग, अग्निमित्र, सुज्येष्ठ, वसुमित्र, भद्रक, पुलिन्द, घोष, वज्रमित्र, भगदत्त तथा देवभूति । शुङ्ग वंश के अन्तिम राजा देवभूति को मारकर उनका मन्त्री कण्ववंशीय वसुदेव राजा होगा । इस वंश के चार राजा होंगे– वसुदेव, भूमित्र, नारायण और सुशर्मा । इन सबों का तीन सौ पैतालिस वर्ष तक राज्य होगा । सुशर्मा का वध करके उनका शूद्र सेवक बली राजा होगा । फिर कृष्ण राजा होगा । उसके पश्चात् इस वंश के श्री शान्तकर्ण पौर्णमास, लम्बोदर, चिविलक, मेघस्वाति, अटमान, अनिष्टकर्मा, हालेय, तलक, पुरीषभीरु, सुनन्द, तथा चकोर नामके राजा होंगे । इसी वंश का राजा होगा शिवस्वाति, गोमतीपुत्र, पुरीमान, मेदःशिरा, शिवस्कन्द यज्ञ श्री, विजय चन्द्रविज्ञ तथा लोमधि। ये सभी राजा चार सौ छप्पन वर्ष तक राज्य करेंगे । इसके पश्चात् अभीरजाति के राजा होंगे, दश गर्दभी जाति के तथा सोलह कंक जाति के राजा होंगे । इसके बाद आठ यवन राजा होंगे तथा चौदह तुर्क राजा होंगे । फिर दस गुरूण्ड तथा ग्यारह मौन राजा होंगे । ये सब एक हजार निन्यानबे वर्ष तक राज्य करेंगे । इन सबों के राज्य के समाप्त होने पर किलकिला नाम की नगरी में भूतनन्द नामक राजा होगा । इस तरह से शुकदेव जीने उनचालिस श्लोकों में कलियुग के राजाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया । उन्होंने कहा कि ये सभी राजा म्लेच्छप्राय होंगे । अधार्मिक, मृषाभाषी, असन्तुष्ट रजोगुणी एवं तमोगुणी स्वभाव के होंगे । तथा परस्पर में कलह करके विनिष्ट हो जायेंगे।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्‌भागवतकथा के बारहवें स्कन्ध का पहला अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

❀❀❀

दूसरा अध्याय

कलियुग के धर्म का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा कि कलियुग में धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, लोगों की आयु , बल तथा स्मृति विनष्ट हों जायेंगे । धनी पुरुष ही कलियुग में सदाचारी तथा कुलीन माना जायेगा । बालवान् के अनुकूल ही न्याय होगा । युवक युवती के परस्पर रूचि के अनुसार विवाह होगा । कपटी मनुष्य ही व्यावहारिक होगा । वस्त्र, दण्ड इत्यादि ही आश्रमों के परिचायक होंगे । जो बोलने में चतुर होगा वही पण्डित माना जायेगा । धनी व्यक्ति ही साधु होगा और निर्धन असाधु। केश संवारना ही शरीर का संस्कार माना जायेगा । वही सत्यवादी माना जायेगा जो ढीठ होगा । परिवार का पालन कर लेना ही दक्षता होगी ।

यशः प्राप्ति के लिए लोग धर्म करेंगे । राजा लोग प्रजाओं की पत्नी तथा सम्पति का अपहरण कर लेंगे । दुखी प्रजा पर्वतों एवं जंगलों में निवास करेगी । अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि के कारण प्रजाएँ विनष्ट हो जायेंगी । लोग भूख, प्यास एवं रोग से दुःखी एवं चिन्तित रहेंगे । लोगों की बडी आयु होगी तो वे तीस अथवा बीस वर्ष तक जीने लगेगें । वेद विहित वर्णो एवं आश्रमों के धर्म विनष्ट हो जायेंगे। प्रायः सभी लोग शूद्र हो जायेंगे । तथा गधों जैसा आचरण करने लगेंगे। उसी समय धर्म की रक्षा करने के लिए सम्पूर्ण जगच्छरीरक चराचर के स्वामी श्रीभगवान् का अवतार होगा ।

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ।।

(भा० १२/२/१८)

उस समय शम्भल नामक ग्राम में विष्णुयश नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे । उनका हृदय उदार एवं भक्ति से परिपूर्ण होगा । उनके ही घर में भगवान् कल्कि का अवतार होगा । वे देवदत्त नामक घोड़े

पर सवार होकर सभी दुष्ट राजाओं का अपनी तलवार से काटकर विनाश कर देगे । उससे समस्त प्रजाओं का हृदय पवित्र हो जायेगा। श्री भगवान् के श्रीविग्रह का दिव्य गन्ध चारो ओर फैल जायेगा । सबों के हृदय में श्री भगवान् का निवास हो जायेगा । सब लोग सात्त्विक प्रवृति के हो जोयेंगे ।

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्य बृहस्पती ।
एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति तत् कृतम् ।।
(भा० १२/२/२४)

जिस समय चन्द्रमा,सूर्य एवं बृहस्पति एक ही समय एक ही साथ पुष्य नक्षत्र के प्रथम पल में प्रवेश करते है, एक ही राशि पर आते है उसी समय सत्ययुग का प्रारम्भ होता है । राजन् मैंने तुम्हारे समक्ष सूर्य वंश एवं चन्द्रवंश के समस्त राजाओं का वर्णन किया । भगवान् श्रीकृष्ण जब इस पृथिवीलोक को छोडकर अपने धाम चले गए उसी समय से कलियुग पृथिवी पर आ गया । जिस समय सप्तर्षि एक नक्षत्र पर रहते हैं उसी समय कलियुग का प्रारम्भ होता है । कलियुग की आयु देवताओं के वर्ष से बारह सौ (१२००) वर्ष की होती है तथा मनुष्यों के वर्ष से चार लाख वर्ष की होती है । देवताओं की वर्ष गणना के अनुसार जब कलियुग के एक हजार वर्ष बीत जायेंगे तब कलियुग में भगवान् का अवतार होगा ।

देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरूश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ।
ताविहैत्यकलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ ।
वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत् प्रथयिष्यतः ।
(भा० १२/२/३७-३८)

भीष्मपितामह के पिता राजा शन्तनु के भाई देवापि तथा ईक्ष्वाकु वंशीय मरू इस समय कलाप ग्राम में रहते हैं । वे दोनो बहुत बडे योग बल संयुक्त हैं । कलियुग के अन्त में कल्कि भगवान् की आज्ञा से वे फिर यहाँ आयेंगे तथा पहले के ही समान वर्णाश्रम धर्म का विस्तार करेंगे । सभी युगों के अपने-अपने धर्म पृथक्-पृथक् होते हैं । काल सबों से बलवान् है, इस पृथिवी के सभी जीव काल कवलित हो जाते हैं।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के बारहवें का
दूसराँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तीसरा अध्याय

भगवन्नाम संकीर्तन ही समस्त दोषों से बचने का उपाय है

श्रीशुकदेवजी ने महाराज प्रीक्षित् से कहा कि जब राजा लोग पृथिवी पर विजय प्राप्त करने के लिए व्याकुल होते है तो यह पृथिवी उनकी बुद्धि पर हॅसती है कि ये राजा अपने क्षणभंगुर शरीर पर कितना विश्वस्त हैं । वे यह नहीं सोचते कि यह हमारा प्रयास किसलिए है? वे एक राज्य से दूसरे राज्य को जीतकर सन्तुष्ट नहीं होते । वे दूसरे-दूसरे द्वीपों पर विजय प्राप्त करके सम्पूर्ण पृथिवी का स्वामी बनने के लिए निरन्तर व्याकुल रहते हैं । उनके इस तुच्छ प्रयास को देखकर पृथिवी सोचती है–

यां विसृज्यैव मनव स्तत् सुताश्च कुरूद्वह ।
गता यथागतं युद्धे तां जेष्यन्त्यबुद्धयः ।।

(भा० १२/३/६)

बडे-बडे मनु और उनके वीर-पुत्र मुझे ज्यों-की-त्यों छोडकर जहॉ से आये थे वहीं खाली हाथ लौट गए , मुझे अपने साथ नहीं ले जा सके । अब ये अज्ञानी राजा मुझे युद्ध में जीतकर अपने वश में करना चाहते हैं । यहॉ तो पृथिवी के लिए पिता पुत्र तथा भाई-भाई आपस में कलह करते हैं । वे सम्पूर्ण पृथिवी को अपना समझते हैं । पृथु, पुरुरवा, गाधि, ययाति, मान्धाता, काकुत्स्थ, रावण, भौमासुर इत्यादि सभी विश्व विजयी राजा कालकवलित हो गए, अब तो वे कथावशेष है ।

राजन् मैनें इन बडे-बडे राजाओं की कथा तुम्हें इस लिए सुनाया कि तुम्हारे मन में ज्ञान और वैराग्य का उदय हो । यह सारा संसार मायिक है।

यस्तूत्तमश्लोक गुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णाममङ्गलघ्नः ।
तमेवनित्यं श्रृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ।।

(भा० १२/३/१५)

भगवान् श्रीकृष्ण का गुणानुंवाद सभी अमङ्गलों का विनाश करने वाला है । बडे-बडे महात्मा उसी का गान करते रहते हैं । जो व्यक्ति चाहता है कि हमें भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो उसे नित्य निरन्तर भगवान् के दिव्य गुणानुवाद का ही श्रावण करते रहना चाहिए ।

श्री शुकदेवजी की बातें सुनकर महाराज परीक्षित् ने कहा कि मुझे तो कलियुग में सारे दोष ही दिखायी देतें हैं । अतएव आप मुझे भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों को ही सुनाएँ । श्रीशुकदेवजी ने कहा– सत्ययुग में धर्म के चार पाद होते हैं– सत्य, दया, दान एवं तप। इस युग के सभी लोग पूर्ण धार्मिक होते हैं, धर्म ही उनका स्वरूप होता है। वे सन्तुष्ट, दयालु, जितेन्द्रिय एवं सहिष्णु होते हैं । प्रायः सब लोग समदर्शी होते हैं । त्रेता युग में धर्म का चौथाई अंश क्षीण हो जाता है। प्रायः सभी लोग वेदज्ञ होते हैं । द्वापर युग में हिंसा, द्वेष, असंतोष तथा झूठ बढ़ जाते हैं । ये अधर्म के चार चरण हैं । लोग कर्मकाण्ड प्रधान होते हैं । इनका कुटुबम्ब बहुत बडा होता है । कलियुग में तो अधर्म के उपर्युक्त चारों चरण बढ जाते हैं तथा लोग अत्याचारी अनाचारी हो जाते हैं । मानव जीवन में हमेशा सत्ययुग आदि युग आते रहते हैं। जब मन ज्ञान, धर्म इत्यादि सात्त्विक कर्मो में लगे तो उस समय सत्ययुग समझना चाहिए । जिस समय मनुष्य की प्रवृत्ति लौकिक एवं पारलौकिक सुख भोगों में हो, उस समय समझना चाहिए कि मेरे शरीर में त्रेता युग काम कर रहा है । जब सकाम कर्मो में प्रवृत्ति लोभ अभिमान, मद एवं मत्सर में रूचि हो तो समझना चाहिए द्वापर युग काम कर रहा है । जिस समय निद्रा तन्द्रा, झूठ कपट में प्रवृत्ति हो तो समझना चाहिए कि कलियुग काम कर रहा है । इस युग में सर्वत्र अराजकता फैल जाती है । राजा गण प्रजाओं का शोषण करने लग जाते है । सभी आश्रमों के लोग अपने धर्म का परित्याग कर देते है। सेवक गण निर्धन स्वामी का, पत्नियाँ अपने पतियों का परित्याग कर देती हैं । कलियुग में मनुष्य का प्रेम काम वासना की पूर्ति के लिए होता है । शूद्र भी तपस्वियों का वेष बनाकर अपना पेट पालने लगते है । प्रजाएँ अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि से दुखी हो जाती हैं । लोग इतने मोहित हो जाते हैं कि सकल लोकाधिपति श्री भगवान् की भी आराधना नहीं करते हैं–

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः,
पतन स्खलन वा, विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिम्
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ।।

(भा० १२/३/४४)

यदि कोई मनुष्य मरते समय आतुरता की स्थिति में अथवा गिरते या फिसलते हुए किसी तरह भगवान् का नाम उच्चारण कर लेता है तो उसके सारे कर्मबन्धन विनष्ट हो जाते हैं । उसे उत्तम गति प्राप्त होती है। कलियुग से प्रभावित जीव उन भगवान् की आराधना से भी पराङ्मुख हो जाते हें । जिसके हृदय में श्री भगवान् का निवास हो जाता है, उसके समस्त कलियुग के दोष विनष्ट हो जाते हैं । जो भगवान् के नाम का संकीर्तन ध्यान, पूजन करता है उसके करोड़ों जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं । परीक्षित् अब तुम्हारी मृत्यु का समय आ गया है । अतएव अन्तःकरण की समस्त वृत्तियों को रोककर हृदय में श्री भगवान् को बैठा लो । जो व्यक्ति मृत्युकाल में श्री भगवान् का ध्यान करता है उसे श्री भगवान् अपने स्वरूप को प्रदान कर देते हैं । कलियुग दोषाकार है किन्तु उसका एक महान् गुण है कि भगवान् के नामकीर्तन मात्र से मानव मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत्कथा के बारहवें स्कन्ध का तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

चौथा अध्याय

चार प्रकार के प्रलय का वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा कि चारो युगों के एक हजार बार बीत जाने पर ब्रह्म जी का एक दिन होता है । उसी को कल्प भी कहते है। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं । कल्प के ही बराबर ब्रह्म जी की रात होती है । उसे ही नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । इस समय तीनों लोक लीन हो जाते हैं । इस प्रलय काल में श्री भगवान् सम्पूर्ण विश्व को अपने

भीतर समेट कर शेष शय्या पर शयन करते है । ब्रह्मजी की सौ वर्ष की आयु बीत जाने पर प्राकृतिक प्रलय होता है । इस प्रलय में पञ्चतन्मात्राएँ महत्तत्त्व एवं अहंकार का प्रकृति में लय हो जाता है । इस प्रलय की बेला आने पर सौ वर्ष की अनावृष्टि हो जाती है । भूख प्यास से व्याकुल प्रजा एक दूसरे को खाने लगं जाती है । सूर्य पृथिवी के सारे पदार्थों का रस सोख लेता है । उस समय संकर्षण के मुख से प्रलय कालीन सांवर्तक अग्नि प्रकट होकर ब्रह्मलोक पर्यन्त को जला देती है । सारा जगत् भस्म हो जाता है । तब सांवर्तक वायु सैकडों वर्ष तक चलती रहती है । फिर सैकडों वर्ष तक लगातार मुसलाधार प्रलय कालीन वर्षा होती रहती है फिर सारा संसार एक समुद्र के रूप में परिणत हो जाता है । इस जल प्रलय के पश्चात् अपने कारण तत्त्व में सभी तत्त्व लीन हो जाते हैं । उस समय कोई भी प्राकृतिक विकार नहीं रह जाता है । उस समय अव्यक्त प्रकृति रह जाती है । इसे ही प्राकृतप्रलय कहते है ।

आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि यह जो कुछ भी भेद प्रतीत हो रहा है वह ज्ञान स्वरूप आत्मा में ही प्रतीत होता है । ये सबके सब उसी तरह परमात्मा का स्वरूप हैं जिस प्रकार दीपक चक्षुरिन्द्रिय और रूप सबके सब तैजस हैं । यह सारा जगत् मायामात्र है और आत्मा में ही प्रतीत होता है । जिस तरह पट तन्तु से भिन्न कुछ नहीं है उसी तरह जगत् ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है । जैसे एक ही सुवर्ण विभिन्न आभूषणों के रूप में परिणत हो जाता है, उसी तरह एक ही परमात्मा जड़-चेतनात्मक जगत् के रूप में परिणत हो जाता है । जिस तरह से सूर्य से उत्पन्न मेघ सूर्य के ही द्वारा प्रकाशित होता है तथा सूर्य के दर्शन में बाधक बन जाता है । उसी तरह ब्रह्म से उत्पन्न होने वाला अहंकार ब्रह्म से ही प्रकाशित होता है तथा ब्रह्म दर्शन में बाधक हो जाता है । उस अहंकार का विनाश परमात्म साक्षात्कार के द्वारा होता है ।

यदैवमेतेन विवेक हेतिना,
मायामयाहंकरणात्मबन्धनम् ।
छित्त्वाच्युतात्माऽनुभवोऽवतिष्ठते,
तमाहुरात्यन्तिकमङ्ग सम्प्लवम् ।।

(भा० १२/४/३४)

जब जीव विवेक के खड्ग से मायामय अहंकार का बन्धन काट देता है, तब वह आत्मनिष्ठ हो जाता है । उसे ही आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं ।

कुछ विचारक सभी जीवों का नित्य प्रलय तथा नित्य उत्पत्ति मानते है, इसे ही नित्य प्रलय कहते हैं । संसार के परिणामी पदार्थ नदी के प्रवाह और दीपशिखा इत्यादि जिस तरह प्रतिक्षण बदलते रहते हैं, उसी तरह ये देह आदि भी काल के प्रवाह में प्रतिक्षण बदल रहे हैं । उनकी उत्पत्ति एवं प्रलय होते हैं, यही मानना चाहिए यही नित्य प्रलय है । इस तरह प्रलय चार प्रकार के होते हैं– नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृत प्रलय तथा आत्यन्तिक प्रलय । श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि मैनें इस तरह से श्री भगवान् की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन किया है ।

संसार सिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोः
नान्यः प्लवो भगवतः पुरूषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण,
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ।।

(भा० १२/४/४०)

जो लोग इस दुस्तर संसार सागर को पार करना चाहते हैं जो लोग अनेक प्रकार के दुःख रूपी दावाग्नि से दग्ध हो रहे हैं, उनके लिए पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं की कथा रूपी रस को छोडकर कोई दूसरा साधन नहीं है । इस भागवत संहिता का सर्वप्रथम भगवान् नारायण ने नारद जी को उपदेश दिया, उन्होने इसका उपदेश व्यासजी को दिया, व्यासजी ने मुझको इसका उपदेश दिया । यह संहिता वेद सम्मित है । इसे सूत जी नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों को सुनायेंगे।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत् कथा के बारहवें स्कन्ध का
चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पॉचवॉ अध्याय

श्रीशुकदेवजी का अन्तिम उपदेश

जिन श्री हरि की प्रसाद लीला ब्रह्माजी हैं और क्रोध लीला रुद्र हैं, उन्हीं श्री हरि का इस पुराण में बार-बार वर्णन किया गया है । राजन् मैं मरूँगा यह अपनी पशुबुद्धि छोड़ दो । शरीर विनष्ट होता है आत्मा न तो उत्पन्न होती है और न तो मरती है । तुम शरीर नहीं हो। जैसे स्वप्न में सिर का कटना, मरना आदि स्वाप्न शरीर का होता है, आत्मा का नहीं, उसी तरह जन्म और मरण पाञ्चभौतिक शरीर का होता है । आत्मा का नहीं । आत्मा तो अजर-अमर है । जिस तरह घट के फूट जाने पर घटाकाश महाकाश में मिल जाता है, उसी तरह शरीर का अन्तिम पात हो जाने पर जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

मनः सृजति वै देहान् गुणान्कर्माणि चात्मनः ।
तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ।।

(भा० १२/५/६)

मन ही देह, गुणो, एवं कर्मो की सृष्टि करता है । उस मन को माया बनाती है । उसी से जीव संसारचक्र में पड़ता है । जब तक दीपक में तेल, बत्ती, तथा अग्नि संयोग बना रहता है तब तक दीपक बना रहता है, उसी तरह सत्त्व, रजस् एवं तमस् वृत्ति के द्वारा देहजन्य संसार बना रहता है । व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों से पृथक् आत्मा स्वयम्पकाश है । वह परमात्मा के सदृश है, तथा आकाश के समान देहादि का आधार है । इस तरह परमात्मचिन्तन के द्वारा तुम आविर्भूत गुणाष्टक आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करो । ब्राह्मण के वाक्य से प्रेरित तक्षक तुम्हें नहीं जला सकता है । तुम परमात्मात्मक हो । परमात्मा मृत्यु की भी मृत्यु है । उसे मृत्यु नहीं जला सकती है । तुम अपनी आत्मा को निर्दोष आत्मा में समाहित करके अपने ब्रह्मात्मक, परमधाम स्वरूप आत्मा का चिन्तन करों। तक्षक अपने विषैली जिह्वा से तुम्हारे

पैरों में काटे तो तुम अपने को परमात्मात्मक रूप से चिन्तन करना शरीर रूप से नहीं । तुमने जो पूछा था वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब क्या सुनना चाहते हो ।

इस तरह से साप्ताहिक श्रीमद्भागवत्कथा के बारहवें स्कन्ध का पॉचवॉ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

छठा अध्याय

परीक्षित् को परमपद प्राप्ति तथा जनमेजय का सर्पसत्र

पहले के अध्यायों में उपदिष्ट अर्थो को सुनकर राजा परीक्षित् ने श्री शुकदेव जी के चरणों में प्रणाम किया और कहा–

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ।
श्रावितो यच्च में साक्षादनादिनिधनो हरिः ।।
(भा० १२/६/२)

भगवन् ! आप मूर्तिमान् करुणा स्वरूप हैं । आपने मुझपर कृपाकर के अनादि एवं अनन्त श्री हरि की लीलाओं का वर्णन किया। अब मैं आपकी कृपा से अनुगृहीत एवं कृतकृत्य हो गया हूॅ । स्वार्थ एवं परमार्थ के ज्ञान से रहित संसारी जीव संसार दावानल से दग्ध हो रहे हैं । उन जीवों के ऊपर भगवदात्मक महात्माओं की कृपा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आपने श्री भगवान् के चरित्र वाली इस पुराण संहिता को मुझे सुनाया है । अब मुझे तक्षक तथा मृत्यु का कोई भी भय नहीं है । अब मैं परमशान्ति को प्राप्त कर चुका हूॅ । आप मुझे आज्ञा दें कि मैं मौन हो जाऊँ और श्री भगवान् में ही मन को लगाकर अपने प्राणों का परित्याग कर दूॅ । मेरा सारा अज्ञान विनष्ट हो गया और मै ज्ञान-विज्ञान-निष्ठ हो गया हॅू ।

सूतजी ने शौनकादिक महर्षियों से कहा कि इसके पश्चात् राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी की अर्चना की और वे परमात्म चिन्तन में मग्न हो गए । उन्होंने श्वास की गति रोक ली और पूर्वाग्रकुशासन पर

उत्तराभिमुख गंगा के तट पर बैठ गए । क्रुद्ध ब्राह्मण पुत्र के द्वारा प्रेषित तक्षक ने रास्ते में आते हुए विषवैद्य धन्वन्तरि को धन प्रदान करके लौटा दिया और स्वयं राजा को आकर दंस लिया । तक्षक की विषाग्नि से राजा परीक्षित् का शरीर जलकर भस्म हो गया ।

अन्तर कथा

पुराणान्तरों में यह कथा आयी है कि ब्राह्मण के द्वारा प्रेरित होकर तक्षक राजा परीक्षित् को दंसने के लिए ब्राह्मण का वेष बनाकर जा रहा था । उसी समय विषवैद्य धन्वन्तरि भी यह सोच कर जा रहे थे कि आज तक्षक राजा परीक्षित् को काट लेगा । राजा की मृत्यु हो जायेगी और मैं अपनी मन्त्रविद्या से राजा को जीवित कर दूँगा ओर मुझे प्रभूत मात्रा में सम्पत्ति मिलेगी। विषवैद्य ने उसका परिचय पूछा तो तक्षक ने भी धन्वन्तरि से उनका परिचय पूछा । धन्वन्तरि ने बतलाया कि आज तक्षक के काटने से राजा परीक्षित् की मृत्यु हो जायेगी । मैं अपने मन्त्र के बल से राजा को पुनः जीवित कर दूँगा और बहुत अधिक धन सम्पत्ति प्राप्त कर लूँगा ।

धन्वन्तरि की बातों को सुनकर तक्षक ने कहा कि मैं ही तक्षक हूँ । आइये हमारी तथा आपकी शक्ति की परीक्षा हो जाय। इसके बाद तक्षक ने सर्प का रूप धारण करके एक हरे-भरे वटवृक्ष को सूंघ लिया । उसके सूंघते ही वह विशाल बटवृक्ष जलकर भस्म हो गया । धन्वन्तरि ने भी अपने कमण्डलु से मन्त्रपूत जल निकाला और उस भस्म राशि पर छिड़का । जल छिड़कते ही वह भस्मरशि विशाल वट्वृक्ष के रूप में परिणत हो गयी ।

धन्वन्तरि के मन्त्र बल के देखकर तक्षक आश्चर्यचकित हो गया । उसने धन्वन्तरि से कहा कि आप धन सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राजा परीक्षित् के पास जा रहे हैं । जितनी सम्पत्ति चाहिए मुझसे ले लीजिये । आप यदि राजा को जिला देंगे तो एक ब्राह्मण का वाक्य व्यर्थ हो जायेगा । सभी राजा ब्राह्मणों का अपमान करने लगेंगे । अतएव सम्पत्ति लेकर आप लौट जायँ । तक्षक की बातों पर विचार करके धन्वन्तरि लौट गए ।

जाते हुए तक्षक ने विचार किया कि हो सकता है धन्वन्तरि फिर आ जायँ और राजा को जिला दें । वह समय और उपाय का चिन्तन करने लगा । सायंकाल की बेला हो रही थी । सूर्यास्त होने वाला था । राजा परीक्षित् ने सोचा कि मैं अन्तिम सूर्यार्घ्य दे लूँ । उसी समय राजा परीक्षित ने देखा कि गंगा में एक सुन्दर कमल का पुष्प बहता हुआ चला आ रहा है। सूर्यार्घ्य देने के लिए राजा ने उस पुष्प को अपनी अंजलि में ले लिया । उसी में तक्षक एक छोटा कीड़ा बनकर बैठा था । उसने विशाल रूप धारण कर राजा परीक्षित् को दंस लिया । राजा का शरीर जलकर भस्म हो गया और गंगा के तीव्र प्रवाह में प्रवाहित हो गया । तक्षक भी वहाँ से अदृश्य हो गया ।

यह देखकर त्रैलोक्य में हाहाकर मच गया । सब लोग आश्चर्य चकित हो गए । देवताओं ने दुन्दुभी बजायी और पुष्पों की वृष्टि की । जनमेजय ने जब यह सुना तो उन्होंने आभिचारिक सर्प सत्र प्रारम्भ कर दिया तथा ब्राह्मणों द्वारा अग्नि में सर्पों की आहुति दिलाने लगे । यह देखकर भयभीत तक्षक इन्द्र के शरण में चला गया । जनमेजय ने तक्षक को नहीं आते हुए देखकर ऋषियों से पूछा कि तक्षक क्यों नहीं आ रहा है । ऋषियों ने कहा तक्षक की रक्षा इन्द्र कर रहे हैं । जनमेजय ने कहा–

सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ।

(भा० १२/६/२०)

ब्राह्मणों ! आप लोग इन्द्र के साथ तक्षक को अग्नि में क्यों नहीं गिरा देते हैं ? इसके पश्चात् ब्राह्मणों ने इन्द्र के साथ तक्षक का अग्नि कुण्ड में आवाहन किया । ऐसा करते ही इन्द्र तक्षक तथा विमान के साथ गिरने लगे । यह देखकर बृहस्पतिजी जन्मेजय के पास आए और बोले राजन् ! आप तक्षक को नहीं मार सकते हैं । उसने अमृत पी लिया है । वह अजर-अमर हो गया है । जीव तो अपने कर्मों के अनुसार जन्मता एवं मरता है । सर्प निर्दोष हैं इन सबों को मत मारिए। इस सपसत्र को बन्द कीजिए । सूतजी ने कहा कि इसके पश्चात्

जनमेजय ने उस सर्पसत्र को बन्द कर दिया और वृहस्पतिजी की पूजा की। ब्राह्मणों यह भगवान् की माया ही मनुष्यों से विभिन्न प्रकार का कर्म करवाती है। इसका स्वरूप आप सुनें-

न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता,
मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ॥
न यद्विवादो विविधस्तदाश्रये,
मनश्च संकल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥
(भा० १२/६/३०)

यह दम्भी है, यह कपटी है, इस प्रकार की होने वाली बुद्धि में जो बार-बार दम्भ एवं कपट की प्रतीति होती है, वही माया है। जहाँ पर आत्मवादी पुरुष आत्मा एवं परमात्मा की चर्चा करते हैं, वहाँ पर इसका कुछ भी नहीं चलता है, वहाँ पर यह माया किसी प्रकार नहीं रहती है। वहाँ पर माया के कार्य मोह इत्यादि नहीं होते। परमात्मा के स्वरूप में किसी प्रकार का विवाद भी नहीं हैं। यह संकल्प एवं विकल्प तो मन की वृत्तियाँ हैं। किन्तु वहाँ यह मन भी शान्त हो जाता है। उस आत्मज्ञान को प्राप्त करके मुनिजन निरहंकार होकर आत्मनिष्ठ हो जाते हैं।

परं पदं वैष्णवमामनन्तितद्
यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदाः,
हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥
(अ० १२/६/३२)

नेति नेति श्रुति जिसे सर्वोत्कृष्ट बतलाती है उस सर्वोत्कृष्ट भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करने के लिए उससे भिन्न समस्त पदार्थो का परित्याग करने की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरुष अपनी सम्पूर्ण दुरात्मता का परित्याग करके एकमात्र परमात्मा से ही अपना संबन्ध स्थापित करके समाहित हो जाते हैं तथा अपने हृदयाकाश में स्थित श्रीभगवान् को प्राप्त कर लेते हैं। भगवान विष्णु के उस परमपद को वही पुरूष प्राप्त करता है जो सभी प्रकार के अहंकार एवं ममकार का परित्याग कर देता है। वह किसी से भी वैर नहीं करता है। उन भगवान् श्रीकृष्ण के

चरणों का ध्यान करके मैंने इस श्रीमद् भागवत संहिता का ज्ञान प्राप्त किया है । उन्हीं श्री भगवान् को मेरा नमस्कार है । इसके पश्चात् शौनक ऋषि ने वेदों के भेद के विषय में प्रश्न किया तो सूतजी ने कहा– सृष्टि के प्रारम्भ में जब ब्रह्माजी समाधिस्थ थे तो उनके हृदयाकाश से नाद उत्पन्न हुआ । उसी नाद की उपासना करके योगीजन मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं । उसी नाद से अकार उकार एवं मकार इन तीन मात्राओं से युक्त ओम् प्रकट हुआ । वह स्वयं परमात्म स्वरूप है । ओम् ही सभी मन्त्रों, वेदों एवं उपनिषदों का सनातन बीज है । ओंकार में तीन वर्ण हैं, अ, उ, एवं म् । ये तीनों प्राकृतिक गुणों, तीनों लोकों तथा तीनों वेदों के भाव को धारण करते हैं । ओंकार से ही ब्रह्मा जी ने सम्पूर्ण वर्णमाला की रचना की । उसी से उन्होंने चार वेदों को प्रकट किया । द्वापर के अन्त में ऋषियों ने वेदों का विभाजन किया । वैवस्वतमन्वन्तर में महर्षि पराशर द्वारा सत्यवती के गर्भ से भगवान् के अंशावतार व्यासजी हुए । उन्होंने वर्तमान युग में वेदों का चार विभाग किया । वही, ऋग्, यजुः, साम एवं अथर्ववेद के नाम से प्रख्यात हुए । पैल नामक महर्षि को ऋग्वेद की, वैशम्पायन महर्षि को यजुर्वेद की, जैमिनि महर्षि को सामवेद की तथा सुमन्तु महर्षि को अथर्ववेद की शिक्षा दी । आगे चलकर इस ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएँ हो गयीं ।

वैशम्पायन महर्षि के कुछ शिष्यों का नाम चरकाध्वर्यु पड़ा क्योंकि इन लोगों ने अपने आचार्य को ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त करने के लिए तपस्या किया था । वैशम्पायन के शिष्यों में महर्षि याज्ञवल्क्य भी थे । उन्होंने अपने आचार्य से कहा– ये चरकाध्वर्यु ब्राह्मण अल्पशक्ति वाले हैं मैं आपके प्रायश्चित्त के लिए कठिन तपस्या करूँगा। याज्ञवल्क्य महर्षि की बातें सुनकर क्रुद्ध वैशम्पायन महर्षि ने कहा तुमने ब्राह्मणों का अपमान किया है । अतएव मेरे द्वारा प्राप्त वेद का तुमे परित्याग करके यहॉ से चले जाओ । आचार्य की आज्ञा पाकर याज्ञवल्वय महर्षि ने अधीत वेद का वमन कर दिया और वहॉ

से वे चले गये । दूसरे ब्राह्मणों ने तितिर का रूप धारण करके उस वेद को चुग लिया । वह संहिता तैत्तिरीय संहिता कहलायी।

इसके पश्चात् भरद्वाज महर्षि ने भगवान् सूर्य की उपासना करके अभूतपूर्व यजुर्वेद संहिता का ज्ञान प्राप्त किया जिसकी आगे चलकर महर्षि याज्ञवल्वय ने पन्द्रह शाखाएँ की । ये संहिताएँ ही वाजसनेयी शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुईं । महर्षि जैमिनि के एक प्रशिष्य सुकर्मा ने सामवेद की एक हजार शाखाएँ की ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवतकथा के बारहवें स्कन्ध का छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सातवाँ अध्याय

अथर्व वेद की शाखाएँ तथा पुराण का लक्षण

अथर्ववेद के ज्ञाता महर्षि सुमन्तु थे । उन्होंने कबन्ध को यह संहिता पढायी । कबन्ध ने अथर्ववेद संहिता का दो भाग किया और पथ्य एवं वेदादर्श को उसे पढाया । वेदादर्श के चार शिष्य हुए शौकायनि, ब्रह्मवलि, मोदोष और पिप्पलायनि । पथ्य के भी तीन शिष्य हुए- कुमुद, शुनक तथा जाजलि । शुनक के दो शिष्य हुए- बभ्रु तथा सैन्धवायन । इस वेद के आगे भी अनेक अध्येता हुए ।

सूतजी ने शौनक महर्षि से कहा कि पुराणों के छह आचार्य हुए हैं त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत । इन लोगों ने मेरे पिता रोमहर्षण से पुराणों की छह संहिताओं का अध्ययन किया । इसकी और भी चार मूल संहिताएँ थी जिनका अध्ययन कश्यप, सावर्णि, अवृतवर्ण तथा मैंने किया था ।

श्रीसूतजी ने कहा पुराणों के दस लक्षण होते है– सर्ग, विसर्ग, वृति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, (प्रलय (ऊति) हेतु) और अपाश्रय । कुछ आचार्य पुराणों के पॉच ही लक्षण मानते हैं । बड़े पुराणों में दसो लक्षण होते हैं तथा छोटे पुराणों में पॉच ही ।

जब मूल प्रकृति के तीन गुणों में क्षोभ होता है तो महत् तत्त्व उत्पन्न होता है । उससे सात्त्विक, राजस, एवं तामस ये तीन प्रकार के अहंकार होते है । फिर पंच तन्मात्राएँ, पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, पॉच कर्मेन्द्रियॉ एवं पॉच विषयों की उत्पत्ति होती है । इस उत्पत्ति के क्रम को ही सर्ग कहते हैं । सृष्टि के वासनामय समाहार को विसर्ग कहते हैं । चर प्राणियों की वृत्ति (जीविका निर्वाह सामग्री) अचर पदार्थ है । श्रीभगवान् विभिन्न अवतारों को लेकर वैदिक धर्म की रक्षा करते हैं, इसे ही रक्षा कहते हैं । मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि तथा भगवान् के अंशावतार इन छह विशेषताओं से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं । ब्रह्मा जी से उत्पन्न राजाओं की वंश परम्परा को वंश कहते हैं । तथा उनके चरित्र को वंशानुचरित कहते हैं । प्रलय का ही दूसरा नाम संस्था है । सर्ग एवं विसर्ग का हेतु जीव की वृति जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय अवस्थाओं में अनुगत जीव की वृति ही अपाश्रय है । इन सभी लक्षणों से युक्त पुराणों की संख्या अठारह है । उनके नाम हैं–

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लिङ्गं सगारुडम् ।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ,
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमितित्रिषट् ।।

(भा० १२/७/२३-२४)

ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिङ्गपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण ये अठारह पुराण है।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के बारहवें स्कन्ध का सातवॉ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

आठवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजी की तपस्या एवं वर प्राप्ति

शौनक महर्षि ने सूतजी से प्रश्न किया कि सुना है कि महर्षि मार्कण्डेय चिरंजीवि हैं । वे प्रलय काल में भी जीवित रहते हैं । उन्होंने भगवान् बालमुकुन्द का दर्शन किया था । किन्तु मार्कण्डेय जी तो इसी कल्प में हमारे वंश में उत्पन्न हुए हैं । बीच में कोई प्रलय भी नहीं हुआ। फिर प्रलय काल में उनके जीवित रहने की बात कैसे कही जा सकती है ?

सूतजी ने कहा कि आपने लोगों के भ्रम को दूर करने वाला प्रश्न किया है । अतएव आप सुनें । यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचारी मार्कण्डेय बृहद्व्रत धारण करके गुरुकुल में निवास करते थे, वे भिक्षा मांगकर लाते थे । आचार्य की आज्ञा प्राप्त कर एक शाम भोजन करते थे । आचार्य की आज्ञा के अभाव में उपवास कर जाते थे । इस तरह तपस्यारत रहकर मार्कण्डेय महर्षि ने करोड़ों वर्ष व्यतीत किया और उन्होंने मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लिया । उनकी तपस्या को देखकर ब्रह्माजी एवं शंकरजी भी आश्चर्य चकित थे । कठोर तपस्या के कारण उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया । वे श्रीभगवान् का ध्यान कर रहे थे । इस तरह तपस्या करते हुए छह मन्वन्तर बीत गये । इस सातवें मन्वन्तर में इन्द्र को जब उनकी तपस्या का पता चला तो वे शंकित हो गये और महर्षि की तपस्या में विघ्न डालना प्रारम्भ किये ।

मार्कण्डेय महर्षि को विचलित करने के लिए इन्द्र ने उनके आश्रम में काम तथा अप्सराओं आदि को प्रेषित किया । महर्षि का आश्रम हिमालय के उत्तर पुष्पभद्रा नदी के तट पर था जहाँ पर चित्रा नाम की शिला थी। वह आश्रम अत्यन्त पवित्र था । वनैले पशुओं पक्षियों से परिपूर्ण, जलाशयों से युक्त, तपस्वियों से सेवित महर्षि के आश्रम में मलयानिल, कामदेव, अप्सराओं तथा वसन्त ने अपने माया का विस्तार किया । उस समय महर्षि मार्कण्डेय अग्निहोत्र करके

श्रीभगवान् का ध्यान कर रहे थे । वे मूर्तिमान् अग्निदेव के समान तेजस्वी दीख रहे थे । उनको विचलित करने के लिए सभी इन्द्र के सेवकों ने भरपूर प्रयास किया, किन्तु महर्षि के ऊपर उन सबों का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ । बल्कि महर्षि के तेज से जलते हुए वे सब उसी तरह वहाँ से पलायित हो गए जैसे छोटे-छोटे बच्चे किसी सोए सर्प को जगाकर भाग जाते हैं । वे सब हताश होकर इन्द्र के पास लौट आए। अपने सेवकों को विफल होकर लौटे हुए देखकर इन्द्र को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ।

महर्षि मार्कण्डेय तपस्या, ध्यान, एवं संयम के द्वारा श्री भगवान् में ही अपना चित्त लगाये रहते थे । उसके पश्चात् कृपा करने के लिए भगवान् नर-नारायण प्रकट हुए ।

तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ, चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ ।
पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत् कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ।।
पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं, वेदं च साक्षात् तप एव रूपिणौ ।
तपत्तडिद्वर्ण पिशङ्गरोचिषा, प्रांशूदधानौ विवुधर्षभार्चितौ ।।
(भा० १२/८/३३-३४)

उन दोनों में से एक का शरीर गौर वर्ण का था तथा दूसरे का श्याम वर्ण का । दोनों के नेत्र सद्यः विकसित कमल के समान मनोज्ञ एवं विशाल थे । दोनों की चार-चार भुजाएं थीं । एक मृग चर्म पहने हुए थे तो दूसरा वृक्ष की छाल । इनके हाथों में कुश था तथा गले में यज्ञोपवीत। वे कमण्डालु तथा बॉस के दण्ड को धारण किए हुए थे । वे कमलाक्ष की माला तथा जीवों को हटाने के लिए वस्त्र की कूँची धारण किए हुए थे । भगवान् नर-नारायण का दण्ड ऊँचा था और वेद धारण किए हुए थे। उनके शरीर से विजली के समान पीली-पीली कान्ति निकल रही थी। वे मूर्तिमान् तप के समान प्रतीत हो रहे थे । श्री भगवान् को महर्षि ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया । महर्षि आनन्द सागर में मग्न हो गए थे । उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया था । वाणी रुद्ध हो गयी थी । वे केवल- नमो नमः ही कह पाए । उन्होंने भगवान् नर-नारायण को आसन पर बैठाकर उनकी अर्चना की । इसके पश्चात् मुनि श्री भगवान् की दस श्लोकों में भाव से परिपूर्ण स्तुति की ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवतकथा के बारहवें स्कन्ध का आठवॉ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

नवाँ अध्याय

महर्षि मार्कण्डेय द्वारा माया का दर्शन

महर्षि मार्कण्डेय की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् नर-नारायण ने कहा महर्षि आप अपनी भक्ति एवं तपस्या के कारण सिद्ध हो गए हैं, हम आपको वरदान देने के लिए आये हैं । आप अभिलषित वरदान माँग लें । महर्षि ने कहा–

जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ।
वरेणैतावतालं वो यद्भवान् समदृश्यत ।।

(भा० १२/९/४)

हे देवाधिदेव! हे शरणागत जीवों के भय को दूर करने वाले भगवन् आप की जय हो । हमारे लिए तो यही वरदान है कि आपने मुझे दर्शन दे दिया । ब्रह्माजी, शंकरजी इत्यादि देवताओं ने योग साधना में स्थित होकर एकाग्र मन से ही आपके चरण कमलों का दर्शन किया और वे कृतार्थ हो गए । वे ही आप आज मेरे नेत्रों के समक्ष आकर मुझको कृतार्थ कर दिए । फिर भी आपकी आज्ञा के अनुसार मैं यह वरदान माँगता हूँ कि आपकी जिस माया के कारण बड़े-बड़े देवताओं की भी भेदबुद्धि होती है मैं आपकी उसी माया का दर्शन कर सकूँ । महर्षि की वाणी सुनकर मुस्कुराते हुए श्री भगवान् ने कहा ऐसा ही होगा । और भगवान् वदरिकाश्रम चले गए । महर्षि भी भगवान् की माया के दर्शन की प्रतीक्षा करते हुए सूर्य, चन्द्र आदि में ही श्री भगवान् की आराधना करते रहे । वे सदा भगवान् के प्रेम में मग्न रहकर अपने शरीर को भी भूल जाते थे ।

एक दिन सायंकाल पुष्पभद्रा नदी के तट पर जब महर्षि मार्कण्डेय परमात्माराधना में मग्न थे कि एकाएक जोर से आँधी चलने लगी । आँधी के कारण विकराल शब्द सुनायी पड़ने लगा । आकाश में घनघोर बादल छा गये । सद्यः मुसलाधार वर्षा होने लगी । जोर-जोर से विजली चमक रही थी । महर्षि ने देखा चारो ओर से चारो

समुद्र पृथिवी को ढंक लिए हैं । आँधी के वेग से उनमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं । घड़ियाल आदि जीव चारों ओर उछलने लगे । सर्वत्र जल ही जल दिखायी देता था । विजली की कड़क से सम्पूर्ण संसार संतप्त हो रहा था । अब समस्त जीवों के साथ-साथ महर्षि भी व्याकुल हो रहे थे । उन्होंने देखा कि समुद्र ने पर्वतों के साथ पृथिवी को भी डुबो दिया । ग्रह, नक्षत्र तारे सब जलमग्न हो गए । केवल महर्षि मार्कण्डेय ही बचे हैं और जटा फैलाए हुए इधर से उधर भागते हुए जान बचाना चाहते हैं । उन पर भयंकर हिंस्र जीवों का आक्रमण हो रहा है, भागते-भागते वे थक कर बेहोश हो गए उन्हें कोई भी ज्ञान नहीं रहा । वे कभी भयंकर भॅवर में पड़ जाते थे । कभी जल जन्तु उन पर आक्रमण करके उन्हें घायल कर देते तो कभी वे मर जाते । कभी उन्हें रोग सताने लगता था कभी उन्हें थोड़ा सुख भी मिल जाता था । भगवान् की माया से मोहित महर्षि को भटकते हुए करोड़ों वर्ष बीत गए। प्रलय सागर में भटकते हुए उन्होंने पृथिवी के एक टीले पर एक वरगद का पेड़ देखा वह लाल फलों से लदा हुआ था । वरगद के ईशानकोण वाली डाल पर पत्तों का एक दोना बना था । उस पर एक नन्हा सुन्दर सुकुमार प्रकाशपुञ्जमय शिशु सोया था । उसका श्याम वर्ण का रूप था, मुखमण्डल मुसुकान मण्डित हो रहा था, शुकशावक की चोंच के समान नुकीली नाक थी । काली घुंघराली अलकावली कपोलों पर लटक रही थी । नन्हें-नन्हें हाथों की बड़ी ही सुन्दर अंगुलियां थीं । शिशु अपने दोनों हाथों से अपने चरण कमल को मुख में डालकर चूस रहा था । उस दिव्य शिशु को देखते ही महर्षि की सारी थकान दूर हो गयी । अब वे आनन्द मग्न थे । यह कौन है ? यह जानने के लिए वे शिशु के समक्ष चले गए और शिशु के श्वास के साथ वे उसके पेट में घुस गये । उस शिशु के पेट के भीतर भी उन्होंने वही संसार देखा जिसे उन्होंने उस प्रलय से पहले देखा था । वहॉ पर उन्होंने पृथिवी आकाश, द्वीप, पर्वत, ग्राम, नगर वन इत्यादि सब कुछ देखा । वहाँ उन्होंने पुष्पभद्रा नदी अपना आश्रम और स्वयम् को भी देखा । देखते ही देखते उस शिशु के श्वास के साथ बाहर निकलकर मार्कण्डेय महर्षि प्रलय सागर में गिर गए और देखे कि वटपत्र के दोने में वही शिशु सोया है । उसके अधरों पर मनोहर मुसुकान है । महर्षि

श्री भगवान् का आलिंगन करना चाहते थे कि उनके सामने से वही दिव्य शिशु अन्तर्धान हो गया और महर्षि ने देखा कि वे उसी पुष्पभद्रा नदी के तट पर भगवदाराधन में बैठे हैं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवतकथा के बारहवें स्कन्ध का
नवॉं अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

दसवॉं अध्याय

मार्कण्डेय महर्षि को भगवान् शंकर का वरदान

महर्षि मार्कण्डेय ने श्रीभगवान् की योगमाया के प्रभाव का अनुभव किया और श्रीभगवान् को ही अपना रक्षक मान लिया । उन्होंने कहा—

प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ।
यन्माययापि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥
(भा० १२/१०/२)

हे भगवन् ! आपशरणागत जीवों को अभय प्रदान करने वाले हैं । मैं आपका चरणों के शरणागत हूॅं । आपकी माया जो ज्ञान के द्वारा प्रकाशित होती है उसी के द्वारा ज्ञानी पुरुष भी मोहित हो जाया करते हैं । इस प्रकार से भगवन्निष्ठ मार्कण्डेय महर्षि को स्वर्ग में बैल पर चढ़कर पार्वतीजी के साथ विचरण करते हुए भगवान् शंकर ने देखा तो पार्वतीजी ने भगवान् शंकर से कहा कि इस भगवन्निष्ठ, महाव्रतधारी मार्कण्डेय महर्षि को आप वरदान प्रदान करके अनुगृहीत करें । भगवान् शंकर ने कहा कि जो भगवान् का भक्त होता है, उसे किसी से वरदान प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं होती है फिर भी चलकर मैं इस साधु महापुरुष से बात करता हूॅं। यह कहकर समस्त विद्याओं के स्वामी भगवान् शंकर महर्षि मार्कण्डेय के आश्रम में आए, किन्तु परमात्माराधन में मग्न महर्षि शंकरजी के आगमन को भी नहीं जान सके । भगवान शंकर ने महर्षि की उस अवस्था को जान लिया और योगमाया के द्वारा वे महर्षि के अन्तःकरण में प्रवेश कर गये । महर्षि ने देखा—

आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् ।
त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ।।
(भा० १२/१०/११)

उनके हृदय में भगवान् शंकर के दर्शन हो रहे हैं । शंकरजी के सिर पर पीली-पीली जटा चमक रही थी । इनके तीन नेत्र और बीस भुजाएँ थीं । उनका सुदृढ शरीर सूर्य के समान चमक रहा था । उनका शरीर बाघम्बर से आच्छन्न था । वे अपने हाथ में त्रिशूल आदि आयुध धारण किए हुए थे । महर्षि अपने अन्तःकरण में भगवान् शंकर को देखकर अपनी आँख खोले तो समक्ष पार्वती एवं गणों के साथ उपस्थित शंकर जी को देखा । उन्होंने भगवान् शंकर को प्रणाम करके उनकी पूजा की । उन्होंने स्तुति करते हुए कहा–

नमः शिवाय शान्ताय सत्तवाय प्रमृडाय च ।
रजोजुषेप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ।।
(भा० १२/१०/१७)

भगवन् ! आपके शिव स्वरूप को सत्त्वगुण सम्पन्न शान्त स्वरूप को, रजोगुण से युक्त सर्वप्रवर्तक रूप को तमोगुण युक्त अघोर स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूँ । मार्कण्डेय महर्षि के प्रार्थना से प्रसन्न होकर शंकर जी ने कहा मैं आपको वरदान देने के लिए यहाँ आया हूँ । मेरा दर्शन अमोघ होता है । मैं आपको अमरत्व प्रदान कर सकता हूँ । आप जैसे तत्त्वज्ञपुरुष मुझसे ब्रह्माजी में तथा भगवान् श्रीहरि में कोई भेद नहीं देखते हैं । आपका शरीर तपस्या एवं स्वाध्याय के कारण वेदमय हो गया है ।

भगवान् शंकर की बात को सुनकर महर्षि मार्कण्डेय आनन्दमग्न हो रहे थे । उन्होंने कहा कि यह मेरे उपर श्री भगवान् की कृपा है कि आप भी मेरी प्रशंसा करते हैं ।

कं वृणे नु परं भूमन् वरं त्वद्बरदर्शनात् ।
यद्दर्शनात् पूर्णकामः सत्यकामः पुमान् भवेत् ।।
वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात् ।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ।।
(भा० १२/१०/३३-३४)

प्रभो ! आपके दर्शन से बढकर ऐसी कौन सी वस्तु है जो आप से वरदान के रूप में माँगूं । आपके दर्शन मात्र से मानव पूर्णकाम एवं

सत्यकाम हो जाता है । आप पूर्ण हैं तथा अपने भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले हैं । फिर भी मैं आप से एक वरदान मॉगता हूँ कि श्री भगवान्, भगवद् भक्तों तथा आप में मेरी अविचल भक्ति सदा बनी रहे। भगवान् शंकर ने कहा कि आपकी सारी कामनाएँ पूर्ण हों । कल्पपर्यन्त आपकी भक्ति बनी रहे और आप अजर-अमर हो जायँ । आपको पुराण का आचार्यत्व प्राप्त हो जाय । इस प्रकार मार्कण्डेय महर्षि को अपने महायोग का फल प्राप्त हो गया । महर्षि मार्कण्डेय ने अनेक कल्पों का तथा सृष्टियों का अनुभव किया । अतएव उनको इसी कल्प का मानना ठीक नहीं हैं ।

य एवमेतद् भृगुवर्य वर्णितं, रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ।
संश्रावयेत् संश्रृणुयादुतावुभौ, तयोर्न कर्माशय संसृतिर्भवेत् ।।
(भा० १२/१०/४२)

शौनक महर्षि आपको जो मैंने यह मार्कण्डेय चरित्र सुनाया है, यह भगवान् चक्रपाणि की महिमा से परिपूर्ण है । जो इसके सुनाता अथवा सुनता है वह कर्म वासनाओं के कारण होने वाले संसारचक्र से मुक्त हो जाता है ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवतकथा के बारहवें स्कन्ध का
दसवॉ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

ग्यारहवाँ अध्याय

श्री भगवान् के अङ्ग, उपाङ्ग एवं आयुधों का वर्णन

श्री शौनक ऋषि ने सूतजी से कहा कि आप सभी सिद्धान्तों के तत्त्वज्ञ हैं । आप हमें क्रिया योग का उपदेश दें क्योंकि क्रियायोग का ठीक-ठीक आचरण करके मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर लेता है । अत एव आप बतलाएँ कि पाञ्चरात्रागमादि तत्त्वों का आचरण करने वाला मनुष्य पूजन काल में भगवान् के किन-किन अङ्गों तथा उपाङ्गों में किस-किस तत्त्व की भावना करता है । श्रीसूतजी ने कहा है कि मैं

अपने आचार्य चरणों का स्मरण करके वेदों तथा पाञ्चरात्रादि ग्रन्थों में वर्णित अहंकार की विभूतियों का वर्णन कर रहा हूँ । इस विराट् पुरुष का शरीर प्रकृति, सूत्रात्मा, महत्तत्त्व अहंकार, पञ्चतन्मात्राएँ, एकादश इन्द्रियाँ तथा पञ्चमहाभूत हैं । पृथिवी ही इस महापुरुष का चरण है, अन्तरिक्ष नाभि है, सूर्य नेत्र है, वायुनासिका एवं दिशाएँ ही कान हैं। मृत्यु गुदा, लोकपाल, भुजाएँ, चन्द्रमा मन और यमराज भौहें हैं । उपर का ओष्ठ लज्जा, लोभ नीचे का ओष्ठ चन्द्रिका दन्तपंक्ति, भ्रम मुसुकान, वृक्ष उसके रोंएँ तथा उसके केश हैं । जिस तरह मनुष्य का आकार अपने वित्ते से सात वित्ते का होता है । उसी तरह विराट् पुरूष भी अपने वित्ते से सात वित्ते का होता है वह कौस्तुभमणि के रूप में आत्मज्योति को धारण करते हैं, वनमाला के रूप में माया को धारण करते हैं । छन्द ही पीताम्बर हैं तथा त्रिमात्रात्मक प्रणव ही विराट् पुरुष का यज्ञोपवीत है । सांख्य एवं योग कुण्डल हैं । ब्रह्मलोक ही मुकुट है । मूल प्रकृति ही शेषशय्या है । आकाश खड्ग है काल ही शार्ङ्ग धनुष है । इन्द्रियाँ ही विराट् पुरुष के बाण हैं, मन ही रथ है । सूर्य मण्डल अथवा अग्निमण्डल ही पूजा स्थान है । अन्तःकरण की शुद्धि ही मन्त्र दीक्षा है । समस्त पापों का विनाश करना ही भगवान् की परिचर्या है । षडैश्वर्य (भग) ही भगवान् का लीला कमल है । धर्म एवं यश ही श्री भगवान् के चमर एवं व्यजन हैं । वैकुण्ठ धाम ही छत्र है। तीनों वेद ही गरुड़ है । उनकी आत्मशक्ति ही उनकी अनपायिनी लक्ष्मी हैं। विष्वक्सेन ही पाञ्चरात्रादि आगम हैं । अणिमादि आठ ऐश्वर्य ही उनके नन्द, सुनन्द आदि आठ द्वारपाल हैं । भगवान् वासुदेव ही चतुर्व्यूह के रूप में अवस्थित हैं । वे ही जाग्रत, स्वप्न आदि चार अवस्थाओं के अधिष्ठातृदेव हैं । वे श्री भगवान ही वेदों के मूल हैं तथा अपनी महिमा से परिपूर्ण हैं । वे ही ब्रह्मा आदि रूपों से जगत् की सृष्टि आदि का कार्य करते हैं । श्री भगवान् की स्तुति करते हुए सूत जी ने कहा–

श्री कृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुक्,
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोपवनिताव्रजभृत्यगीत,
तीर्थश्रवः श्रवणमंगल पाहि भृत्यान् ।।

(भा० १२/११/२५)

शौनक महर्षि ने कहा कि शुकदेवजी ने पाँचवें स्कन्ध में बतलाया था कि– ऋषि, गन्धर्व, नाग, अप्सरा, यक्ष, राक्षस एवं देवताओं का सौरगण होता है । ये सातों प्रत्येक महिने में बदलते रहते हैं । ये सातों अपने स्वामी द्वादशादित्यों के साथ रहकर कौन-कौन कार्य करते हैं ? इसका विवरण हमें बतलायें ।

श्री सूतजी ने कहा– भगवान् विष्णु की माया से जीवों का यह लोकतंत्र बना है । सबों के अन्तर्यामी श्रीहरि ही सूर्य हैं, वे ही समस्त वैदिक क्रियाओं के प्रवर्तक हैं । भगवान् की माया ही काल, देश, क्रिया, कर्ता, करण (यज्ञ के साधन) कार्य (यज्ञ) वेदमाता, द्रव्य (साकल्य) तथा यज्ञ के फल के रूप में परिणत हो जाते हैं । काल रूपधारी भगवान् सूर्य लोक व्यवहार चलाने के लिए बारह महीनों में बारह गणों के साथ संचरण करते हैं । चैत्र मास में धाता नामक सूर्य, कृतस्थली अप्सरा, हेति राक्षस, वासुकि सर्प, रथकृत यक्ष, पुलस्त्य ऋषि तथा तुम्बुरू गन्धर्व अपना-अपना कार्य करते हैं । वैशाख मास में अर्यमा सूर्य, पुलह ऋषि, अथौजा यक्ष, प्रहेति राक्षस, पुञ्जिकस्थली अप्सरा, नारद गन्धर्व और कच्छनीर सर्प कार्य निर्वाहक होते हैं । ज्येष्ठ मास के कार्य निर्वाहक हैं– मित्र सूर्य, अत्रि ऋषि, पौरुषेय राक्षस, तक्षक सर्प, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन यक्ष । आषाढ मास के कार्य निर्वाहक हैं- वरुण सूर्य, वसिष्ठ ऋषि, रम्भा अप्सरा, सहजन्य यक्ष, हूहू गन्धर्व, शुक्र नाग तथा चित्रस्वन राक्षस। श्रावण मास के कार्यनिर्वाहक हैं– इन्द्र सूर्य, विश्वावसु गन्धर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा, तथा वर्य राक्षस। भाद्रपद के कार्य निर्वाहक हैं– विवस्वान् सूर्य, अग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्र राक्षस, असारण यक्ष, भृगु ऋषि, अनुम्लोचा अप्सरा तथा शंखपाल सर्प । माघ मास के कार्य निर्वाहक हैं– पूजा सूर्य, धनञ्जय नाग, वात राक्षस, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, घृताची अप्सरा, और गौतम ऋषि। फाल्गुन मास के कार्य निर्वाहक हैं– पर्जन्य सूर्य, क्रतु यक्ष, वर्चा राक्षस, भरद्वाज ऋषि, सेनजित् अप्सरा, विश्व गन्धर्व तथा ऐरावत सर्प। मार्गशीर्ष मास के कार्य निर्वाहक हैं– अंशु सूर्य, कश्यप ऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विद्युच्छन्न राक्षस और महाशंख नाग । पौष मास के कार्य निर्वाहक हैं– भग सूर्य, स्फूर्ज राक्षस, अरिष्ट

गन्धर्व, ऊर्ण यक्ष, आयु ऋषि, पूर्वचिति अप्सरा, तथा कार्कोटक नाग आश्विन मास के कार्य निर्वाहक हैं– त्वष्टा सूर्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल नाग, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, शतजित यक्ष, तथा घृतराष्ट्र गन्धर्व। कार्तिक मास के कार्य निर्वाहक हैं– विष्णु सूर्य, अश्वतर नाग, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि, तथा मखापेत राक्षस ।

जो व्यक्ति सूर्य भगवान् की इन विभूतियों का ज्ञान करते हैं उसके पाप विनष्ट हो जातें हैं । इस सौर गण के ऋषि लोग वेद मन्त्रों से सूर्य की स्तुति करते हैं, गन्धर्व गान करते हैं, अप्सराएँ आगे-आगे नृत्य करतीं हैं, नाग उनके रथ में रस्सी का काम करते हैं, यक्षगण अलंकृत करते हैं, बलवान् राक्षस उसे खिंचते हैं और साठ हजार बालखिल्य ऋषि सूर्य की स्तुति करते हैं ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवतकथा के बारहवें स्कन्ध का
ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

बारहवाँ अध्याय

श्रीमद् भागवत का संक्षिप्त विषयानुक्रम

इस अध्याय को प्रारम्भ करते हुए सूतजी ने सर्वप्रथम श्रीभगवान् को नमस्कार किया और शौनकादि महर्षियों से कहा–

अत्र संकीर्तितः साक्षात् सर्वपापहरो हरिः ।
नारायणो हृषीकेशो भगवान् सात्त्वतां पतिः ।।
(भा० १२/१२/३)

इस श्रीमद्भागवत पुराण में सर्व पाप प्रणाशक श्रीहरि का ही संकीर्तन किया गया है । वे भगवान् नारायण सबों के इन्द्रियों के स्वामी हैं तथा भागवतों के संरक्षक हैं । उन श्रीहरि से ही जगत् उत्पन्न होकर उनके द्वारा पालित तथा संहृत होता है । इस पुराण में परमात्म प्राप्ति के साधनों का वर्णन किया गया है । श्रीमद् भागवत के प्रथम

स्कन्ध में भक्ति योग तथा उसको स्थिर रखने वाले वैराग्य का वर्णन किया गया है। परीक्षितोपाख्यान, नारदोपाख्यान, तथा ब्राह्मण के शाप के कारण परीक्षित् का गंगा तट पर उपवेशन का वर्णन किया गया है । द्वितीय स्कन्ध में योगधारण के द्वारा शरीर त्याग की विधि, ब्रह्मा एवं नारद का संवाद, अवतारों का संक्षिप्त वर्णन तथा महतत्त्व के क्रम से सृष्टि का वर्णन किया गया है । तृतीय स्कन्ध में सर्वप्रथम विदुर तथा उद्धव का संवाद, मैत्रेयजीका समागम तथा प्रसंग वर्णित है । पुनः पुराण संहिता के विषय में प्रश्न तथा प्रलय काल में परमात्मा की स्थिति का वर्णन है । पुनः प्राकृतिक सृष्टि का वर्णन है, इसके पश्चात ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और उसमें विराट् पुरुष की स्थिति का वर्णन है । उसके पश्चात् काल का निरूपण, लोक पद्म की उत्पत्ति, हिरण्याक्षवध, देव, पशु, पक्षी, मनुष्य एवं रुद्रों की सृष्टि का वर्णन है। उसके पश्चात् स्वयम्भुव मनु एवं शतरूपा की उत्पत्ति का वर्णन, कर्दम प्रजापति का चरित्र, उनसे मुनि पत्नियों का जन्म, भगवान् कपिल का अवतार तथा कपिल देवहूति का संवाद वर्णित है ।

चतुर्थ स्कन्ध में मरीचि आदि नव प्रजातियों की उत्पत्ति, दक्ष का यज्ञ विध्वंस राजर्षि ध्रुव एवं पृथु का चरित्र वर्णित है । उसके पश्चात् प्राचीन वर्हि तथा नारदजी का संवाद वर्णित है । पाँचवें स्कन्ध में प्रियव्रत का उपाख्यान, नाभि, ऋषभ एवं भारत के चरित्र, द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदियाँ तथा ज्योतिश्चक्र का विस्तृत वर्णन है । फिर पाताल एवं नरकों का वर्णन किया गया है । षष्ठ स्कन्ध में प्रचेताओं से दक्ष की उत्पत्ति, दक्ष पुत्रियों की सन्तति, देवता, असुर, मनुष्य, वृत्रासुर की उत्पत्ति तथा उसकी परम गति का वर्णन है । सातवें स्कन्ध में हिरण्यकशिपु तथा प्रह्लाद का चरित्र मुख्य रूप से वर्णित है । आठवें स्कन्ध में मन्वन्तरों का वर्णन, गजेन्द्र मोक्ष, विभिन्न मन्वन्तरों में होने वाले भगवान् के अवतारों का वर्णन, अमृत प्राप्ति के लिए समुद्र मन्थन का वर्णन, देवासुर संग्राम आदि का वर्णन है । नवें स्कन्ध में राजवंशों का वर्णन है– इक्ष्वाकु के जन्म कर्म, वंश-विस्तार महात्मा सुद्युम्न तथा इला एवं तारा का उपाख्यान वर्णित है। सूर्य वंश का वर्णन, शशाद तथा नृगका वर्णन, सुकन्या का चरित्र, शर्याति, खट्वाङ्ग, मान्धाता,

सौभरि, सगर, ककुत्स्थ तथा श्रीराम का चरित्र वर्णित है । उसके पश्चात् निमि का देहत्याग तथा जनकं की उत्पत्ति का वर्णन है । फिर परशुराम जी द्वारा क्षत्रियों का संहार, पुरुरवा ययाति, नहुष, भरत, शन्तनु, तथा भीष्म के चरित्र का वर्णन है ।

दसवें स्कन्ध में बतलाया गया है कि इस यदुवंश में ही श्री भगवान ने अवतार लेकर अनेक प्रकार की लीलाएँ की । उन्होंने पूतना का स्तन पान किया, शकटासुर को मारा, तृणावर्त, बकासुर, वत्सासुर का विनाश किया । धेनुकासुर प्रलम्बासुर का विनाश करके दावाग्नि से गोपों की रक्षा की । कालिय नाग का दमन करके भयंकर सर्प से नन्द जी को बचाया । गोपकन्यायों के व्रत से प्रसन्न हुए । श्री भगवान ने यज्ञ पत्नियों पर कृपा किया तथा उनके पतियों ब्राह्मणों को पश्चात्ताप हुआ । भगवान् ने गोवर्धन धारण किया तो इन्द्र तथा कामधेनु ने आकर उनका अभिषेक किया । शरद् ऋृतु की रात्रियों में गोपियों के साथ भगवान् ने रास रचाया। श्रीभगवान् ने शंखचूड, अरिष्ट और केशी नामक राक्षस को मारा । अक्रूरजी के साथ बलराम और कृष्ण मधुरा के लिए प्रस्थान किए । फिर गोपियों ने विलाप किया, भगवान् मथुरा पहुँचे और वहाँ पर कुवलायापीड मुष्टिक, चाणूर तथा कंस आदि को श्री भगवान ने मारा । सान्दीपनि गुरु के यहाँ विद्याध्ययन करके वे मरे हुए गुरु पुत्र को यम लोक से लौटा लाए। मथुरा में निवास करते समय भगवान् ने उद्धव तथा बलरामजी के साथ मथुरा वासियों का हर प्रकार से कल्याण किया । कालयवन का वध करके वे द्वारकापुरी में निवास करने लगे । स्वर्ग से कल्पवृक्ष तथा सुधर्मा सभा लाए । रुक्मिणी का हरण किया । युद्ध में भगवान् शंकर को जृम्भित करके उन्होंने बाणासुर की भुजाएँ काट दी । भौमासुर का वध करके सोलह हजार कन्याओं का पाणिग्रहण किया । शिशुपाल, पौण्ड्रक, शल्व, दन्तवक्र, शम्बरासुर, द्विविद, पीठ, मुर तथा पञ्चजन आदि दैत्यों का भगवान ने विनाश किया । वाराणसी को जलाया । पाण्डवों को निमित्त बनाकर उन्होंने पृथिवी का भार उतारा ।

एकादश स्कन्ध में इस बात का वर्णन है किं ब्राह्मणों के शाप के बहाने उन्होंने अपने वंश का विनाश किया । फिर उद्धव और श्री

कृष्ण का संवाद वर्णित है । भगवान् किस प्रकार स्वधाम गमन किए इसका वर्णन है । बारहवें स्कन्ध में विभिन्न युगों का लक्षण और उन युगों के लोगों का व्यवहार वर्णित है । कलियुग वर्णन के बाद चार प्रकार के प्रलय तथा तीन प्रकार की उत्पत्तियों का भी वर्णन है । परीक्षित् के शरीर त्याग के पश्चात् वेद की शाखाओं का वर्णन, मार्कण्डेय महर्षि की कथा, उनके द्वारा श्रीभगवान् की माया का दर्शन, श्री भगवान के अंगों उपाङ्गों का वर्णन तथा भगवान् सूर्य के गणों का वर्णन है । किसी भी दशा में मनुष्य के मुँह से यदि हरये नमः यह शब्द निकल जाता है तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । जो व्यक्ति भगवान् के गुणों एवं लीलाओं का वर्णन करता है उसके हृदय में भगवान् का निवास हो जाता है । उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं। सुन्दर से सुन्दर वाणी में भी यदि श्रीहरि का वर्णन नहीं है तो वह वाणी व्यर्थ ही है । सभी साधनों तपस्याओं और कर्मो की सार्थकता इसी में है कि उसके द्वारा श्रीभगवान् की भक्ति की जाय । सूतजी ने शौनक महर्षि को बतलाया कि जिस समय शुकदेवजी राजा परीक्षित् को श्रीमद्भागवत की कथा सुना रहे थे उसी समय मैंने उनके मुख से इस कथा को सुना था । इसके पश्चात् सूतजी ने बतलाया कि श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण करने वाले और सुनाने वाले दोनों की कामनाएँ पूर्ण होती हैं । एकादशी तिथि तथा तीर्थ क्षेत्र में भागवत की कथा सुनने का बड़ा ही महत्त्व है । श्रीमद्भागवत मुक्ति प्रदान करने वाला पुराण है । अन्त में सूतजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके श्रीमद्भागवत पुराण के प्रवर्तक आत्मनिष्ठ शुकदेव जी को प्रणाम किया ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के बारहवें स्कन्ध का बारहवॉ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तेरहवाँ अध्याय

श्रीमद्भागवत की महिमा

सूतजी ने श्री भगवान् की स्तुति करते हुए कहा–

यं ब्रह्मा वरूणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैःस्तवैः
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैः गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद् गतेन मनसा पश्यन्ति यं योकिनो
यस्यान्तं न विदुः सुराऽसुरगणाः देवाय तस्मै नमः ।।

(भा० १२/१३/१)

ब्रह्माजी, वरुण, इन्द्र, रुद्र तथा मरुद्गण दिव्य स्तुतियों के द्वारा जिनका गुणगान करते रहते हैं, सामगान करने वाले महर्षि गण अङ्ग, पद, क्रम, तथा उपनिषदों के साथ वेदों द्वारा जिनका गान करते हैं । योगिजन ध्यान के द्वारा परमात्मपरायण मन से जिन श्रीहरि का साक्षात्कार करते हैं, फिर भी देव, असुर समूह जिनका कभी अन्त नहीं प्राप्त कर सके उन श्रीभगवान् को मेरा नमस्कार है । श्रीभगवान् के कच्छपावतार का वर्णन करते हुए सूत जी ने कहा–

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयनात्
निद्रालो; कमठाकृते; भगवतः श्वासानिलाः पातु वः ।
यत्संस्कार कलानुवर्तन वशाद् वेलानिभेनाञ्जसा,
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ।।

(भां० १२/१३/२)

समुद्र मन्थनकाल में कच्छपावतार धारी श्रीभगवान् की पीठ पर विशाल मन्दराचल पर्वत मथानी के समान तीब्रगति से घूम रहा था, उस समय मन्दराचल पर्वत की चट्टानों की नोक से खुजलाने के कारण श्रीभगवान् को सुख मिला और वे सोने लगे । उस समय उनके श्वास की गति बढ गयी । उनके श्वासों की तीव्रता के कारण समुद्र का जल जो क्षुभित हुआ उसका संस्कार आज भी बना हुआ है, उसी के कारण

आज भी समुद्र में उत्ताल ताल तरङ्गें उठती हैं ज्वार भाटा के रूप में, और समुद्र चढता उतरता रहता है । श्रीभगवान् की वह श्वास वायु आप सबों की रक्षा करे।

इसके पश्चात् पुराणों की श्लोक संख्या बतलाते हुए सूतजी ने कहा– ब्रह्मपुराण में दस हजार श्लोक है । पद्मपुराण में पचपन हजार श्लोक हैं, विष्णुपुराण में तेईस हजार श्लोक हैं । शिवपुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं । श्रीमद्भागवत में अठारह हजार श्लोक हैं । नारद पुराण में पच्चीस हजार श्लोक हैं, मार्कण्डेय पुराण में नव हजार श्लोक है, अग्निपुराण में पन्द्रह हजार चार सौ श्लोक हैं । विष्णुपुराण तें चौदह हजार पाँच सौ श्लोक हैं । ब्रह्मवैवर्त पुराण में अठारह हजार श्लोक हैं, लिङ्गपुराण में ग्यारह हजार श्लोक है, वराहपुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं, स्कन्द पुराण में इक्यासी हजार एक सौ श्लोक हैं, वामन पुराण में दस हजार श्लोक हैं, कूर्मपुराण में सत्रह हजार श्लोक हैं, मत्स्य पुराण में चौदह हजार श्लोक हैं, गरुडपुराण में उन्नीस हजार श्लोक हैं तथा ब्रह्माण्ड पुराण में बारह हजार श्लोक हैं ।

इस श्रीमद्भागवत पुराण का उपदेश श्री भगवान् ने संसार के भय से त्रस्त ब्रह्माजी को दिया था । इसके आदि मध्य तथा अन्त में वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथाएँ हैं । श्रीभगवान् की अमृतमयी लीलाओं का वर्णन है । इस पुराण के प्रतिपाद्य श्रीभगवान् हैं तथा इसका प्रयोजन मोक्ष की प्राप्ति है । अमावस्या अथवा पूर्णिमा के दिन स्वर्ण सिंहासन पर रखकर जो श्रीमद्भागवत पुराण का दान करता है वह परम गति को प्राप्त करता है । श्रीमद्भागवत ही सर्वोत्तम पुराण है । इसमें वेदान्तों का सार वर्णित है । जिस तरह वैष्णवों में भगवान् शंकर श्रेष्ठ हैं, उसी तरह पुराणों में श्रीमद् भागवत श्रेष्ठ है । इस पुराण में पारमहंस्य धर्म का वर्णन है । यह वैष्णवों का सर्वोत्कृष्ट धन है ।

श्रीमद्भागवत का उपदेश श्रीभगवान ने ब्रह्माजी को दिया, ब्रह्माजी ने नारदजी को, नारदजी ने व्यासजी को, व्यासजी ने शुकदेवजी को, शुकदेवजी ने इसे राजा परीक्षित् को सुनाकर मुक्त कर दिया । अन्त में श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए सूतजी ने कहा–

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ।।

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ,
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ।।
(भा०१२/१३/२२-२३)

हे भगवन् ! आप ही हमारे एकमात्र स्वामी एवं सर्वस्व हैं । आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि मैं जब-जब जन्म लूँ तब-तब आपके चरणों में मेरी अविचल भक्ति बनी रहे । जिन श्री भगवान् के नामों का संकीर्तन सम्पूर्ण पापों को पूर्ण रूप से विनष्ट कर देता है तथा जिन के चरणों में किया गया प्रणाम मानव के समस्त दुःखों का शमन कर देता है, मैं उन्हीं श्रीहरि को प्रणाम करता हूँ ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा के द्वादश स्कन्ध का
तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा का
बारहवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।

इस तरह साप्ताहिक श्रीमद्भागवत कथा सम्पूर्ण हुई ।

साप्ताहिक श्रीमद्भागवत के कथा विराम स्थल

मनुकर्दम संवाद पर्यन्तं प्रथमेऽहनि ।
भरतारव्यानपर्यन्तं द्वितीयेहनि वाचयेत् ।
तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्धपूरणम् ।
कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थ दिवसे वदेत् ।
रूक्मिणण्युद्वाहपर्यन्तं सपञ्चमेऽहनि शस्यते ।
श्री हंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽहनि वदेत् सुधीः ।।
सप्तमे तु दिने कुर्यात् पूर्ति र्भागवतस्य वै ।
एवं निर्विघ्नता सिद्धिर्विपर्यय इतोऽन्यथा ।।

श्रीमद्भागवत की कथा निर्विध्नरूप से परिपूर्ण हो जाय इसके लिए प्रतिदिन कथा का विश्राम नियत स्थान पर ही करना चाहिए । उसका क्रम इस प्रकार है–

पहले दिन प्रारम्भ से लेकर तीसरे स्कन्ध के मनुकर्दन संवाद (२२वें अध्याय) पर्यन्त कथा कहना चाहिए । दूसरे दिन तृतीय स्कन्ध के तेइसवें अध्याय से लेकर पाञ्चवें स्कन्ध के छठे अध्याय भरताख्यान पर्यन्त ही कथा कहनी चाहिए । तीसरे दिन पाञ्चवें स्कन्ध के सातवें अध्याय से लेकर सातवें सकन्ध की समाप्ति पर्यन्त कथा कहनी चाहिए । चौथे दिन आठवें स्कन्ध के पहले अध्याय से लेकर दसवें स्कन्ध के तृतीय अध्याय तक की कथा कहनी चाहिए । पॉचवें दिन दशम स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय से लेकर रूक्मिणी विव्राह दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध ५४वें अध्याय तक की कथा कहनी चाहिए । छठे दिन दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध के ५५वें अध्याय से लेकर एकादश स्कन्ध के हंसोपाख्यान १३वें अध्याय तक की कथा कहनी चाहिए । सातवें दिन एकादश स्कन्ध के १४वें अध्याय से प्रारम्भ करके बारहवें स्कन्ध के अन्तिम अध्याय पर्यन्त की कथा कहनी चाहिए ।

श्रीमद्भागवत महापुराण के मासिक परायण का विश्राम स्थल

यदि श्रीमद्भागवत की कथा एक मास में पूरा करना हो तो उसके कथा का क्रम निम्न प्रकार से होगा ।

मासश्रवणपक्षेतु नित्यमध्यायधूर्जटिम् ।
पञ्चाध्यायींपठेद्विद्वान् समाप्तिदिवसेऽन्तिमाम् ।।

अर्थात् यदि एक मास में श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण करना हो तो प्रतिदिन ग्यारह अध्याय का श्रवण अथवा पाठ करना चाहिए तथा अन्तिम तीसवें दिन सोलह अध्याय का श्रवण या पाठ करना चाहिए।

श्रीमद्भागवत का पाठ करते समय अध्याय के बीच में नहीं बोलना चाहिए और यदि बोलना आवश्यक हो जाय तो बोलकर फिर से उस अध्याय को शुरू से पाठ करना चाहिए । प्रत्येक स्कन्ध का पहला और अन्तिम श्लोक दो बार पढना चाहिए । श्रीमद्भागवत का पाठ धीरे-धीरे करना चाहिए जिससे कि सुनने वाले को अच्छा लगे ।

तत्त्वनिरूपण

तत्त्वों का निरूपण ही वैदिकों का सारतम सिद्धान्त है । तत्त्व ज्ञान ही मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट उत्कर्ष है । वैदिक सिद्धान्तों की ही व्याख्या इतिहास पुराण एवं स्मृतियॉ करती हैं। **'वेदार्थो निश्चेतव्यः स्मृतीतिहास पुराणैः ।'** (श्री वचन भूषण १) वेद प्रतिपादित अर्थ क्या है ? इस बात का निर्णय अपनी स्वतंत्र बुद्धि से न करके इतिहासों,पुराणों एवं स्मृतियों के आलोक में करना चाहिए । हम अल्पश्रुत जीव यदि वेदान्त के अर्थो का निर्णय अपनी स्वतंत्र बुद्धि से करने लगें तो अनर्थ कर सकते हैं । अल्पश्रुत लोगों से तो वेद भी डरता है ।

'विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।'

श्रीमद् भागवत पुराण भी वेदार्थों की ही व्याख्या करता है । महर्षि सनत्कुमार कहते हैं–

वेदोपनिषदां साराज्जता भागवती कथा ।
(भा० मा०२१६७)

वेदों तथा उपनिषदों के सार से श्रीमद्भागवत पुराण की कथा का निर्माण हुआ है । श्री शुकदेवजी कहते हैं कि वेदरूपी कल्प वृक्ष का

पक कर गिरा हुआ फल है श्रीमद्भागवत महापुराण **निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्** (भा०१/१/३) अतएव इस पुराण में वेद प्रतिपादित अर्थों का अत्यन्त सुगम तरीके से विवोचन किया गया । इस पुराण का एकमात्र उद्देश्य है मानव जीवन की सफलता के साधनों का निर्देश ।

संसार के सभी जीव तीन प्रकार के तापों से ग्रस्त हैं । आध्यात्मिक ,अधिभौतिक एवं आधिदैविक । इन तीनों प्रकार के सन्तापों को सदा के लिए समाप्त करके किस प्रकार से अपरिमित आनन्द को प्राप्त किया जाय, इन्हीं सारी बातों की चर्चा श्रीमद्भागवत महापुराण करता है । मानव जीवन की सार्थकता भी इसी में है कि हम लोग अपने प्रयास अथवा श्रीभगवान् की कृपा प्राप्त करके उपयुर्क्त तीनों प्रकार के सन्तापों से मुक्त हो जायॅ । अन्यथा हमारा जीवन ही व्यर्थ हो जायेगा। श्रुति भी इसी बात को बतलाती है ।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः।

अर्थात् इस मानव जीवन को प्राप्त करके हमने उपर्युक्त वेद प्रतिपादित अर्थो का ज्ञान प्राप्त कर लिया तब तो हमारा जीवन सार्थक हो गया अन्यथा इस जीवन की सब से बड़ी क्षति हो गयी । यद्यपि माया के वशवर्ती हम सभी जीव प्रायः अपने परमकल्याण की ओर से पराङ्मुख ही रहते हैं । इस मानव जीवन की महत्ता को नहीं समझते हैं।

मानव जीवन की महत्ता

मानव जीवन की महत्ता का निर्देश करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी कहतें हैं–

'नर तन कर फल विषय न भाई ।'

अर्थात् मानव शरीर को प्राप्त कर विषयों के भोगों को भोगना मात्र उद्देश्य नहीं है । अपितु यह जीवन एक ऐसा जीवन है जिसके द्वारा मनुष्य मोक्ष जैसे पुरुषार्थ को प्राप्त करके सांसारिक त्रिविध तापों से सदा-सदा के लिए छूट सकता है । क्योंकि यह जीवन तो–

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा ।
जो न पाइ परलोक सुधारा ।

अर्थात् मानव जीवन हर प्रकार के साधनों का एक मात्र आश्रय

है। यही जीवन मोक्ष का दरवाजा है । जिस तरह किसी गृह में प्रवेश करने के लिए दरवाजे पर पहुँचना आवश्यक होता है । दरवाजा से ही घर में प्रवेश किया जा सकता है । उसी तरह इस मानव शरीर को ही प्राप्त करके जीव मोक्ष मन्दिर में प्रवेश कर सकता जिसमें सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति मिल जाती है तथा उस मनुष्य को सब प्रकार के आनन्द की प्राप्ति हो जाती है ।

इस मानव शरीर की प्राप्ति श्रीभगवान् की कृपा से ही संभव है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है–

कबहूँ कि करि करुना नर देही ।
देत ईस विनु हेतु सनेही ।।

अर्थात् अनादि काल से इस जीव को विभिन्न योनियों में भटकते हुए देखकर करुणा वरूणालय परमात्मा उसे मानव शरीर प्रदान कर देता है ताकि मनुष्य विभिन्न प्रकार के साधनों को अपनाकर आत्मकल्याण कर सके । इन सारी बातों को ही संगृहीत करते हुए पञ्चरात्रागम शास्त्र में बतलाया गया है–

अपूर्वा देहसम्पत्ति रीश्वराय निवेदितुम् ।
पूर्वमेव कृता राजन् हस्तपादादिसंयुता ।।

अर्थात् हे महाराज ! यह मानव शरीर रूपी सम्पत्ति अपूर्व सम्पत्ति है। इससे पहले की योनियों में प्राप्त होने वाले देहों में इस प्रकार की उत्तमता नहीं थी । मानव शरीर को छोडकर सारी योनियॉ भोग योनियॉ हैं। उन योनियों में पूर्वकृत कर्मों का फल भोगा जाता है । मानव योनि तो कर्म योनि है । इस योनि में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य इत्यादि साधनों को अपनाकर कर्म के बन्धनों को विनष्ट किया जाता है । अतएव यह मानव शरीर तो अपूर्व सम्पत्ति है । इस शरीर का सदुपयोग बतलाते हुए शास्त्रकार कहते हैं–

ईश्वराय निवोदितुम् ।

अर्थात् इस शरीर का यही उपयोग हैं कि इसको परमात्मा की सेवा में लगा दिया जाय । जिस परमात्मा ने इसे हमें प्रदान किया है उसी को इसे समर्पित कर दिया जाय । कर्मो के बन्धनों को काटने के लिए ही हाथ, पैर इत्यादि अवयवों से युक्त इस शरीर को परमात्मा की

सेवा में लगा देने की विधि को बतलाते हुए मुकुन्दमालाकार श्रीकुलशेखर सूरि कहते हैं–

जिहवे ! कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं
पणिद्वन्द्व समर्चयाच्युतकथाः श्रोत्रद्वयं त्वं शृणु ।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छांध्रियुग्मालयं
जिघ्र घ्राण! मुकुन्दपादतुलसी मूर्धन्नमाधोक्षजम् ।।

(मु० मा० १६)

श्रीसूरि कहते हैं कि ऐ मेरी जीभ तुम भगवान् केशव का कीर्तन करो, ऐ मेरे मन ! तुम मुर नामक राक्षस को मारने वाले भगवान् मुरारि का भजन करो । ऐ मेरे दोनों हाथ ! तुम भगवान् श्रीधर की पूजा करो। ऐ मेरे दोनों कान तुम भगवान् अच्युत की कथाओं का श्रवण करो, ऐ मेरे दोनों नेत्र! तुम भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करो, ऐ मेरे दोनों पैरो! तुम श्रीभगवान् के मन्दिर में जाया करो, ऐ मेरी नासिका तुमश्री भगवान् के चरणों पर चढ़ी हुई तुलसी को ही सूंघों तथा ऐ मेरे सिर ! तुम भगवान् अधोक्षज को ही नमस्कार किया करो ।

इस तरह से अपने अंगों को श्री भगवान् की सेवा में लगा देना ही मानव शरीर की सार्थकता है ।

मानव शरीर के दुरुपयोग के विषय में दृष्टान्त

हम सभी संसारी जीव किस प्रकार से इस मूल्यवान मानव शरीर का दुरुपयोग करते हैं इसके विषय में एक अरव्यायिका कही जाती है। दक्षिण भारत के किसी गॉव में एक व्यक्ति रहता था । वह प्रतिदिन जंगल में जाकर लकड़ी काटता था । उसे जलाकर उसका कोयला बनाता था । उस कोयले को ही बेचने से उसका परिवार चला करता था।

एक दिन जब वह जंगल में जाकर लकड़ी काट रहा था उस समय सायंकाल की बेला हो रही थी । उसी मार्ग से चोल देश का राजा जंगलो में शिकार खेलकर लौट रहा था । उस समय राजा और राजा का घोड़ा दोनों विल्कुल थक गये थे । अचानक राजा के ऊपर किसी सिंह ने आक्रमण किया । उस समय थके मॉदे राजा सिंह का सामना करने में अपने को असमर्थ समझ रहे थे । किन्तु उस सिंह के आक्रमण को उस लकड़ी काटने वाले मनुष्य ने देख लिया । उसका

ऐसे सिंहों से आये दिन सामना हुआ करता था । उसने अपनी तीव्र कुल्हाड़ी के प्रहार से सिंह को मार दिया । उस लकड़हारे के पौरुषपूर्ण कार्य को देखकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

राजा ने उस लकड़हारे से उसका परिचय तथा उसके कारोबार के विषय में पूछ कर जान लिया कि वह प्रतिदिन लकड़ी काटकर जलाता है और उसका कोयला बनाकर बेचने का काम करता है । उसी से उसका परिवार चलता है । राजा ने प्रसन्न होकर उस आदमी को एक चन्दन का वन दे दिया और कहा कि यदि तुम इस बन का सदुपयोग करोगे तो तुम भी हमारे ही जैसे धनी बन जाओगे । यदि किसी प्रकार की कमी कोई भी हो तो फिर मेरे पास आना ।

इसके पश्चात् वह लकड़हारा उस चन्दन के वन की लकड़ियों को काट कर जलाने लगा । एक दिन ऐसा आया कि वह उस सम्पूर्ण चन्दन के वन को जलाकर कोयला बना चुका था । उसके पास जलाने के लिए कोई लकड़ी नहीं रही ।

इसके बाद वह पुनः अपने उस काले-कलुटे वेष में राजा के पास पहुँचा । राजा ने उसको देखकर पहचान लिया तथा उसके इस तरह आने का कारण पूछा । उस लकड़हारे ने बतलाया मैं सम्पूर्ण वन को जलाकर कोयला बना चुका हूँ । अब आप कोई दूसरा वन प्रदान करें ताकि मैं कोयला बनाकर अपना परिवार चला सकूँ । उस लकड़हारे की बातों को सुनकर राजा को बड़ा ही कष्ट हुआ । उसने कहा कि तुमने उस चन्दन के वन को जलाकर कोयला बना दिया । अरे तुम उस वन की लकड़ियों को ही बेच लेते तो बहुत बड़े धनी बन जाते । तुमने उसका बड़ा ही दुरुपयोग किया है ।

हम लोगों का यह मानव शरीर भी एक चन्दन का बन है । इसके विभिन्न अंग ही उस वन के वृक्ष हैं । इस शरीर रूपी वृक्ष के विभिन्न अंगों को परमात्मा की सेवा में लगा देना ही मानव जीवन का सदुपयोग है । मानव जीवन पाकर आजीव सांसारिक विषयों के उपभोग में इस जीवन को समाप्त कर देना ही इसको जलाकर कोयला बना देना है । अतएव आवश्यकता है इस मानव जीवन के सदुपयोग की ।

भारतवर्ष में मानव-जीवन की महत्ता

इतिहास पुराण तथा आचार्य इत्यादि मानव जीवन के सदुपयोग की ही शिक्षा देते हैं । शास्त्रों में भारत वर्ष की भूमि में मानव जीवन प्राप्त करने का बड़ा ही महत्त्व बतलाया गया है । श्रीमद् भागवत महापुराण में भी कहा गया है–

अहो अमीषां किमकारिशोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः
यैर्जन्मलब्धं नृषु भारताजिरं
मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहा हि नः ।।

(भा०५/१९/२१)

भारतवर्ष में जन्म लेने वाले मनुष्यों के सौभाग्य का वर्णन करते हुए देवता भी कहते हैं कि अरे! जिन जीवों ने भगवान् की सेवा करने योग्य भारतवर्ष में मनुष्य शरीर के प्राप्त किया है,उन सबों ने न जाने कौन सा पुण्य कर्म किया है । लगता है इन जीवों पर स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो गए हैं ऐसे सौभाग्य की प्राप्ति के लिए तो हम देवता लोग भी सदा तरसते रहते हैं। देवता लोग सोचते हैं–

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपो व्रतैः,
दानादिभिर्वा द्युजयेन् फल्गुना ।
न यत्र नारायणपाद पङ्कज,
स्मृतिः प्रमुष्टाविशयेन्द्रियोत्सवात् ।।

(भा०५/१९/१२)

अत्यन्त कठोर यज्ञ, तपस्या,व्रत तथा दान इत्यादि क्रियाओं के द्वारा हमें जिस स्वर्ग लोक की प्राप्ति हुई उससे कोई लाभ तो इसलिए नहीं है कि यहाँ पर तो ऐन्द्रियिक भोगों की अधिकता के कारण जीवों को श्री भगवान् के चरणों की याद भी नहीं रह जाती है । किसी भी भोग की भूमि में रहकर आयु प्राप्त करके अन्त में यदि संसार में लौटना पड़ता है, तो उसकी अपेक्षा तो भारत भूमि में आकर छोटी सी भी आयु प्राप्त करना इसलिए ठीक है कि इस मर्त्य शरीर से किए गए समस्त कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित करके मनुष्य परम पद प्राप्त कर लेता है ।

न यत्र वैकुण्ठ कथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ।।

(भा०५/१९/२४)

अर्थात् जहॉ पर श्रीभगवान् की कथा रूपी अमृत की सरिता नहीं प्रवाहित होती है,जहॉ पर श्री भगवान् के ही सदा आश्रित रहने वाले साधुजनों का निवास नहीं है,तथा जहॉ पर श्री भगवान् के यज्ञमहोत्सवों का आयोजन नहीं होता है ऐसा यदि इन्द्र का भी लोक हो तो भी उसका सेवन नहीं करना चाहिए । भारत वर्ष में भी जन्म लेकर जो लोग अपने ज्ञान,तथा द्रव्य के द्वारा प्रयास करके इस संसार चक्र से निकलने का प्रयास नहीं करते हैं,वे पुनः संसार चक्र में पड़ जाते हैं ।

यज्ञादि तो ऐसे साधन हैं जिनसे श्री भगवान् को बड़ी ही प्रसन्नता होती है ।

यैः श्रद्धया वर्हिषि भागशो हवि
र्निरूप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ।
एकः पृथङ् नामभिराहुतो मुदा
गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ।।

(भा०५/१९/२६)

जब ये भारतवासी यज्ञों में भिन्न-भिन्न देवताओं के उद्देश्य से अलग-अलग भाग रखकर विधि मन्त्र एवं द्रव्य आदि के द्वारा श्रद्धा पूर्वक उन्हें हविः प्रदान करते हैं तो इन्द्रादि विभिन्न नामों से पुकारे जाने वाले सम्पूर्ण जगत् शरीरक अवाप्तसमस्तकाम श्री भगवान् प्रसन्नता पूर्वक उस हविः को स्वयम् ग्रहण करते हैं। जो पुरुष निष्काम भावना से श्रीभगवान् की आराधना करते हैं उन्हें तो श्रीभगवान् अपना चरण कमल ही प्रदान कर देते हैं।

शास्त्रप्रतिपाद्य तत्त्व

इस तरह से भारत वर्ष की महिमा को जानने वाले मनुष्यों को आवश्यकता इस बात की होती है कि हम अपने स्वरूप, प्राप्य

परमात्मा के स्वरूप, परमात्मा की प्राप्ति के साधन, परमात्मा की प्राप्ति में बाधक तत्त्व तथा परमात्मा की प्राप्ति के फल को ठीक-ठीक जान लें। अतएव इन्हीं पाँच विषयों का प्रतिपादन समस्त शास्त्र किया करते हैं। पञ्चचरात्रागम में कहा गया है–

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेः तथा प्राप्तिविरोधि च।
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानः वेदवेदान्तवेदिनः॥

मुमुक्षुजीवों के द्वारा प्राप्त करने योग्य परमात्मा का स्वरूप, परमात्मा को प्राप्त करने वाले जीवात्मा का स्वरूप, परमात्मा की प्राप्ति के साधनों का स्वरूप तथा परमात्मा की प्राप्ति के प्रतिबन्धकों का स्वरूप एवं परमात्मा की प्राप्ति के फल का स्वरूप इन्हीं विषयों का प्रतिपादन सभी वेद, इतिहास, पुराण, मुनिजन, महात्माजन तथा वेदों एवं वेदान्तों के तत्त्वों को जानने वाले महापुरुष किया करते है।

इसलिए यहाँ पर क्रमशः इन समस्त वस्तुओं के स्वरूप का निरूपण क्रमशः किया जा रहा है।

जीवात्मा का स्वरूप

(क) आत्म ज्ञान ही परम पुरुषार्थ का साधन है-

सभी सम्प्रदायों में यह अर्थ मान्य है कि आत्मज्ञान ही परम पुरुषार्थ की प्राप्ति का साधन है। मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। इस अर्थ का प्रतिपादन निम्नांकित श्रौत वाक्य करते हैं।

पृथगात्मानं प्रेरितारञ्च मत्त्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति
(श्वे०उ०१/६)

आत्मतत्त्व तथा उसको प्रेरणा प्रदान करने वाले परमात्म तत्व को अलग-अलग स्वरूपतः तथा संबन्धतः मनन करके मुनुक्षु जीव परमात्मा की प्रीति का पात्र बन जाता है और उसके ही फल स्वरूप वह मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है।

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥
(बृहदा० उ० ६/५/१२)

अर्थात् यदि जीव को अपनी आत्मा के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो जाय तो फिर व किस वस्तु की प्राप्ति की इच्छा से तथा किस अनुबन्धी कामना की पूर्ति के लिए अपने शरीर में आसक्त होगा ?

'तरतिशोकमात्मवित्'

(ध० उ० ७/१/३)

अर्थात् आत्मज्ञानी पुरुष संसार सागर को पार कर लेता है ।

ब्रह्मविदाप्नोति परम्

(तैत्ति० २/१/१)

परंब्रह्म को जानने वाला पुरुष परं ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है । इन समस्त वाक्यों का यही अभिप्राय है कि आत्मा के स्वरूप का तथा परमात्मा के स्वरूप का अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त करके परमात्मोपासना करने वाले मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ।

सभी विचारकों को यह भी मान्य है कि संसार का मूल कारण अज्ञान है । तत्त्व ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है । यह जीव अनादि काल से माया के महा आवर्त में पड़कर अपने स्वरूप आदि को भूल गया है तथा देह, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा ज्ञान आदि को ही आत्मा मानने लग गया है । इसी अज्ञान के कारण वह संसार के चक्र में पड़ा हुआ है तथा कर्मफल को भोग रहा है । अध्यात्म शास्त्र के आलोक में ही आत्मा एवं परमात्मा के स्वरूप को जाना जा सकता है ।

(ख) आत्मा देह इत्यादि से भिन्न है

आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए विशिष्टाद्वैत दर्शन के आचार्य श्रीमद् यामुनाचार्य कहते हैं–

देहेन्द्रियमनः प्राण धीभ्योऽन्योऽनन्यलक्षणः ।
नित्यो व्यापी प्रतिक्षेत्रमात्मा भिन्नः स्वतःसुखी ।।

(आत्मसिद्धिः)

अर्थात् आत्मा देह, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा ज्ञान से भिन्न है, वह स्वेतर समस्त वस्तु विलक्षण है वह नित्य, सम्पूर्ण शरीर में व्यापक, प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न तथा स्वभावतः सुखस्वरूप है ।

पञ्चविंशतमो जीवः (साम०१०१+श०प०ब्रा०१०/१/२१८) यह श्रुति बतलाती है कि प्राकृतिक चौबीस तत्त्वों से भिन्न पच्चीसवॉ तत्त्व जीवात्मा है ।

पद्मपुराण में भी आत्मा के स्वरूप का विस्तार से प्रतिपादन करते हुए कहा गया है–

आत्मा तु स मकरेण पंचविंशः प्रकीर्तितः ।
यः परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशकः ।।
स एव सर्वभूतात्मा नर इत्यभिधीयते ।
आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।।

(पद्म पु० उ० ख० २२५/२७-२८)

अर्थात् वर्णमाला के पच्चीसवें अक्षर मकार के द्वारा आत्मा का अभिधान होता है । आत्मा प्रकृति से भिन्न बतलाया गया है । वह जीव ही पच्चीसवॉ तत्त्व है । वही सभी भूतों के भीतर आत्मा रूप से विद्यमान रहता है । चूँकि उसका कभी विनाश नहीं होता है अतएव वह नर कहलाता न रीयते=क्षीयते=विनश्यति इति नरः ।यह नर शब्द की व्युत्पत्ति है । वह आत्मा शुद्ध है,अक्षर (विकार रहित) है,शान्त (अपक्षय विनाश आदि षडूर्मियों से रहित है) तथा प्रकृति से भिन्न होने के कारण निर्गुण है ।

(ग) अहमर्थ ही आत्मा है

आत्मा से भिन्न जितने भी पदार्थ हैं उन सबों की यह-यह इस रूप से प्रतीति होती है । जैसे यह मेरा देह है,ये मेरी इन्द्रियॉ हैं । ये मेरे प्राण हैं, यह मेरा मन है तथा यह मेरा ज्ञान है इत्यादि; किन्तु आत्मा की सदा मैं मैं इस रूप से ही प्रतीति होती, जैसे मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि । अतएव यह मैं मैं इस रूप से प्रतीत होने वाला ही आत्मा है ।

मैं का वाचक संस्कृत शब्द अहम् शब्द है । यह अहम् शब्द दो प्रकार से व्युत्पन्न होता है एक मान्त अव्यय प्रतिरूपक है तथा दूसरा अस्मद् शब्द के प्रथमा एक वचन में अह आदेश होकर अहम् शब्द बनता है । यही अहम् शब्द आत्मा का वाचक है । मान्त अव्यय प्रतिरूपक अहम् शब्द के विषय में तो 'अहंशुभमोर्युस' (पा०व्या०५/२/१४०) इस सूत्र की वृत्ति में भट्टोजिदीक्षित लिखते हैं कि यह अनात्मा अहंकार का वाचक है ।

देह आदि अनात्मा हैं इस बात को बतलाते हुए श्री लोकाचार्य तत्त्वत्रय ग्रन्थ में कहते हैं-

देहादीनाम् 'मम देहादयः' इत्यात्मनो भिन्नतया भानात्, इदंत्वेन भानात्, आत्मनश्चाहंत्वेन भासमानात् , एतेषां कदाचिद् भासमानत्वात् कदाचिदभानाच्च, आत्मनः सदा भासमानत्वाच्च, एतेषां बहुत्वात्,- आत्मन एकत्वाच्च, एतेभ्योविलक्षण आत्मेत्यंगीकर्तव्यम् । (तत्त्वत्रय१/६)

अर्थात् निम्नांकित चार कारणों से आत्मा देह इत्यादि से भिन्न सिद्ध होता है–

(१) देह आदि मेरे हैं इस तरह से आत्मा से भिन्न रूप से देह आदि की प्रतीति होती है (२) देह आदि यह-यह इस रूप से प्रतीत होते है और आत्मा की सदा मैं इस रूप से प्रतीति होती है । (३) देह इत्यादि की जाग्रत इत्यादि अवस्था में ही प्रतीति होती है तथा स्वाप इत्यादि अवस्था में नहीं होती है,किन्तु आत्मा की तो निरन्तर मैं-मैं इस रूप से प्रतीति होती रहती है। स्वाप काले में भी मैं-मैं इस रूप से प्रतीत होने के ही कारण जागने पर मनुष्य यह अनुभव करता है कि मै सुखपूर्वक सोया इत्यादि । (४) शरीर इत्यादि अनेक है । शरीर में भी हाथ-पैर-मुॅह इत्यादि अनेक हैं । आत्मा तो सदा एक ही प्रतीत होता है । इस तरह आत्मा देह इन्द्रिय इत्यादि से भिन्न सिद्ध होता है।

(घ) आत्मा स्वप्रकाश है

आत्मा स्वप्रकाश है । स्वप्रकाश शब्द के अर्थ दो प्रकार के होते हैं **स्वेन प्रकाशः** = स्वप्रकाश अर्थात् जिस तरह घट, पट इत्यादि जितने पदार्थ हैं उनके ज्ञान के लिए उनके प्रकाशक ज्ञान तथा प्रकाशक पदार्थों की आवश्यकता होती है । उस तरह से आत्मा के ज्ञान के लिए किसी दूसरे प्रकाशक पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती है । आत्मा जब तक रहती है तब तक उसका प्रकाश अपने आप हुआ करता है ।

किन्तु मणि प्रदीप आदि भी कुछ ऐसे पदार्थ हैं जो अपने आप ही प्रकाशित होते रहते हैं । अतएव स्वेन प्रकाशः यह स्वप्रकाश शब्द की व्युत्पत्ति मानने पर प्रदीप, मणि, द्युमणि (सूर्य) इत्यादि को भी आत्मा मानना पड़ेगा । फलतः स्वप्रकाश शब्द की व्युत्पत्ति **स्वस्मै प्रकाशः** मानना होगा ।

अर्थात् आत्मा अपने लिए ही प्रकाशित होता है । अपनी आत्मा का ज्ञान अपने को ही होता है । आत्मा को छोड़कर जितने भी मणि

प्रदीप आदि वस्तुएँ हैं उनको जानने वाला आत्मा है । अतएव वे सबके सब **परस्मै प्रकाशित** होते है । इस तरह आत्मा में **स्वेन प्रकाशत्व** के साथ-साथ **स्वस्मै प्रकाशत्व** भी है। आत्मा से भिन्न सभी वस्तुएँ परस्मै ही प्रकाशित होती हैं। चूकि आत्मा में दोनों प्रकार का स्वप्रकाशत्व है। अतएव यह स्वप्रकाश है ।

(ङ) आत्मा ज्ञान स्वरूप एवं ज्ञानवान है

आत्मा ज्ञानस्वरूप होते हुए ज्ञानवान् है । जिस तरह सूर्य, प्रदीप, मणि इत्यादि प्रकाश स्वरूप होते हैं, तथा वे प्राकशवान् हैं । प्रकाश स्वरूप सूर्य स्वयं धर्मी है तथा उससे निकलने वाला प्रकाश उसका धर्म है । इसी तरह ज्ञान स्वरूप आत्मा धर्मी है और उसका विषयों का अनेक प्रकार का ज्ञान धर्मभूत है । जिस तरह सूर्य प्रदीप आदि के धर्मभूत प्रकाश में ही संकोच एवं विकास होता है, प्रकाश स्वरूप सूर्य तथा प्रदीप सदा एक समान ही रहते हैं उसी तरह आत्मा के स्वरूपज्ञान में कोई भी संकोच अथवा विकास नहीं होता है । उसके धर्मभूत ज्ञान में ही संकोच एवं विकास होता है ।

ज्ञान स्वरूप आत्मा को ज्ञानवान इसलिए कहा गया है कि उसमें ज्ञान गुण की ही प्रधानता है । जिस तरह लोक में जो अधिक ज्ञानवान् होता है उसको प्राज्ञ कहा जाता हैं । इसी अर्थ को बतलाते हुए महर्षि बादरायण ने कहा–

तद्गुणसारत्वात् तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ।

(ब्रह्म सूत्र)

अर्थात् ज्ञान नामक गुण की प्रधानता होने के ही कारण **'अतएव ज्ञः'** (ब्रह्म सूत्र) इस सूत्र में आत्मा को ज्ञः कहा गया है । इसके पश्चात् महर्षि बादरायण ने आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा **'यावदात्म भावित्वाच्च न दोषस्तद् दर्शनात् ।'** (ब्रह्म सू०) अर्थात् ज्ञान स्वरूप आत्मा को ज्ञानवान् कहने में इसलिए भी कोई दोष नहीं है कि लोक में देखा जाता है कि जब तक शरीर में आत्मा का सद्भाव बना रहता है तब तक ज्ञान रहता है । आत्मा के शरीर से निकल जाने पर शरीर में किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं रह जाता है । अतएव ज्ञान के यावदात्मभावी होने के कारण भी आत्मा को ज्ञानवान् कहा जाता है ।

(च) आत्मा कर्ता है

भोक्ता भोग्यं प्रेरिताञ्च मत्त्वा श्रुति इस अर्थ का प्रतिपादन करती है कि आत्मा कर्मफल रूपी भोगों का भोग करने वाला है अतएव वह भोक्ता है । ब्रह्म सूत्रकार भी कहतें है– **कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ।'** (शा० मी०) अर्थात् आत्मा को कर्ता इसलिए मानना चाहिए कि उसी को करने के लिए शास्त्र विभिन्न कर्मों का विधान करते हैं । यदि आत्मा को कर्ता नहीं माना जाय तो सभी शास्त्र विहित कर्म व्यर्थ हो जायेंगे।

हरिवाक्यसुधासिन्धुकार लिखते हैं–

ज्ञाता देहेन्द्रियादीनामात्मा बोध्यः पृथक् पृथक् ।
एषां स्वरूप वक्ता च श्रोता मन्ता प्रमापकः ।
सर्व क्रियाणां कर्तेत्थमात्मा स्मीत्यवधार्यताम् ।

(हरिवाक्यसुधासिन्धु)

अर्थात् यह जानना चाहिए कि आत्मा देह, इन्द्रिय, आदि को जानने वाला,प्रत्येक शरीर में पृथक् पृथक्, उन सबों के स्वरूप का प्रवचन करने वाला श्रोता,मनन करने वाला, प्रमापक, तथा सभी क्रियाओं को करने वाला है। ऐसा ही मैं भी हूँ इस तरह से जानना चाहिए ।

(छ) आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है

आत्मा की सूक्ष्मता लोकसिद्ध है । आज के वैज्ञानिकों ने अनेक तत्त्वों का साक्षात्कार किया है– किन्तु आत्मा इतना सूक्ष्म है कि उसका साक्षात्कार अभी किसी भी आधुनिक वैज्ञानिक ने नहीं किया है । आत्मा की सूक्ष्मता का प्रतिपादन करते हुए श्रुतियॉ कहती हैं–

'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः ।'

(मुण्ड ३/१/९)

यह आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म अणुस्वरूप है । इसका साक्षात्कार तो विवेक,विमोक,अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद तथा अनुद्धर्ष इन सात साधनों से शुद्ध बने अन्तःकरण के द्वारा ही किया जा सकता है।

दूसरी श्रुति कहती है–

बालाऽग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीवस्य विज्ञेयः

(श्वेताश्वतर)

अर्थात् बाल के अग्रभाग को सौ भाग में चीर दिया जाय, उसका एक भाग जो होगा उसको भी यदि सौ भागों में चीर दिया जाय, वह जितना सूक्ष्म होगा उतना ही सूक्ष्म जीव का भाग समझना चाहिए । उस आत्मा के निवास स्थान को बतलाती हुई श्रुति कहती है–

हृदि ह्ययमात्मा

(ब्रह्मसूत्र)

यह आत्मा हृदय प्रदेश में रहता है । वह आत्मा इस शरीर से निकलता है, अपने शुभाशुभ कर्मो के अनुसार लोकान्तरों में जाता है तथा लोकान्तरों से पुन;इस लोक में आता है । इस बात को बतलाते हुए ब्रह्मसूत्रकार कहते है–

'उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्'

(ब्रह्मसूत्र)

मनुष्य के हृदय में रहने वाली आत्मा सम्पूर्ण शरीर को उसी प्रकार से प्रकाशित किए रहता है जिस तरह कमरे के एक स्थान पर रखा हुआ दीपक सम्पूर्ण कमरे को प्रकाशित करता रहता है ।

गुणाद्वाऽऽलोकवत् ।

(ब्रह्मसूत्र)

(ज) आत्मा नित्य है

आत्मा की नित्यता का प्रतिपादन निम्नांकित श्रुतियाँ करती है–
(१) न ज़ायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् अजो नित्यःशाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

(कठोपनिषत्)

ज्ञानवान् आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न तो मरता है। और न तो कोई भी जीवात्मा किसी से उत्पन्न हुआ है । यह आत्मा अजन्मा,नित्य शाश्वत तथा प्राचीनं है । शरीर के विनष्ट होते रहने पर भी आत्मा का विनाश नहीं होता है ।

(२) हन्ता चमन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।

यदि मारने वाले को कोई मारने वाला मानता है तथा मरे हुए को कोई मरा हुआ मानता है तो वे दोनों विशेष ज्ञानी नहीं है क्योंकि

यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न तो किसी के द्वारा मारी जाता है ।

(३) महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं–

अविनाशी वाऽरेऽयमात्मा ।

(बृ० उ० ४/५/१४)

अरे गार्गि यह आत्मा अविनाशी है ।

(४) ज्ञाऽज्ञौ द्वावजौ । (श्व० १/९) ये दोनों आत्मा और परमात्मा ज्ञानी एवं अज्ञानी तथा अजन्मा हैं ।

हरि वाक्य सुधा सिन्धुकार भी कहते हैं–

श्रुतौ हि नित्योनित्यानामितितत् नित्यतोदिता ।
नत्वेवाऽहं जातु नासमित्यादौ च स्मृतावपि ।

(हरि वाक्य सुधासिन्धु)

अर्थात् **नित्योनित्यानाम्** (कठो० ५/१३) इत्यादि श्रुति तथा **'नत्वेवाऽहं जातु नासम्'** (गीता २/१३) इत्यादि गीता वाक्य ये दोनों जीवों की नित्यता का प्रतिपादन करते हैं ।

श्रीमद्भागवत में जीव का स्वरूप

जीवों के इसी प्रकार के स्वरूप का उपदेश देते हुए प्रह्लादजी भी दैत्य बालकों से कहतें है–

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एक क्षेत्रज्ञ आश्रयः ।
अविक्रियः स्वदृग् हेतु व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः ।
एतैर्द्वादशभिर्विद्वान् आत्मनो लक्षणैः परंः ।
अहं ममेत्यसदभावं देहादौ मोहजं त्यजेद् ।

(भा०७/६/१९-२०)

(१) अर्थात् आत्मा नित्य है अर्थात् उसका कभी भी विनाश नहीं होता है । (२) निर्विकार है उसमें बालत्व वृद्धत्व इत्यादि प्रकार का कोई भी विकार नहीं होता है । (३) वह शुद्ध है अर्थात् आत्मा में किसी प्रकार के प्राकृतिक दोष नहीं हैं । (४) वह एक है शरीर इन्द्रिय प्राण इत्यादि के समान अनेक नहीं है । (५) वह क्षेत्रज्ञ है अर्थात् इस शरीर रूपी क्षेत्र को जानने वाला है । (६) वह आश्रय है । अर्थात् शरीर इन्द्रिय प्राण इत्यादि के बने रहने का आधार आत्मा ही है ।

आत्मा के शरीर से निकल जाने पर ये सब के सब विनष्ट हो जाते हैं। (७) वह अविक्रिय है अर्थात् आत्मा में अस्ति जायते इत्यादि षड्विकार नहीं होते हैं (८) वह स्वदृक् अर्थात् स्वयम्प्रकाश है । (९) हेतुः आत्मा ही विभिन्न शरीरों के धारण करने का हेतु है । (१०) व्यापकः वह ह्दय प्रदेश में रहकर भी अपने ज्ञान गुण के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है । (११) असङ्गी वह किसी में भी आसक्त नहीं है । (१२) अनावृतः वह अज्ञान इत्यादि किसी के द्वारा भी नहीं आच्छन्न होता है । आत्मा के इन बारह प्रकार के भेदक हेतुओं के द्वारा विवेचन करके बुद्धिमान् पुरुष शरीर इन्द्रिय इत्यादि में अज्ञान जन्य अहंकार तथा ममकार का परित्याग कर देते हैं ।

आत्मा के भेद

यद्यपि जीवात्माओं के देव, मनुष्य तिर्यक् इत्यादि भेद अज्ञान जन्य है । क्योंकि देव मनुष्य इत्यादि तो शरीर के भेद हैं । इनमें भ्रम के कारण आत्मत्व की प्रतीति होती है । सभी जीव ज्ञान स्वरूप हैं । छान्दोग्योपनिषत् के आठवें अध्याय में आत्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा गया है–

एष आत्माऽपहतपात्मा विजरो विमृत्यु
रविशोकोविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः
सत्य संकल्पः (छा० उ० च)

अर्थात् यह आत्मा कर्मके बन्धनों से रहित जरा मृत्यु शोक भूख तथा प्यास से रहित सत्यकाम तथा सत्यसंकल्प वाला है। आत्मा के प्रधान रूप से तीन भेद होते है– बद्ध,मुक्त एवं नित्य। जीवात्माओं के भेद को ही दृष्टि में रखकर श्रुति **नित्यानाम्** पद का प्रयोग करती है। गीता में श्री भगवान् भी कहते हैं–

इदं धर्ममुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।

इस ज्ञान को ही अपनाकर अनेक मुमुक्षु जीव मोक्ष को प्राप्त कर मेरे सदृश हो गये । ऐसे जीव न तो सृष्टि काल में शरीर धारण करते हैं और न ही प्रलय काल में उनका लय होता है ।

बद्ध जीवों का वर्णन

संसारी जीवों को ही बद्धजीव कहा जाता है । प्रकृति संसर्ग जन्य संसार के बन्धन में पड़े हुए जीव सुख दुःख इत्यादि का अनुभव किया करते हैं । ऐसे जीवों का स्वाभाविक ज्ञान तिरोहित हो जाता है । उनका अन्तःकरण क्लेश, कर्म, विपाक, आशय इत्यादि के कारण दूषित हो जाता है । प्रकृति संसर्ग के ही कारण शरीर इत्यादि संबन्ध होता है । इन बद्ध जीवों का वर्णन करती हुई श्रुति कहती है–

(१) **समाने वृक्षे पुरुषो निमग्न अनीशया शोचति मुह्यमानः** (श्वें०५/७+मु० उ०३/१/२) अर्थात् इस शरीर रूपी एक ही वृक्ष में रहने वाला जीव नियाम्या माया के द्वारा मोहित होकर सुख एवं दुःख रूपी कर्म फलों का अनुभव करता है ।

(२) द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षंपरिषष्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्ति अनश्नन् चान्य अभिचाकशीति । (श्वे०ऊ०२/३/१७मु०३/१/१) उ० ता०१/१+ भव०सं० २१२) जीवात्मा तथा परमात्मा रूपी सुन्दर पंखवाले साथ साथ रहने वाले तथा परस्पर में भिन्न प्रकृति वाले दो पक्षी शरीर रूपी एक ही वृक्ष का सेवन करते हैं । उन दोनों में से एक जीवात्मा अपने कर्मफलों का भोग करता है तथा दूसरा परमात्मा कर्मो से अनासक्त रहकर सदा प्रसन्न रहता है ।

यह सांसारी जीव ही अपने पूर्वकृत कर्मो के अनुसार अच्छी बुरी योनियों को प्राप्त करता है श्रुति भी कहती है– **साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति ।** (बृ० उ०) अर्थात् वेदविहित पुण्य कर्मो को करने वाले जीव अच्छी योनियों को प्राप्त कर लेते है तथा पाप कर्म करने वाले जीव पाप योनियों को प्राप्त करते हैं । छान्दोग्य श्रुति भी कहती है– **तद्य इह रमणीय चरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ।**

मुक्त जीव का वर्णन

मुक्तजीव वे हैं जो विद्या प्राप्त करके अथवा परमात्मा की कृपा के फलस्वरूप अपने समस्त पूर्वकृत कर्मों का विनाश करके सुषुम्णा नाड़ी से उत्क्रमण करके श्रीभगवान् के लोक वैकुण्ठलोक में आते हैं ।

ऐसे जीव आविर्भूत गुणाष्टक हो जाते हैं । उनका स्वाभाविक रूप आविष्कृत हो जाता है । आत्मा के स्वाभाविक रूप का वर्णन करती हुई श्रुति कहती है–

एष आत्मा पहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको
विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः ।'

(छा० उ० ८/७/१)

यह आत्मा कर्मों के बन्धन से रहित, जरा, मृत्यु, शोक, भूख तथा प्यास से रहित है यह सत्यकाम एवं सत्यसंकल्प है। मुक्तावस्था में जीव अपने स्वाभाविक रूप में आ जाता है । मुक्ति से पहले उसका लिङ्ग शरीर छूट जाता है । श्रुति कहती है–

न ह वै स शरीरस्य सतः प्रियाप्रिययो रपहतिरस्ति ।
अशरीरं वा व सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ।

(छा० उ० ८/१२/१)

अर्थात् जब तक शरीर का सम्बन्ध बना रहता है तब तक उसके शोक दुःख का विनाश नहीं होता है । जब उसका शरीर से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है तो उस जीवात्मा को सुख एवं दुःख का स्पर्श ही नहीं होता है । जीव की यही मुक्तावस्था है। शरीर का सम्बन्ध संसार से विराग हुए विना तथा प्रारब्ध कर्मों का फल भोगे विना छूटता ही नहीं है। इसीलिए वात्स्यवरदाचार्य कहते हैं–

सत्संगाद् भव निःस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान्
प्रारब्धं परिभुज्य कर्मशकलं प्रक्षीणकर्मान्तरः ।।
न्यासादेव निरंकुशेश्वरदया निर्लून मायान्वयः
हार्दानुग्रह लब्ध मध्यधमनीद्वाराद्बहिर्निर्गतः ।।

(स० प० द्वय० १)

सन्त पुरुषों की संगति प्राप्त करके संसार से उदासी हो जाओ, पुनः आचार्य के द्वारा श्री भगवान् की शरणागति करके आत्मसम्पन्न हो जाओ । इसके पश्चात् प्रारब्ध कर्म के अवशिष्ट भाग का फल भोग कर तथा दूसरे (संचित) कर्मों को न्यासविद्या के द्वारा ही विनष्ट करके, श्रीभगवान् की स्वच्छन्द दया के द्वारा माया का सम्बन्ध विनष्ट कर दिए गये तुम हृदय में विद्यमान अन्तर्यामी श्रीभगवान् की कृपा प्राप्त करके उत्क्रमण करो सुषुम्णा नाड़ी से निकला हुआ जीव दिन, अर्चि,

शुक्लपक्ष इत्यादि द्वादश पर्वों के अधिष्ठातृ देवताओं के द्वारा पूजित होकर विरजा नदी (सीमान्त सिन्धु) को पार कर जाता है । फिर वह नित्य, चेतन, श्रीवैकुण्ठलोक में पहुँचकर श्रीभगवान् का साहचर्य प्राप्त करके कृतकृत्य होकर श्रीभगवान् के साथ आनन्दानुभव करता है ।

छान्दोग्यनिषत् के ८/७-१,२,३,४ श्रुतियों में मुक्तजीव के सत्यसंकल्पत्व का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि मुक्त जीव के संकल्प करते ही उसके पूर्वजन्म के माता, पिता, मित्र इत्यादि उसके समक्ष उपस्थित हो जाते हैं और वह उन सबों के साथ वहाँ पर आनन्दानुभव करता है । वह मुक्त जीव अपने सत्यसंकल्प से अनेक रूपों को धारण कर लेता है-

स एकधा भवति, त्रिधा भवति, पञ्चधा भवति, सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशधा ।।

(छा० उ० ७/२६/२)

अर्थात् वह मुक्त जीव अपने संकल्प मात्र से ही एक प्रकार का, तीन प्रकार का, पाञ्च प्रकार का, सात प्रकार का, नव प्रकार का तथा ग्यारह प्रकार का शरीर धारण कर लेता है ।

मुक्त जीव दिव्य इन्द्रियों को प्राप्त कर लेता है तथा मन से समस्त भोगों को भोगते हुए रमण करता है । श्रुति भी इसी अर्थ का प्रतिपादन करते हुए कहती है-

'मनसैवैतान् कामान् पश्यन् रमते ।'

(छा० उ० ८/१२/५)

नित्य जीवों का वर्णन

जीवों की तीसरी कोटि नित्य जीवों की है– ऐसे जीव श्रीभगवान् के धाम में ही रहकर उनकी नित्य परिचर्या किया करते हैं। वे कभी भी इस संसार में आते ही नहीं हैं । ऐसे जीव शेष, गरुड़, विष्वक्सेन, श्रीदेवी, नन्द, सुनन्द इत्यादि हैं। इन जीवों को नित्यसूरि भी कहा जाता है । ऐसे जीवों का वर्णन करती हुई श्रुति कहती है–

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः

(सुबा० ६/१+कठो० ३/९)

अर्थात् भगवान् विष्णु के उस नित्य धाम का नित्य सूरिजन सदा

साक्षात्कार करते रहते हैं । दूसरी श्रुति कहती है कि– **'तद्विप्रासो विपान्यवो जागृवांसः समिंधते विष्णोर्यत् परमं पदम् ।'** (सुबा० ६/२) अर्थात् भगवान् विष्णु का जो परमपद है उसको सदा जागरुक रहकर स्तुति करते रहने वाले नित्यसूरिगण प्राप्त करते हैं । **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ ।'** (यजु० वे० सं) अर्थात् भगवान् नारायण की दो पत्नियाँ हैं । श्रीदेवी तथा भूदेवी ।

वेदार्थसंग्रह ग्रन्थ में श्री रामानुजाचार्य भी कहते हैं– **स्वाभिमत स्वानुरूप स्वरूप रूपगुण विभवैश्वर्य शीलाद्यान-वधिकमहिममहिषी ।'** अर्थात् श्रीभगवान् के सदामनोनुकूल रहने वाली तथा उनके स्वरूपानुरूप श्री लक्ष्मी जी अपने सीमातीत स्वरूप, रूप, गुण, वैभव, ऐश्वर्य, शील आदि ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं । वे **गद्यत्रय** नामक ग्रन्थ में भी कहते हैं– **शेष-शेषाशन-गरुड-प्रमुख नानाविधानन्त-परिचारिका-परिचरित-चरण-युगलः** । अर्थात् श्रीभगवान् के दोनों चरणों की सेवा, शेष, गरुड़ आदि अनेक प्रकार के परिजन तथा परिचारिकाएँ अनेक प्रकार से किया करती हैं । इसके अतिरिक्त भी जीवों के अनेक भेदोपभेद हैं किन्तु यहाँ पर उनकी चर्चा अनावश्यक है ।

परमात्मा के स्वरूप का निरूपण

श्रीमद्भागवत पुराण में स्थान-स्थान पर परमात्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है, अतएव इस चर्चा में हम श्रीभगवान् के उन्हीं गुणों एवं रूपों की चर्चा करेंगे जिनकी चर्चा वेदान्त करते हैं । श्रुति परमात्मा को सम्पूर्ण जगत् का अभिन्ननिमि- त्तोपादान-कारण बतलाती हुई कहती हैं– **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद् विजिज्ञास्व तद्ब्रह्म ।'** (तै. उ० ३/१) निश्चय ही जिससे ये सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न जीवों का जो पालन करता है, मरकर सभी जीव जिसमें जाते हैं तथा प्रवेश कर जाते हैं,वही ब्रह्म है, उसे ही जानने की इच्छा करो ।

परमात्मा को सर्वज्ञ बतलाती हुई श्रुति कहती है– **'यः सर्वज्ञः सर्ववित्'** (मु० उ० १/१/९) अर्थात् जो परमात्मा सम्पूर्ण वस्तुओं को सामान्य रूप से तथा विशेष रूप से दोनों प्रकार से जानता है ।

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।' (श्वे० ६/८+भव सं० २/४४) अर्थात् इस परमात्मा की अनेक प्रकार की शक्तियाँ सुनी जाती हैं, उसकी ज्ञान और बल की क्रियाएँ स्वाभाविक ही हैं । **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** (तैत्ति० २/१/१) यह श्रुति परमात्मा को सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप तथा अनन्तस्वरूप बतलाती है । अनन्त होने के कारण ही परमात्मा देश काल एवं वस्तु की सीमा से रहित है । वह समस्त देशों समस्त कालों एवं समस्त वस्तुओं के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है ।

इस तरह से श्रीभगवान् में असंख्य कल्याण गुण विद्यमान हैं। उनमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण वीर्य, सम्पूर्ण तेज, सम्पूर्ण शक्ति, सम्पूर्ण ज्ञान एवं सम्पूर्ण बल विद्यमान हैं । ये सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं । **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातनि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभि संविशन्ति** (तैत्ति० ३/१) श्रुति श्रीभगवान् को सम्पूर्ण जगत् का स्रष्टा, पालक, संहारकर्ता तथा अन्तिम प्राप्य बतलाकर उन्हें ही ब्रह्म कहती है । **तद्ब्रह्म** (तैति० ३/१) श्रीमद्भागवत महापुराण भी श्री भगवान् को ही जगत् का कारण बतलाते हुए कहता है–

'जन्माद्यस्य यतः' (श्री० भा० १/१/१) **जन्माद्यस्य यतः** (ब्र० सू० १/१/२) यह ब्रह्मसूत्र भी उन्हीं को जगत् का कारण बतलाकर बतलाता है कि श्रीभगवान् के स्वरूप, रूप गुण, लीला धाम आदि को शास्त्रीय प्रमाणों के आलोक में ही जाना जा सकता है–

'शास्त्रयोनित्वात् (ब्र० १/१/३) तर्कों के बल पर श्रीभगवान् के स्वरूप का निर्णय नहीं किया जा सकता है । यह बात दूसरी है कि तर्कों के द्वारा प्रमाणों को बल मिलता है। किन्तु प्रमाण प्रतिकूल तर्क तो परस्पर में एक दूसरे के द्वारा खण्डित होते रहते हैं ।

श्रीभगवान् के शास्त्रों में पाँच रूप बतलाये गये हैं– (१) **पर,** (२) **व्यूह,** (३) **विभव,** (४) **अन्तर्यामी** तथा (५) **अर्चावतार** ।

पररूप से श्रीभगवान् वैकुण्ठलोक में विद्यमान रहते हैं । वैकुण्ठ को ही शास्त्रों में अयोध्या, गोलोक इत्यादि नाम से अभिहित किया गया है । इन श्रीभगवान् की दो विभूतियाँ हैं। (१) लीला विभूति तथा त्रिपाद् विभूति । वेद कहता है–

एतावानस्य महिमाऽतोज्यायांश्च पूरुषः ।
पदोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यऽमृतं दिवि ।
(पु० सू० ३)

अर्थात् श्रीभगवान् की महिमा (विभूति) के एक भाग में सम्पूर्ण विश्व व्यवस्थित है तथा उनके ऐश्वर्य का तीन भाग द्युलोक (वैकुण्ठलोक) में है । उस लोक में काल का कोई भी सामर्थ्य नहीं चलता है । '**न कालस्तत्र वै प्रभुः ।** (वि० पु० १/४/८४) पराशरीरय धर्मशास्त्र उत्तरखण्ड ६/४६ में कहा गया है– **एवं वैकुण्ठनाथोऽसौ राजते परमे पदे ।** अर्थात् इस प्रकार वैकुण्ठनाथ श्रीभगवान् पररूप से परमपद में विराजमान रहते हैं।

वे ही श्रीभगवान् जगत् की सृष्टि पालन तथा संहार का कार्य करने के लिए संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का रूप धारण कर लेते हैं–

श्रीभगवान् के विभव रूपों की गणना करना असंभव है। पृथिवी के धूलिकणों को गिना जा सकता है किन्तु उनके विभव रूपों (अवतारों) को गिनना असंभव है । श्रीभगवान् के विभवरूपों में ही हैं- भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् श्रीराम इत्यदि रूप ।

अन्तर्यामी रूप से श्रीभगवान् सबों के अन्तःकरण में विद्यमान रहते हैं तथा अर्चावतार रूप से वे बदरीनारायण, श्री वेंकटेश, श्रीरंगनाथ इत्यादि मूर्तियों के रूप में प्रतिष्ठित रहकर सभी संसारी जीवों को धर्म, अर्थ, काम तथ मोक्ष जैसे पुरुषार्थों को प्रदान करते हैं ।

श्रीभगवान् की प्राप्ति के साधन

भगवत्प्राप्ति के साधनों में कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग की चर्चा स्थान-स्थान पर की गयी है । गीता के प्रथम षट्क में कर्मयोग को ही भगवत् प्राप्ति का साधन बतलाया गया है। अतएव इन योगों के स्वरूप का यहाँ सक्षिप्ततम निरूपण किया जा रहा है ।

कर्मयोग

शास्त्रों के अलोक में जीवात्मा एवं परमात्मा के स्वरूप,रूप, सम्बन्ध इत्यादि का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके अपनी शक्ति के अनुसार कर्तृत्वाभिमान का परित्याग करके, परमात्माराधन की भावना से शास्त्र विहित कर्मों को परमात्मा की प्रसन्नता के लिए निरालस होकर

अनुष्ठान करना ही कर्मयोग कहलाता है । परमात्म व्यतिरिक्त देवताओं की भी आराधना परमात्मा का शरीर समझकर करना स्वरूप के प्रतिकूल नहीं है। कर्मयोग के द्वारा जीवों के अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती है।

कर्मयोग के द्वारा अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर जीव के मन में यह निश्चय हो जाता है कि मैं परमात्मा का आधेय, विधेय एवं शेष (दास) हूँ । श्रीभगवान् ही हमारे आधार हैं । वे जैसा चाहें वैसा मेरा उपयोग करें । श्रीभगवान् की हर प्रकार से सेवा करना ही मेरा वास्तविक कर्तव्य है ।

ज्ञानयोग

शास्त्रों में प्रतिपाादित जीवत्मा एवं परमात्मा के स्वरूप तथा सम्बन्ध इत्यादि को ठीक-ठीक जान लेना तथा उसका आचर्योपदिष्ट रूप से सतत् चिन्तन करते रहना ही ज्ञानयोग है ।

ज्ञानयोग तथा कर्मयोग परमात्मा की प्राप्ति के साक्षात् साधन नहीं; अपितु कर्मयोग का उपयोग ज्ञानयोग की उत्पत्ति में तथा ज्ञानयोग का उपयोग भक्तियोग की उत्पत्ति में है । भक्तियोग ही परमात्मा की प्राप्ति का साक्षात् साधन है । अतएव परमात्मा की प्राप्ति में कर्मयोग एवं ज्ञानयोग परम्परातः साधन हैं ।

भक्तियोग

योगशास्त्र में वर्णित– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,धारणा, ध्यान तथा समाधि इन आठ साधनों से सम्पन्न पुरुष विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद, एवं अनुद्धर्ष इन सात साधनों को अपनाकर मुमुक्षु जीव शम, दम आदि गुणों से परिपूर्ण हो जाता है । इस प्रकार का जीव जब सदाचार्य की सन्निधि में शास्त्रीय प्रमाणानुसार श्रीभगवान् के स्वरूप आदि का श्रवण करके उन अर्थें का दीर्घ काल तक मनन करने के पश्चात् एकान्त में बैठकर श्रीभगवान् के स्वरूप का शुभाश्रयरूप से तैलधारा के समान निरन्तर चिन्तन करता रहता है तो उसे ही भक्तियोग कहते हैं ।

इस भक्तियोग में पहले तो परमात्मा के स्वरूप की विशद प्रतीति होती है,फिर विशदतर प्रतीति होती है, उसके पश्चात् विशदतम प्रतीति

होती है और अन्त में श्रीभगवान् का जैसा स्वरूप है ठीक उसी प्रकार की प्रतीति होने लगती है । यहाँ परमात्मचिन्तन परमात्मदर्शन के समान हो जाता है और शरीरपात (देहत्याग) पर्यन्त बना रहता है । इस भक्ति के दो रूप हैं- सधनभक्ति तथा साध्यभक्ति । जीव अपने प्रयास द्वारा जो भक्तियोग प्राप्त करता है उसे साधन भक्ति कहते हैं । श्रीभगवन् की अहैतुकी कृपा के द्वारा जिस भक्ति की प्राप्ति होती है उसे साध्य भक्ति कहते हैं । शास्त्रों में इस भक्ति को वेदन, दर्शन, उपासना, ध्यान तथा ध्रुवास्मृति आदि शब्दों से कहा गया है ।

शरणागतियोग

पञ्चरात्र शास्त्र में बतलाया गया है कि परमात्मप्राप्ति के लिए प्रपत्ति एवं आचार्याभिमान का होना अनिवार्य है । ये दोनों परमात्मप्राप्ति के अमोघ साधन हैं । प्रपत्ति के स्वरूप को बतलाते हुए कहा गया है–

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वरण तथा ।।
आत्मनिःक्षेप कर्पण्यं षड्विधा शरणागतिः ।

अर्थात् शरणागति के छह प्रकार हैं– (१) श्रीभगवान् तथा जीवों के प्रति सर्वदा अनुकूलता का भाव रखना, (२) श्रीभगवान् के तथा अन्य जीवों के विषय में प्रतिकूलता की भावना का पूर्णरूप से परित्याग करना, (३) श्रीभगवान् मेरी रक्षा अवश्य करेंगे इस प्रकार का महाविश्वास रखना, (४) श्रीभगवान् ही मेरे एक मात्र रक्षक हैं, (५) श्रीभगवान् के चरणों में आत्महविः का निक्षेप (समर्पण) तथा, (६) श्रीभगवान् के समक्ष हमेशा दीन बने रहना; ये ही शरणागति के छह प्रकार हैं । इस शरणागति को ही शास्त्रों में प्रपत्ति तथा न्यास विद्या के नाम से अभिहित किया गया है। परमात्मा की शरणागति करने वाला जीव अपने मन में इस प्रकार की भावना रखता है कि श्री भगवान् के चरणकमल ही मेरे परमप्राप्य हैं । उनके चरणों की प्राप्ति किसी दूसरे साधन से असम्भव है । श्रीभगवान् की ही कृपा से उनके चरणों की प्राप्ति सम्भव है । ऐसा जीव सबों के प्रति अनुकूलता का भाव बनाये रखता है । यदि कोई प्राणी उसे दुःख भी देता है तो भी

वह मानता है कि मेरे पूर्वजन्म के कर्मों का ही मुझे फल प्राप्त हो रहा है । इसमें इस दुःख देने वाले का कोई दोष नहीं है । वह सदा श्रीभगवान् से प्रार्थना किया करता है कि प्रभो ! मैं सदा सबों को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से ही देखूँ । मेरे मन में किसी के भी प्रति द्वेष की भावना न उत्पन्न हो । **'मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।'** मेरा मन सदा शुभ संकल्पों वाला बने । कभी भी मेरे मन में किसी के भी प्रति अशुभ संकल्प न उत्पन्न हो । **'मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।'** ऐसा जीव सर्वदा अकिञ्चनता के भाव से परिपूर्ण रहता है । वह मानता है कि मैं तो स्वयम् श्रीभगवान् की वस्तु हूँ । मेरा अपना कुछ भी नहीं है । **'नियतः स्वमिति प्रबुद्ध धीः'** (स्तो० रत्न)। यह शरणागति जीवन में एक बार ही की जाती है बार-बार नहीं ।

मुमुक्षु जीव यह मानता है कि श्रीभगवान् की शरणागति मैं स्वतन्त्र रूप से नहीं कर सकता हूँ । भगवत् शरणागति में आचार्य का पुरुषकार (सिफारिश) होना आवश्यक है । बड़े-बड़े महापुरुषों ने आचार्य के माध्यम से ही शरणगति की है । जिन लोगों ने परमात्मा की शरणागति स्वतंत्र रूप से की उनकी शरणागति को श्रीभगवान् ने नहीं स्वीकार की। परमभागवत श्रीभरतजी ने स्वतंत्र रूप से श्रीभगवान् की शरणागति की थी इसीलिए उनकी शरणागति को श्रीभगवान् ने नहीं स्वीकार की। किन्तु श्री लक्ष्मणजी ने जगज्जननी श्री जानकीजी की उपस्थिति में शरणागति की तो उनकी शरणागति को श्रीभगवान् ने स्वीकार कर ली । इसीलिए श्रीवचन भूषणकार ने कहा– **'महद्भिर्द्वारा देवदेवस्य चरणौ प्रपद्ये ।'** पराम्बालक्ष्मी जी पुरुषकार स्वरूपा हैं। श्रीभगवान् ने भी पञ्चरात्रागम में कहा है–

मत्प्राप्तिं प्रति जन्तूनां संसारे पततामधः
लक्ष्मीः पुरुषकरत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ।
ममापि च मतं ह्येतत् नान्यथा लक्षणं भवेत् ।।

(पाञ्चरात्रागम)

संसार सागर में गिरे हुए जो बद्धजीव मुझे प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए परमर्षियों ने श्रीलक्ष्मी जी को ही पुरुषकर रूप से निर्दिष्ट किया है । मुझको भी (श्रीभगवान् को भी) यही अभिमत है । अतएव पुरुषकार का कोई दूसरा रूप नहीं हो सकता है । श्रीलक्ष्मी जी आचार्य

स्वरूपा हैं; अतएव मेरे भी पुरुषकार मेरे सदाचार्य ही हो सकते हैं। ऐसा सोचकर मुमुक्षु जीव सद्वंश में उत्पन्न सत्सम्प्रदायनिष्ठ, वेदान्तार्थों के पूर्णरूप से जानकार तथा परब्रह्मरूप के स्वरूप को जानने वाले सदाचार्य के माध्यम से श्रीभगवान् की शरणागति करते हैं। इस तरह से एकमात्र आचार्य को ही अपनी शरणगति में पुरुषकार स्वरूप मानना आचार्याभिमान नामक परमात्म प्राप्ति का साधन कहलता है।

परमात्म प्राप्ति के विरोधियों का निरूपण

परमात्म प्राप्ति के विरोधियों की संख्या पाँच हैं– (१) स्वस्वरूपविरोधी, (२) परस्वरूप विरोधी, (३) उपाय विरोधी, (४) पुरुषार्थस्वरूप विरोधी तथा (५) प्राप्तिविरोधी।

स्वरूप विरोधी

देह आदि को ही आत्मा समझना तथा देह सम्बन्धियों को अपना समझना यही स्वरूपविरोधी है। महर्षि पराशर ने विष्णुपुराण में कहा है–

श्रूयतां चाऽप्यविद्यायाः स्वरूपं कुलनन्दन।
अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या अस्वे स्वमिति या मतिः॥

हे कुलनंदन (मैत्रेय) अनात्मा (देह, इन्द्रिय, मन, प्राण इत्यादि) को आत्मा समझना तथा अनात्मीय (स्त्री, पुत्र, परिवार, सम्पत्ति) इत्यादि को ही आत्मीय (अपना) समझना ये दोनों ही अज्ञान के भिन्न-भिन्न रूप हैं। इन दोनों को ही क्रमशः अहंकार एवं ममकार के नाम से अभिहित किया जाता है।

परस्वरूप विरोधी

श्रीभगवान् से भिन्न देवताओं को ही परा देवता (सर्वश्रेष्ठ) देवता समझना, अथवा अपने को परमात्मा से भिन्न देवता का सेवक समझना ये सभी परत्वविरोधी विचार हैं।

उपाय विरोधी

भक्तियोग अथवा प्रपत्तियोग को छोड़कर किसी दूसरे साधन को परमात्म प्राप्ति का साधन समझना; यह उपाय विरोधी भावना है। हर प्रकार से मोक्षप्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। धर्म अर्थ तथा काम

तो मोक्ष प्राप्ति के साधन मात्र हैं । इन सबों से साक्षात् आत्मकल्याण होना सम्भव नहीं है । किन्तु मोक्ष को ही परम पुरुषार्थ न मानकर निरन्तर धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्नशील रहना पुरुषार्थ विरोधी है ।

प्राप्ति विरोधी

श्रीभगवान् या भगवान् के भक्तों तथा भगवद्भक्तों के भक्तों का अपचार करना ही क्रमशः भगवदापचार, भागवतापचार तथा असह्यापचार कहलाते हैं । इन अपचारों को करते रहना तथा इन अपचारों के हो जाने पर किसी प्रकार का पश्चात्ताप न करना ही प्राप्ति विरोधी है । दूषित अन्न का भोजन करना, भगवदनुभव विरोधी होता है । दुःसङ्ग भगवत् कैंकर्य का विरोंधी है तथा अभिमान अपने मन में होने वाली परमात्म शेषत्व की भावना का विरोधी है ।

आत्मकल्याणकामियों को चाहिए कि वह इन समस्त विरोधियों से बचे और किसी प्रकार से कभी ये विरोधी विचार आ भी जायँ तो उसके लिए हृदय से पश्चात्ताप करे ।

परमात्मप्राप्ति का फल

परमात्म प्राप्ति का फल यही है कि जीव श्री वैकुण्ठलोक में पहुँचकर निरन्तर-निरन्तर श्रीभगवन् का कैंकर्य प्राप्त कर ले । यह परमात्मा प्राप्ति का अथवा मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम फल है ।

1483

पण्डित श्री रामतेजशास्त्री द्वारा अनूदित एवं सम्पादित ग्रन्थ

श्रीमद्भागवतम्
'श्रीधरी' - 'वंशीधरी' - टीकोपेतम्
१-२ भाग सम्पूर्ण
मूल्य ३०००.००

श्रीमद्भागवतम्
'अन्वितार्थप्रकाशिका' - टीकोपेतम्
मूल्य { ८००.०० सजिल्द / ७५०.०० पत्राकार

श्रीमद्भागवतम्
'श्रीधरी' - टीकोपेतम्
मूल्य { ६००.०० सजिल्द / ५५०.०० पत्राकार

श्रीमद्भागवतम्
'चूर्णिका' - टीकोपेतम्
मूल्य { ६००.०० सजिल्द / ५५०.०० पत्राकार

श्रीमद्भागवतम्
'सामयिकी' - भाषाटीकासहितम्
मूल्य { ६००.०० सजिल्द / ५५०.०० पत्राकार

मार्कण्डेयपुराणम्
हिन्दीटीकासहितम्
मूल्य { ४००.०० सजिल्द / ३५०.०० पत्राकार

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्
(मूलमात्रम्) मूल्य ३००.००

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्
'रामाभिनन्दिनी' - भाषाटीकासहितम्
मूल्य { ८००.०० सजिल्द / ७५०.०० पत्राकार

हरिवंशपुराणम्
'नारायणी' - भाषाटीकासहितम्
मूल्य { ६००.०० सजिल्द / ५५०.०० पत्राकार

आनन्दरामायणम्
'ज्योत्स्ना' - भाषाटीकासहितम्
मूल्य ३००.००

गर्गसंहिता
'प्रियंवदा' - भाषाटीकासहितम्
मूल्य ४००.००

गरुडपुराणम्
(मूलमात्रम्) मूल्य १५०.००

श्रीमद्देवीभागवतम्
(मूलमात्रम्) मूल्य २५०.००

श्रीमद्देवीभागवतम्
'पीताम्बरा' - भाषाटीकासहितम्
मूल्य { ८००.०० सजिल्द / ७५०.०० पत्राकार

शिवमहापुराणम्
'शिवा' - भाषाटीकासहितम्
डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
मूल्य { ८००.०० सजिल्द / ७५०.०० पत्राकार

ऋग्वेदसंहिता
पदपाठ तथा 'सायणभाष्य' संवलित
हिन्दीभाषामन्त्रानुवाद सहित
अनुवादक—पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी
मूल्य ३०००.०० (१-९ भाग सम्पूर्ण)

अथर्ववेदसंहिता
'सायणभाष्य' तथा हिन्दीभाषाटीकासहित
अनुवादक—पं. रामस्वरूप शर्मा गौड
मूल्य २५००.०० (१-८ भाग सम्पूर्ण)

योगवाशिष्ठ-महारामायणम्
भाषाटीकासहितम्
पण्डित ठाकुरप्रसादद्विवेदी
१-२ भाग सम्पूर्ण
मूल्य १०००.००

सामवेदसंहिता
'सायणभाष्य' तथा हिन्दीभाषाटीकासहित
अनुवादक—पं. रामस्वरूप शर्मा गौड
मूल्य ४००.००

शुक्लयजुर्वेदसंहिता
पदपाठ तथा 'उव्वट' - 'महीधर' भाष्य संवलित
'तत्त्वबोधिनी' - हिन्दीव्याख्या सहित
अनुवादक—डॉ. रामकृष्ण शास्त्री
मूल्य ६००.००